भाग ९०] [संख्या १
२०१६ वि०, आश्विन १८८१ शा० अक्टूबर १९५९

इस अंक में

सम्पादक : डा० शिवगोपाल मिश्र

र्षिक मूल्य : ४ रुपये प्रति अंक : ४० नये पैसे

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

'विज्ञान' में विज्ञापन

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रति वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	४०० रु०
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	५०० ,,
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०० ,,
,, आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२० ,,
,, चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये १५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिये।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक कमीशन जोड़कर भेजा जाय।

३—विज्ञापन के साथ भेजे हुये ब्लाकों को परिषद स्वीकार करेगा।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ६० — २०१६ विक्र०; आश्विन १८८१ शाकाब्द; अक्टूबर १९५९ — संख्या १

टेलीविजन

श्री प्रेमसागर वर्मा

'टेली' ग्रीक भाषा का शब्द है! जिसका तात्पर्य है 'दूर'। 'विजन' से 'प्रतिमान' का अर्थ होता है। अतएव जिस यन्त्र द्वारा दूर-देश-स्थित पदार्थों अथवा व्यक्तियों के रूप अथवा प्रतिबिम्ब का प्रतिमान हो, वही 'टेलीविजन' है।

मूलभूत सिद्धान्तः

संसार के समस्त पदार्थ कणमय हैं। सावयव होने के नाते, वे भिन्न-भिन्न अवयवों से बने हुए हैं। प्रकाश के माध्यम द्वारा जो प्रतिबिम्ब हमारे नेत्रों अथवा कैमरे की प्लेट पर पड़ता है, वह भी अरबों कणों से ही मिल कर बना हुआ होता है। इन कणों अथवा बिन्दुओं को आप अलग-अलग कर दीजिये, वह उक्त पदार्थ की असमवेत अवस्था होगी। यदि किसी प्रकार समस्त कणों को पुनः मूल प्रतिबिम्ब के रूप में प्रकट किया जा सके, तो वह मूल पदार्थ का प्रतिबिम्ब रूप समवेत अवस्था कहलायेगी। रूप अथवा प्रतिबिम्ब प्रसारण के हेतु टेलिविजन कैमरा इसी सिद्धान्त का अनुसरण करता है। प्रथमतः सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब खंडमय रूप में प्रकाश-संवेदनशील प्लेट पर अंकित होता है। पुनः विद्युत्कणों (इलैक्ट्रोनिक्स) की सहायता से खंड-रूप में उक्त प्रतिबिम्ब का आकाश में प्रसारण कर दिया जाता है। संग्राहक यन्त्र (रिसीवर) उन खंडों को असमवेत अवस्था में आकाश मंडल से ग्रहण करके, उसे पुनः मूल समवेत रूप दे देते हैं। परिणाम होता है मूल रूप का संग्राहक-यन्त्र पट पर दिग्दर्शन।

तरंग और चक्रसंख्याः

ध्वनि-प्रसारण और रूप-प्रसारण दोनों ही प्रतिक्रियाओं से तरंगों और चक्र संख्याओं (फ्रीक्वेंसीज) का घनिष्ट सम्बन्ध है। आकाश में प्रवाहित इन सूक्ष्म शक्तियों के बिना इन क्रियाओं का सम्पादन असम्भव होगा।

रेडियो,प्रकाश और शब्द—तीनों ही प्रकार की शक्तियाँ तरंग रूप में होती हैं। केवल उनकी गति और तरंग दैर्ध्य में अन्तर होता है।

तरंग को चक्र भी कहते हैं। किसी स्थान विशेष से १ सेकिंड में जितनी संख्या चक्रों की हो जाती है, उसे वैज्ञानिक भाषा में चक्र-संख्या (फ्रीक्वेंसी) कहते हैं। तरंग दैर्ध्य वह दूरी है, जो दो तरंगों की शिखाओं के मध्य विद्यमान होती है। सर्प की चाल भी तरंग रूप में होती है।

तरंग दैर्ध्य को मीटर द्वारा व्यक्त किया जाता है। समस्त तरंगों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है—(१) लघु तरंग, (२) मध्यम तरंग तथा (३) दीर्घ तरंग। प्रत्येक श्रेणी की तरंगों के मीटर भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जब हम कहते हैं, रेडियो को अमुक मीटर पर चालू करो, तब उसका तात्पर्य होता है संलग्न कल घुमाने मात्र से रेडियों में उक्त मीटर वाली तरंगों को ग्रहण करने की क्षमता को जाग्रत कर देना।

आयन मण्डलः

तरंगों का समस्त विश्व में प्रसारण होता है पृथ्वी मंडल के ऊपर ५० मील से २५० मील तक आवृत विद्युत्मय आयन मंडल (आयानोस्फीयर) द्वारा। इसमें आयन मंडल के तीन स्तर हैं। तीन स्तरों में तीन ही प्रकार की क्षमता है। निम्न स्तर केवल दीर्घ तरंगों को पृथ्वी पर प्रतिबिम्बित करता है, मध्यम स्तर मध्यम तरंगों को भूमंडल पर प्रसारित करता है, उच्चतम स्तर लघु तरंगों को विश्व-भर में फैलाने की अपूर्व क्षमता रखता है। इसी कारणवश वैज्ञानिकों को समस्त तरंग पुंज को तीन श्रेणियों में विभक्त करना पड़ा।

टेलिविजन में पार-उच्च चक्र-संख्या वाली तरंगों का प्रयोग होता है—जबकि ध्वनि प्रसारण में अपेक्षाकृत कम शक्ति वाली तरंगों को काम में लाया जाता है। टेलिविजन में प्रयुक्त तरंगें तो इतनी शक्तिशाली होती हैं कि वे समस्त आयन मंडल को चीर कर अंतरिक्ष में विलीन हो सकती हैं। इसीलिए रूप-प्रसारण में आयन-मंडल का उपयोग नहीं होता।

दर्शन प्रक्रियाः

प्रतिबिम्ब-प्रसारण क्रिया पर आधारित दर्शन-प्रक्रिया का टेलिविजन विकसित रूप मात्र है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ध्वनि-प्रसारण क्रिया पर आधारित श्रवण-प्रक्रिया का रेडियों केवल विकसित रूप है। श्रवण क्रिया आकाश के माध्यम से प्राप्त ध्वनि अथवा शब्द कर्णेन्द्रिय द्वारा मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र तक पहुँचाई जाती है—दर्शन-प्रक्रिया में प्रकाश के माध्यम से प्राप्त रूप को मस्तिष्क में दृष्टि-केन्द्र तक पहुँचाया जाता है। केमरे और चल चित्रों का निर्माण इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत हुआ है। (टेलीग्राफ और टेलीफून श्रवण-प्रक्रिया के विकसित रूप हैं)।

आविष्कार की पृष्ठभूमिः

दूरवीक्षण के आविष्कार के लिए सबसे पहली समस्या थी ऐसे पदार्थ की खोज जो प्रकाश को विद्युत में परिणत करने में सफल हो जाए। १८१७ में बरजीलियस ने सेलीनियम नामक ऐसे पदार्थ को खोज निकाला। तदुपरांत उस सम्बन्ध में अनेक परीक्षण किए गए, और ध्वनि-प्रसारण तथा रूप-प्रसारण की विधियों को विकसित किया गया। विभिन्न विद्वानों ने इसमें योगदान किया। अन्ततोगत्वा १६२३ में अमेरिकी वैज्ञानिक ब्लाडीमीर के० जोरकिन के प्रयासों के फलस्वरूप टेलिविजन का अद्भुत यन्त्र संसार के सम्मुख आ गया।

व्यापक प्रसारः

रेडियो कार्पोरेशन आफ अमेरिका ने १६२८ में न्यूयार्क में सर्वप्रथम अपना केन्द्र स्थापित किया। बाद में "नेशनल ब्राडकास्टिंग कम्पनी" इसका संचालन करने लगी। १६३१ में उक्त यन्त्र को संसार की सबसे ऊँची इमारत 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' पर लगा दिया गया। तत्पश्चात् अमेरिका में तीव्रगति से इस क्षेत्र में प्रगति हुई। न्यूयार्क नगर के ब्रुकलिन में १६०१ में उत्पन्न ऐलन बी० ड्यूमांट ने तो पुनः अपने 'कैथोड-रे' नाल द्वारा टेलिविजन के क्षेत्र में एक अद्भुत गति ही ला दी। आज ड्यूमांट के टी० बी० सेट ही सबसे अच्छे माने जाते हैं। टेलिविजन के आधारभूत विज्ञान का नाम विद्युतकरण विज्ञान (साइन्स औव् इलैक्ट्रीनिक्स) है।

टेलिविजन कैमराः

आकाशवाणी केन्द्र में ध्वनि-प्रसारण के हेतु कार्यक्रम से सम्बद्ध व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को ध्वनि प्रसारक यन्त्र के सान्निध्य में अभिनय करना पड़ता है। टेलिविजन केन्द्र में, इस यन्त्र के अतिरिक्त सम्बद्ध पदार्थ अथवा व्यक्तियों के प्रतिबिम्ब को खंडित करने वाला विद्युत-कैमरा भी उनके सम्मुख होता है। कैमरे में संलग्न 'आइकोनोस्कोप' नामक उपकरण एक अद्भुत यन्त्र है। उसके तथा इलैक्ट्रोनिक-बन्दूक के द्वारा प्रतिबिम्ब-प्रसारण क्रिया सम्भव होती है। आज की पद्धति के अनुसार प्रतिबिम्ब को लाखों अवयवों में विभक्त कर दिया जाता है। वे अवयव विद्युत कणों के रूप में रेडियो तरंगों के वाहन पर सवार हो १,८६,००० मील प्रति सेकिंड की गति से आकाश मंडल में भ्रमण करते हैं। कैमरे की प्लेट पर प्रतिबिम्ब पड़ते ही पलक मारते-मारते यह जटिल क्रिया सम्पन्न हो जाती है।

प्रेषक यन्त्रः

टेलिविजन कैमरे से सन्नद्ध उपकरणों द्वारा प्रसारित तरंग प्रवाह बहुत अधिक वेग वाला नहीं होता। पर्याप्त प्रसारण तथा प्रतिबिम्ब के अन्यत्र पुनः सृजन के लिए यह आवश्यक है कि तरंग प्रवाह की चक्र-संख्या (फ्रीक्वेंसी) ५० लाख सहस्र चक्र (किलोसाइकिल्स) तक पहुँच जावे।

विशुद्ध रूप प्रसारण के लिए क्षितिज की परिधि ही प्रेषक यन्त्र की सीमा है। क्षितिज से परे स्पष्ट रूपदर्शन सम्भव नहीं हो पाता। परीक्षणात्मक रूप से अमेरिका में रूप-प्रसारण का क्षेत्र अब १०० मील तक पहुंच गया है। तरंगों की (टेलिविजन में) उच्च चक्र संख्या के कारण अयन-मंडल का वहां प्रयोग नहीं हो पाता। इसीलिए रूप-प्रसारण की दूरी, प्रेषक यन्त्र की क्षमता और ऊँचाई पर अवलम्बित रहती हैं।

टेलिविजन संग्राहक:

टेलिविजन प्रेषक द्वारा प्रसारित रूप सन्निविष्ट तरंगें दूरस्थ देश में प्रयुक्त संग्राहक यन्त्रों द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं। होता यह है कि यन्त्र से एक स्पर्श सूत्र (एनटैना) सम्बद्ध रहता है। यह भवन की छत पर एरियल के समान किसी बांस अथवा खम्भे के सहारे आकाश में स्थिर रहता है। आकाश में प्रवाहित तरंगें इसी संवेदनशील सूत्र के सहारे संग्राहक में संलग्न परिपथ (सर्किट) में प्रवेश करती हैं। वहाँ से वे सृजन-नाल में जाती हैं। इसे 'किनैस्कोप' कहते हैं। इस यन्त्र में 'आईकोनोस्कोप' क्रिया के बिल्कुल विपरीत प्रक्रिया की निष्पत्ति होती है। 'आईकोनोस्कोप' ने मूल प्रतिबिम्ब को खंड-खंड करके उसे विद्युत तरंगों में परिणत कर दिया था। 'किनैस्कोप' यन्त्र के सहारे मूल प्रतिबिम्ब के सारे खंड पूर्व क्रमानुसार ही मूलरूप में प्रकट हो जाते हैं। 'इलैक्ट्रोनिक-बन्दूक' का तभी प्रयोग होता है।

प्रेषण और संग्रहण क्रिया एक साथ ही होती है। उसमें १ सेकिंड के ५० लाख वें भाग के बराबर भी अन्तर पड़ने पर विशुद्ध प्रतिबिम्ब-दर्शन नहीं हो पाता। ध्वनि का प्रसारण भी रूप प्रसारण के साथ-साथ पार-उच्च (अल्ट्राहाई) सहस्र चक्र संख्या (किलोसाइकिल्स) वाली तरंगों द्वारा होता है। यदि ध्वनि और रूप-प्रसारण की तरंगों में यह सादृश्य न हो तो ध्वनि का कर्णगोचर होना युगपत सम्भव न हो।

टेलिविजन के सम्मुख बैठे ऐसा अनुभव होता है मानों हम कोई चलचित्र देख रहे हों। किन्तु टेलिविजन में अपेक्षाकृत सजीवता का अधिक अनुभव होता है, क्योंकि वहाँ हमें ज्ञान रहता है कि कहीं दूरस्थ देश में पदार्थ अथवा व्यक्ति भी तत्क्षण उसी दशा में विद्यमान हैं, और हम उनके अभिनय का अवलोकन टेलिविजन के माध्यम से कर रहे हैं।

१५ सितम्बर को हमारे देश में टेलीविज़न केन्द्र की स्थापना दिल्ली में हो गई है। दक्षिणी पूर्वी एशिया के लिये यह नवीनतम प्रयोग है।

———

भारत में विमान-विद्या

श्री सुरेन्द्रनाथ गोयल, ७ अकबर रोड, नई दिल्ली

[प्रस्तुत लेख में भारतीय प्राचीन विमान-विद्या के समस्त निर्देशों को संकलित कर लेखक ने जिज्ञासुओं के लिये मार्ग प्रशस्त किया है—सम्पादक]

अन्तरिक्ष यात्रा के क्षेत्र में रूस तथा पश्चिमी देशों में हुई तात्कालिक खोजों ने प्रगति के कुछ प्रकट तत्वों को सामने रख दिया है। हमारे शास्त्र-साहित्य के लिये यह कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। बहुत सी आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धियाँ हमारे प्राचीन लेखों में वर्णित भौतिक विज्ञान के विचारों में पाई जाती हैं। राजा भोज ने (११ वीं शताब्दी के) अपने "समरांगण सूत्रधार" के ३१ वें अध्याय में बताया है कि किस प्रकार वायुयान बनाना चाहिए, किस तरह ऐसा वायुयान इंजिन बिठाकर उड़ाना चाहिए और ऐसे इंजिनों में पारे का किस प्रकार प्रयोग किया जाय। तर्क-वितर्क द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक जगत में बहुत कुछ स्पष्ट हो चुका है। हम अब जानते हैं कि बिना गर्मी की समता करने वाले पदार्थों के कोई भी वायुयान तेज तथा ऊँचा नहीं चल सकता। ऐसे धातु का आविष्कार होना है जो हल्के होने पर भी शक्तिशाली हों और तीव्र अग्नि में भी न जलें।

तेज से तेज जेट इंजिन या अन्य प्रकार के राकेट भी शून्य आकाश तक पहुँचने में समर्थ नहीं अतः इसमें भी आविष्कार की आवश्यकता है। सूर्य-किरण से निकाली हुई शक्ति ही खेटयान के लिये सर्वोत्तम है, यह अभी रूस से खबर आई है। ऐसे यान २०-२० हजार ही नहीं कई हजारों मील की गति से चन्द्रलोक में नहीं, दूर-दूर के ग्रह-देश में जा सकेंगे। अब देख लीजिए कि जहाँ भारत इतना पीछे था अब सब के सब उसके सूक्ष्म ज्ञान की खोज में हैं जिसके बिना मनुष्य की सबसे बड़ी अभिलाषा खेटयान या लोक लोकान्तर में देह सहित भ्रमण करना पूरी नहीं हो सकती। हमारे देश के साहित्य में व वेद शास्त्र में वायुयान व खेटयान के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है, विद्युत यंत्र इत्यादि के साथ-साथ और बहुतेरी गूढ़ बातें लिखी पड़ी हैं।

इससे यह विश्वास दृढ़ होता है कि भारतीय तथा विदेशी पुरातत्व वेत्ताओं ने, जिन्होंने वैदिक साहित्य सम्बन्धी प्राचीन लेखों का अध्ययन किया है और इसे साक्ष्य रूप में माना है, जो कुछ भारत के वैदिक पौराणिक गौरव के बारे में लिखा है कुछ यथार्थता लिए हुए हैं। इसमें विश्वास करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्राचीन वैज्ञानिक विचार आधुनिक वैज्ञानिकों तथा जनता के व्यापार में असल रूप में सप्रमाण प्रकाशित हों, केवल तुलनाओं की सीमा में न रहें। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक विज्ञान आधुनिक भौतिक विज्ञान के अद्भुत आविष्कारों में भाग ले सकता है। समय का ख्याल करते हुए हमको यह समझ लेना चाहिए कि आध्यात्मिक, ज्योतिष तथा आयुर्वेदिक के साथ साथ वैज्ञानिक विषय में जाँच करना आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक है।

वास्तव में वेद और शास्त्र का तात्पर्य तो आध्यात्मिक मार्ग में मोक्ष तथा आनन्द का मार्ग दिखाना ही है किन्तु अब यह देश धीरे-धीरे भौतिक समृद्धि और वैज्ञानिक प्रगति में सक्रिय रूप से

भाग ले रहे हैं। व्यापार, उद्योग और निर्यात जिन पर हमारी पंच-वर्षीय योजना का एक बड़ा भाग निर्भर है, आधुनिक विज्ञान के पूर्ण सहयोग के बिना अधिक उन्नति करने में सफल न होगा। अतः दो चीजें आवश्यक हुईं। प्रथम तो यह कि मजदूर, सभी कर्मचारी आध्यात्मिक और आधिभौतिक तथ्यों को अपने जीवन में स्थान दें और जल,थल और दूसरे आकाश क्षेत्र में बढ़ने के लिए अपने वैज्ञानिक व शास्त्री दोनों आविष्कार विभागों में तत्वज्ञान की खोज करें। आज कल वह समय आ गया है कि मनुष्य 'आदर्शवाद' और 'चिन्ह वाद' के स्थान पर अर्थ व भौतिकवाद को अपनाए और सत्यरूप से कर्मयोगी बनें। यह सौभाग्य की बात है कि वैदिक विज्ञान में निहित सिद्धान्त शान्तिमय समृद्धि की ओर ले जाते हैं। उनके सफलता प्राप्ति के साधन सभी विनाशक उपायों के विपरीत हैं। अतः आधुनिक विज्ञान और प्राचीन हिन्दू विज्ञान के पारस्परिक सम्पर्क से दोहरा लाभ है जो यह एक इसी देश का न होकर सारे संसार का हो सकता है। पूर्व शताब्दियों में मिशनरियों द्वारा ले जाये गये भारतीय हस्तलेखों की टीकाओं द्वारा विदेशी वैज्ञानिकों ने भी इस "दैवी खोज" का लाभ उक्त कहे ढंग के आधार पर खूब उठाया है।

वैज्ञानिक तत्त्वज्ञान की खोज सराहनीय है। इसका वास्तविक उद्देश्य वेद-पुराण-तंत्र इत्यादि की छिपी हुई सत्यता व वैज्ञानिक बातों की खोज करना है। कुछ हस्तलिखित पुस्तकें व श्लोक बनावटी तथा काल्पनिक भी सिद्ध हुए हैं, ऐसा भी हो सकता है, परन्तु फिर भी खोजक प्रवृत्ति को बढ़ाना सब शास्त्रीगण व पोथीखानों के लिए उचित है। इसके अतिरिक्त शान्ति, विश्वास और सहनशीलता का एक सुनिश्चित अंश उन खोज करने वालों में होना चाहिए जो इन सब विषयों की महान खोज पर पहुँचने में प्रयत्नशील हैं। ज्योतिष-विज्ञान, आयुर्वेद और विदेशी व भारतीय पुरातत्व वेत्ताओं के प्रमाण तो विश्व में प्रसिद्ध हो ही गये, इसमें सन्देह नहीं। एक बात और कही गई है कि हस्तलिखित पाल-पत्तियों के आधार पर वायु, और थल मशीनं बनाने की सम्भावना नहीं करनी चाहिए। ठीक, परन्तु वैज्ञानिक महत्व का क्रान्तिकारी विचार जो अत्यन्त गूढ़ है, विभिन्न रूप से हमारी शास्त्र भाषा में निहित हैं जो आधुनिक विज्ञान को संकेत देने में अत्यन्त उपयोगी हैं। इसका विश्वास किये बिना ,खोज आरम्भ या सफल न होगी। हमारे पास वाणभट्ट, भोज और आधुनिक तथा प्राचीन अनेक साहित्यिक प्रमाण तो हैं ही, अब मुख्य उद्देश्य यह है कि गम्भीर रूप से तत्वज्ञान के लिए ब्राह्मण, संहिता और तंत्र साहित्य में भी गहरी पहुँच होनी चाहिए। कुछ सूचियाँ प्राप्त हुई हैं जो विभिन्न साहित्य की प्रतीक हैं। शतपथ व जैमिनीय ब्राह्मण में सूर्य किरण वा विश्वोत्पत्ति सम्बन्धी, व जैन शास्त्रों में अणु-सम्बन्धी तत्वज्ञान है, उसका उपयोग करना है। ऐसे ही और भी शास्त्र हैं। भरद्वाज ऋषि का एक वैज्ञानिक प्रकरण दक्षिण में स्व० सुबराया शास्त्री द्वार प्राप्त हुआ था। इसके प्रथम ५०० सूत्र एक वकील द्वारा १६१६ में नकल किये गये थे। उसमें इस प्रकार की वैज्ञानिक बातें लिखी हैं जो उस समय सब की पहुँच से बाहर थीं। यहाँ तक कि अधिक उन्नतिशील पश्चिमी वैज्ञानिक भी उन्हें उस समय समझ नहीं सकते थे। उनमें से कुछ आविष्कार द्वितीय महायुद्ध के बाद ही प्रकाश में आये हैं। इन सूत्रों का भाषान्तर करना एक कठिन कार्य है। चिन्हवाद और रहस्यवाद में आवृर्तित है। हमने अन्य भावुकों के विषय में भी सुना है जिन्होंने वैज्ञानिक ज्ञान के गूढ़ तत्व की व्याख्या की है, जिनमें से अधिकांश तो छपे ही नहीं और न साधारण खोज से मिल ही पाते हैं। ऐसे महान रत्नों का अब यह भारत देश अपनी संस्कृति के आधार पर पूरा-पूरा आदर करेगा।

अतः स्नातक और सहायकों से सक्रिय सहायता के लिए प्रार्थना की जाती है कि वे अब स्वतन्त्र देश की आर्थिक उन्नति के लिए, भौतिक विज्ञान के तत्व-विचार इस तरह से सूचित करें कि अँग्रेजी में व्यवहार करने वाले आधुनिक वैज्ञानिकों को उपयोगी रूप में प्राप्त हों। विमान शास्त्र तो एक बड़ी समस्या है। इसके सम्बन्ध में ज्ञान संग्रह करने में रुचि की आवश्यकता है। जब विदेशी राज था, तब तो गाँवों-गुफाओं में जाकर मिश्नरी तरह-तरह के ग्रन्थ व ज्ञान विदेशों को पहुँचा गये। उन देशों के ऐसे गूढ़ तत्व ज्ञान से खेटयान, राकेट इत्यादि आविष्कारों में चमत्कारी संकेत अवश्य मिला होगा। अब तो और भी खोज करनी है। परन्तु भारत को कई सालों तक पीछे ही रहना पड़ेगा क्योंकि यहाँ तो छोटी मोटी मशीन भी विदेश से आती हैं या उनके नमूने पर ही बनती हैं। अद्भुत उन्नति की सम्भावना फिर भी है। वह तब ही हो सकती है जब लोह शास्त्र रसशास्त्र, मणि ज्ञान इत्यादि जो भारतीय पोथीखानों की खान हैं, बाहर निकल कर प्रयोग में आयें। इन गूढ़ बातों के उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि शास्त्री व मंत्री महापुरुष अब भारतीय वैज्ञानिकों के निकट पहुँच जायँ और उन्हें विश्वास दिलावें। उनके समझने में अवश्य समय लगेगा। ऐसे उपयोगी प्रयत्न के लिए गवर्नमेंट के पास व आविष्कार, उद्योग विभागों के पास रुपये की कमी नहीं। केवल विश्वास, साहस और प्रयत्न की आवश्यकता है। शास्त्री दूर से स्वयं न आ सकें तो पत्र व्यवहार से ही वैज्ञानिक विभागों का हाथ पकड़ें। पारस से सोना बनाने के लिये आजकल न किसी को रस-ज्ञान है न सम्भावना रही है। विज्ञान के लिए इतना आवश्यक है कि गिने चुने व्यक्तियों के सामने एक धातु को दूसरी धातु में बदल दिया जाय और उस नई धातु की आविष्कार विभाग में पूरी पूरी जाँच करवाई जाय। पहले तो ऐसी चीजें दिखाने में तंत्री लोगों को राज का भय रहता था परन्तु देश की उन्नति के लिए अब जनता व गवर्नमेंट को भौतिक विज्ञान व तत्वज्ञान की पूरी २ माँग है। इसमें सन्देह नहीं, शिक्षा विभाग ने तो हाल ही में हस्तलिखित पाल-पत्ती इत्यादि की रक्षा से लिए एक नोट प्रकाशित करवा दिया और शास्त्री व पोथीखानों को ढाढ़स दिया है।

विमान विद्या के निर्देश

१. बाल्मीकि रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन आया है:—यस्य तत् पुष्पकं नाम विमानं कामगं शुभम्। इत्यादि बाल्मीकि रा० अरण्य० ४८।६

तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो महद् विमानं मणिरत्न चित्रितम्। इत्यादि

(वाल्मीकि रा० सुन्दर० ८।१—२)

इन वचनों में पुष्पक विमान का 'यामि विहायसम्' तथा 'दिवंगते वायुपथे प्रतिष्ठितं' इन शब्दों से आकाश में वायु मार्ग पर उड़ने का वर्णन और 'कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्म्मणा' इस कथन से उसका विश्वकर्म्मा के द्वारा बनाया जाना प्रकट होता है। इसी प्रकार विमान की चर्चा राजा भोज के लिए 'समरांगण सूत्रधार' ग्रन्थ में भी हैं:—

लघु दारुमयं महाविहंग दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलना—धारमधो स्य चाग्निचूर्णम्॥ इत्यादि

(समरांगण। यन्त्रविधानाध्याय। ३१।६५—६७)

मुद्रित पुस्तक में 'अग्निपूर्णम्' पाठ दिया है परन्तु यह भी सम्मति है कि यह 'अग्निचूर्णम्' पाठ है, क्योंकि ज्वलनाधार रखने को कहा है सो क्या इसका उत्तर "अग्निचूर्णम्" से नहीं मिलता

है और अग्निचूर्णम् का वर्णन अस्त्रविद्याप्रकरण में शुक्रनीति में किया गया है। वह सूखी बैटरी ही ज्वलनाधार हो सकती है अतएव हमने "अग्निचूर्णम्" पाठ रखा है। 'समरांगणसूत्रधार' ग्रन्थ ने पारे को गर्म करने के लिए 'अग्निचूर्ण' नाम से सूखी बैटरी को काम लिया है। आजकल के विमानों में सूखी बैटरी को विद्युत-चिंगारी से पैट्रोल बनाने के उपयोग में लिया जाता है।

२—अब लीजिए सिद्धान्तशिरोमणेः गोलाध्यायः में मध्यगति-वासना का अनुभाग। इस भूलोक वातावरण के बारे में पश्चिम देशों में तो पृथ्वी की गति के सम्बन्ध में गैलिलीयों से पूर्व कुछ पता नहीं था, जब लोग कहा करते थे कि सूरज घूमता है और जमीन सीधी है। और वातावरण के सम्बन्ध में तो उनको अब जाकर कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है परन्तु सिर्फ इतना ही कि भू-वायु (जिसका मतलब है कि जहाँ कुछ भी है, जिसमें कि पंख वाले जहाजों का उपयोग हो सकता है और जिसमें अतिवेग की गतिवाले पदार्थ या राकेट सूक्ष्मांश (फ्रिक्शन) से गरम होकर पिघल भी सकते हैं)। भू-वायु १२ योजन पर्यन्त है। गोलाध्याय का विवरण देखिए:—

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः स्यादुद्वहस्थदनु संवहसंज्ञकश्च।
अन्यस्ततो पि सुवहः परिपूर्वको स्माद्वाह्यः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः ॥१॥

भू, वायु, आवाह, उसके ऊपर प्रवह, उसके ऊपर उद्वह, संवह, सुवह और परावह ये सात प्रकार के पवन प्रसिद्ध हैं ॥१॥

भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्।
तदूर्ध्वगो यः प्रवहः स नित्यं प्रत्यग्गतिस्तस्य तु मध्यसंस्था ॥२॥

पृथ्वी से १२ योजन पर्यन्त भूवायु उसमें मेघ और बिजली आदि हैं, उसके ऊपर प्रवाह नित्य पश्चिम की ओर मध्यगति से चलता है ॥२॥

नक्षत्रकक्षाखचरैः समेतौ रस्मादतस्तेन समाहतो यम्।
भपंजरः खेचरचक्रयुक्तो भ्रमत्यजस्रं प्रवाहानिलेन ॥३॥

यह भपंजर ग्रहसहित नक्षत्र कक्षा और खेचर चक्रयुक्त होकर प्रवह वायु द्वारा चालित होता हुआ निरन्तर भ्रमण करता है ॥३॥

३—(क) यदृच्छया प्रवृत्तानि भूतानि स्वेन वर्त्मना,
नियम्यास्मिन्नयति यतद्यन्त्रमिति कीर्तितम् ॥
(समरांगण सूत्रधार ३१ वें अध्याय से)

(ख) स्वयं वाहक मेकं स्थात्सकृत्प्रेर्य तथापरम्।
अन्य दन्तरितं वाय् बाह्यभन्यत्वदूरतः ॥
स्वयं वायमिहोत्कृष्टं हीनं स्यादित्रयम्।
तेष्यु रशकन्ति दूरस्यं अलक्ष्यं निकटस्थितम् ॥

(ग) एका स्वया गतिश्चित्रे न्या वाहकाश्रिता।
अरघट्टाश्रिते कीते दृश्यते द्वयमप्यदः ॥

(घ) अलङ्कता निर्वहत्य लघुत्वं अन्द हीनता।
शब्दे साध्ये तदाधिक्यं अशैथिल्य सगाढ़ता॥
वहनीषु रामस्तासु सौश्लिष्टयं चास्खलद्गतिः।
यथा मिष्टार्थ कारित्वम् लय तालानुगामिता॥ इत्यादि

(ङ) यन्त्रणां घटना पोत्र्या, गुप्त्यर्थ नाज्ञतावशांत्।
तत्रहे तुरयं रोयो व्यक्ता नैते फलप्रदाः॥

अर्थ—यन्त्रों के बनाने की विधि के न लिखने का कारण अज्ञानता या छिपाना नहीं है। उसका कारण यह है कि पूरा लिखने पर भी फलप्रद नहीं होता अर्थात् पूरा विवरण देने पर भी कोई बनाने में समर्थ नहीं होता। व्यर्थ ग्रन्थ का कलेवर भी बढ़ जाता है। यन्त्रों की क्रिया सदा प्रत्यक्ष ही ठीक होती है। उसी ग्रन्थ में अन्यत्र एक बहुत आवश्यक बात लिख कर सब शंकाओं का समाधान कर दिया गया है:—

उक्तानि अत्र बीजानि।

अर्थात् इस ग्रन्थ में बीज रूप से यन्त्रों का वर्णन कर दिया गया है। कुशल कलाकार इस संकेत से स्वयं यन्त्र बनाने में समर्थ हो सकते हैं।

विमान विद्या

४—न पर्वता न नद्यो वरन्त तो
रत्राचिध्यं परुतो यच्छेथेदु तत्।
उत द्यावापृथ्वी याथना परि
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥
(ऋ० ५।५५।७)

अनेनो को मरुतो यामो स्तु
अनश्वश्चिद्यमजत्थरथी:।
अनवसो अनभिशू रजस्तूः
वि रोदसी पथ्या याति साधन्॥
(ऋ० ३।६६।७)

ते म आहुर्य आयुः उप द्युभिर्विभिर्मदे।
परों मर्या अरेपसः इमान् पश्यन्नि तिष्ठहि॥
(ऋ० ५।५३।३)

वयं इव मरुतः केनचित् यथा।
(ऋ० १।८७।२)

आ विद्युन्मविभः मरुतः स्वकैः रथेभिः यात
ऋष्टिमाद्भिरश्वपर्णैः। आ यर्षिष्ठया न इषा
वयः न पप्तत सुमायाः॥ ऋ० १।८८।१
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा

अन्तान् दिवो बृहतः सानूनस्परि ।
अश्वास एषांमुभये यथा विदुः
स पर्वतस्य मभधूं रचुच्ययुः ॥
(ऋ० ५।५६।७)
यत् अवतून् वि, अहानि वि, अन्तरिक्षं वि,
रजांसि वि अजथ, यथा नावः, दुर्गाणि वि,
मरुतो न रिष्यथ (ऋ० ५।५४।४)
उत अन्तरिक्षं ममिरे व्योजसा । ऋ० ५।५५।२ ।

(ओजसा) अपनी शक्ति से अन्तरिक्ष को घेरते हो । यहाँ अन्तरिक्ष को घेरना स्पष्ट लिखा है तथा—

आ अक्ष्णयावानों बहन्ति अन्तरिक्षेण पततः ।
(ऋ० ८।७।३५)
आ यात मरुतो दिव आ अन्तारेक्षात् अमात् उत ।
(ऋ० ५।५३।८)
"हे मरुद्वीरो ! आकाश से अपरिमित अन्तरिक्ष से इधर आओं ।"

यहाँ स्पष्ट ही कहा है कि अपरिमित अन्तरिक्ष से यहाँ आये । अन्तरिक्ष से जाने का अर्थ ही आकाशयान से आना है तथा—

श्येनानिव धुजतः अन्तरिक्षे । १।१६५।२ ॥

"श्येन पक्षी के समान तुम अन्तरिक्षा में भ्रमण करते हो ।" श्येन पक्षी अन्तरिक्ष में ऊपर उड़ता रहता है, वैसे ये वीर अन्तरिक्ष में उड़ते हैं तथा—

ये वावृधन्त पार्थिवा ये उरौ अन्तरिक्षे आ ।
बृजने व नदीनां सधस्थे वा सहः दिवः ॥
(ऋ० ५।५३।७)

(क) स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो । महद्विमानं मणिरत्नचित्रितम् ॥
प्रतप्तजाम्बूनदजालकृत्रिमं । ददर्श धीमान पवनात्मजः कपिः ॥१॥
नवं प्रमेयं प्रतकारकृत्रिमं । कृतं स्वयं साध्विति विश्वकर्मणा ॥
दिवंगते वायु पथे प्रतिष्ठितं । व्यराजतादित्यपथस्थ लक्ष्म तत् ॥२॥
न तत्र किंचिन्नकृतं प्रयत्नतो । न तत्र किंचन्नि महार्थरत्नवत् ॥
न ते विशेषा नियताः सुरेष्वपि । न तत्र किंचन्न महाविशेषवत् ॥३॥
तपः समाधानपराक्रमार्जित । मनः समाधान विचारचारिणम् ॥
अनेक संस्थानविशेषनिर्मितं । ततस्ततस्तुल्यविशेषनिर्मितम् ॥४॥

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिनं । दुरासदं मारुततुल्यगामिनम् ॥
महात्मनां पुण्यकृतां महार्द्धिताः । यशस्विनामग्रवयुदामिवालयम् ॥५॥
विशेषमालम्ब्य विशेष सस्थितं । विचित्रकूटं बहुकूटमंडितम् ॥
मनोभिरामं शरदिन्दु निर्मलं । विचित्रकूटं शिखरे गिरेयथा ॥६॥
वहन्ति यत्कुण्डलं शोभिनानना । महाशना व्योमचरा निशाचराः ॥
विवृतविश्वस्त विशाल लोचना । महाजवा भूगणाः सहस्रशः ॥७॥

[वाल्मीकि रामायण]

(ख) आश्चर्य कुतूहलीच चण्डीपतिर्दण्डोपनतयचननिर्मितिन नभस्तलयायिना यंत्रयानेनानीयत क्वापि कावर्णः शैशुनागिर्नगरोमकण्ठे च कराठे किंच कृते निस्त्रिंशेन ॥

(हर्षचरित)

(ग) ततश्च शिशुनागस्तत्पुत्रश्च काकवर्णः ।

(विष्णु पुराण ४।२२।३)

(घ) मन्त्रेशकाशगमनाणिमादिलाभः

(पातंजलि योगसूत्र)

(ङ) शैलानामवरोहनीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्थांतरलीनतां विनहति स्कन्धोदयात्पादपाः ।
सन्तानैस्तमुभा वनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्यभुवनं मत्पाश्वमानीयते ॥

(शाकुन्तल ७।८)

(च) रथ-रथ में वायु का जोड़नाः—

"प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वम्"

(ऋ० ५।४६।६७)

वायु को तुम अपने रथ में जुड़ने वाला बनाओ अर्थात् ऐसा प्रबन्ध करो कि जिससे वायु तुम्हारे रथ का संचालन करे ।

(छ) अनश्व रथ—

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजनीयतोः । तेनाहं भूरि चाकन

(ऋ० ६।७२०।७०३)

शक्तिशालियों को इधर-उधर ले जाने वाला रथ अनश्व (घोड़े आदि से रहित) हैं । उससे भी मैं बहुत चमकता हूँ ।

(ज) त्रिचक्र रथ—

त्रिवन्धरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विवना वीरमस्मे ॥

(ऋ० ६।६६८।२)

हे विद्वान शिल्पी जनो ! आप तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त, तीन प्रकार के आचरणों से युक्त, तीन घेरों वाले, उत्तम-रचना वाले, तीन चक्रों वाले रथ से सज जाओ ।

यन्त्राणामाकृतिस्तेन निर्णेतुं नैव शक्यते ।
यथावद्वीजसंयोगः सौश्लिष्ट्यं श्लक्ष्णतापि च ।।
अलक्षता निर्वहणं लघुत्वं शब्दहीनता ।
शब्दे साध्ये तदधिक्यमशैथिल्यमगाटता । इत्यादि ।
(समरांगण सूत्रधार ३१।४५-७६)

विज्ञान व बिमान सम्वन्धी प्रमाण और हस्तलेख

अगस्त्य संहिता	क्षीरी पट-कल्प	रूप-शक्ति प्रकरणमूत्र(आंगिरास)
भारद्वाज संहिता	लंकावतार	सौदामिनि कला
जैमिनीय ब्राह्मण	लोह तंत्रम् (शैकटायन)	संसतकबध
शत्रपथ ब्राह्मण	लोहदीप	सत्मय दर्पण
तांड्य ब्राह्मण	लोह रत्नाकर	शक्ति सूत्रम् (अगस्त्य)
अगतत्व लहरी (अंश्वलायन)	लोहार्णव	शुद्धि-विद्या कल्पम् (अश्वलायन)
आकाश शास्त्रं (भारद्वाज)	लोह शास्त्रम् (शकटायन)	तन्त्र कृष्णइयम्
अम्सु-ज्ञानं (अम्सुम तांत्रं)	लोह संग्रह (पिसारन)	वाल्मीकिं गणितम् (वाल्मीकि)
अण्ड कौस्तुभ (पराशर)	मार्ग निबन्ध ग्रन्थ	वैश्वानर तन्त्रम् (नारद)
अनुकरण शब्द शास्त्र (कंडिका)	मेघोत्पति प्रकरण	वायु तत्व प्रकरणम् (शकटायन)
भूगर्भ शास्त्र (या खनिज शास्त्र)	मुकुर कल्प	विमान महात्म्य
ब्रह्मपद	मुष कल्प	विमान लक्षणम्
दर्पण कल्प	नामार्थ कल्प (अत्रि)	विमान विद्या
धातु वादम् (अश्विनी कुमार)		विमान चन्द्रिका
धातु सर्वस्वम् (बौधायन)	नामार्थ कल्पद्रुम	विष निर्णय अधिकार
धूम प्रकरणम् (नारद)	निर्णय अधिकार	व्योमयान तन्त्र

गरुड़ यन्त्र	औषधि कल्प (अत्रि)	व्योमयानर्क प्रकाश,
गौतमी तंत्र, घटोद्रच पद्म	पट संस्कार रत्नाकर	विश्वनाथ प्रकाश, संस्कार दर्पण
जीव सर्वस्वम् (जैमिनी)	प्रपंच सार	
करक प्रकरणम् (अत्रि)	परिभाषा चन्द्रिका	यंत्र सर्वस्वम्
कौमुदी (सोमनाथ)	परिमील तन्त्र	यन्त्रिक (वाराह मिहिर)
खेटयान प्रदीपका (चैक्रायनी)	प्रपंच लहरी (वशिष्ठ)	यंत्र कल्प
	परांकुश	यानविन्दु, (वाचस्पति)
क्रिया सार	रहस्य लहरी	यन्त्रार्णव
कुण्ड कल्प	रुक् हृदय (लल्ल)	यन्त्र शास्त्र अधिकार

हस्तलेखों में बिमान सम्बन्धी अन्य उल्लेख

१—ऋग्वेद, चतुर्थमण्डल, ३६ वाँ श्लोक, ४।३६ श्लोक का १—२ मन्त्र

२—ऋग्वेद १८२।५, समुद्र तथा वायु को वाहक के रूप में कहा गया है।

३—यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। यजुर्वेद ६—२१ में चन्द्र पृथ्वी तथा शून्य के मध्य वायुयान दृश्य तथा मुक्त रूप में संचालित होता है। वाजसनेय संहिता १७।५६

४—ऋग्वेद के निम्न मन्त्री में भी विमानों के उल्लेख हैं।

१।११६।३,४,५ १।११७।१४,१५ ६।६२।६, १।२५।७, १।११२।१२, १०।१२०।१०, १०।३६।१२, १।२०।३, १।३६।१२, १।३४।२, १।६२।२८, १।२१८।१-२,४, १।१२६।४, १।१५७।३, ५।७७।३, ५।८५।२६, १।३४।१२ तथा १।४७।२

ऋग्वेद संहिता

१।८।८।३, १।८।८,६,५,१, १।३।४।२, १।३।५।१, १।२।३४।३, १।६।६।४ तथा २।३।२३।१-२

[क्रमशः]

मीटर के जन्म की कहानी

बसंत पेड़णेकर, उद्योग उपनिदेशक (मेट्रिक), बम्बई सरकार, बम्बई

सभी जातियों में युग-युग से लम्बाई नापने के लिये शरीर के विभिन्न अंगों का पैमानों के रूप में प्रयोग होता आया है। इनमें उंगलियों, बित्ता, हाथ, पैर, ऊंचाई और कदम आदि उल्लेखनीय हैं। अब भी पिछड़े हुए देशों और भारत के भी कुछ भागों में नित्य प्रति की खरीद-फरोख्त में इन्ही पैमानों को काम में लाया जाता है। दोनों हाथ फैला देने पर एक हाथ की उंगली के छोर से लेकर दूसरे हाथ की उंगली के छोर तक की लम्बाई को "फैदम" कहते हैं और यूरोप के अनेक देशों में लम्बाई नापने के लिए इस फैदम का भी प्रयोग किया जा चुका है। यह लगभग ६ फीट अथवा २ मीटर लम्बी होती थी। प्राचीन काल में अन्य पैमानों की लम्बाइयां इस प्रकार होती थीं:—

(१) हाथ—यह लम्बाई कोहनी से लेकर उंगली के अन्तिम छोर तक मानी जाती है। यह ४६ से ४८ सेण्टीमीटर (१८ से १६ इंच) तक होती है।

(२) बित्ता—यह लम्बाई हथेली फैलाने पर अंगूठे के सिरे से लेकर सब से छोटी अंगुली के सिरे तक मानी जाती है। बित्ता हाथ का आधा अर्थात् २३ से २४ सेण्टीमीटर (६ इंच) तक होता है। इसका अब भी बहुत प्रयोग होता है।

(३) गिरह—चार उंगलियों की चौड़ाई के बराबर की लम्बाई। यह बित्ता की एक तिहाई और हाथ का छठा भाग अर्थात् लगभग ८ सेण्टीमीटर (३ इंच) होती है।

(४) अंगुल—बीच की उंगली की मोटाई के बराबर। यह बित्ता की लम्बाई का बारहवां भाग अर्थात् लगभग २ सेण्टीमीटर (३।४ इंच) होती है।

एक समय था जब ये सभी साधन नापने के लिये प्रयुक्त होते थे। आदमी ३॥ हाथ लम्बा माना जाता था। अब भी भारत में बहुत से स्थानों पर कपड़ा हाथ से नापा जाता है और २ हाथ को एक गज के बराबर माना जाता है। परन्तु हाथ आदि सभी मनुष्यों के बराबर नहीं होते। इससे बड़ी गड़बड़ होती थी। इसे दूर करने के लिये मनुष्य ने अधिक निश्चित लम्बाई वाले पैमाने निकाले। ये विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के थे। कहीं सीधा सादा लकड़ी का गज बना लिया गया, कहीं किसी आयताकार छड़ पर पालिश करके काम चलाया गया, तो कहीं धातु की पट्टियों से नापने का काम लिया जाने लगा। भारत भर में कहीं भी ये गज एक सी डिजाइन के नहीं होते। जिन राज्यों ने अपने यहां कानून प्रतिमानित ढंग के गज चलाये हैं वहां उनकी लम्बाई ३६ इंच होती है। इन्हें कहीं 'गज' कहते है तो कहीं 'बार'। उत्तर भारत के कुछ स्थानों पर गज को १६ गिरह में बांटा जाता है और प्रत्येक गिरह २.२५ इंच का होता है। दक्षिण भारत में गज को ३६ इंचों में बांटा जाता है। इस प्रकार गज के बारे में भी देश में काफी विभिन्नता है।

मीटर प्रणाली चालू हो जाने पर समस्त गड़बड़ी दूर हो जायगी और सब प्रकार के गजों के स्थान पर मीटर का प्रयोग होने लगेगा जो देश के सब स्थानों पर एक सा होगा।

मीटर क्या है:

'मेट्रिक' शब्द मीटर से निकला है। मीटर प्रणाली का आधार यही मीटर है। मीटर की लम्बाई उत्तर तथा दक्खिणी ध्रुवों से निकलने वाली परिधि रेखा के चौथाई भाग के करोड़वें अंश के बराबर मानी गई है। बाद को विज्ञान की उन्नति हुई और मीटर का संसार के अधिकांश देशों में चलन हो गया। उसके लिये सन् १८७० से अनेक सम्मेलन होने शुरू हुए और अन्त में 'मीटर कनवेन्शन' तथा बाट और पैमानों के अन्तर्राष्ट्रीय ब्यूरो की स्थापना हुई। ब्यूरो में मीटर और किलोग्राम के अन्तर्राष्ट्रीय आद्यरूप तैयार किये गये। इन्हें १८८९ में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिमान मान लिया गया और इसी रूप में इन्हें अब भी संसार भर में माना जाता है।

भारतीय संसद ने १९५६ में बाटों और प्रतिमानों का अधिनियम पास किया। इसके अनुसार देश में मीटर प्रणाली पर आधारित बाट तथा पैमाने चलाने का निश्चय किया गया है और लम्बाई नापने की प्रतिमानित इकाई मीटर के अन्तर्राष्ट्रीय आद्य-रूप को माना गया है। भारत में इसी मीटर की प्रतिकृति राष्ट्रीय आद्यरूप के तौर पर प्रयुक्त होगी। व्यापारियों द्वारा काम में लाये जाने वाले मीटर भी इसी आद्यरूप के अनुरूप होंगे जिनकी जांच अन्य प्रतिमानों द्वारा की जाया करेगी। मीटर और उसके अंश तथा उससे दुगने आदि पैमाने किस प्रकार के होंगे इसका विवरण भारतीय मानक संस्था नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित भा० मा० १०५९-१९५८ व्यापारिक मीटर लम्बाई पैमाने (न मुड़ने वाले) में दिया गया है जो हाल में ही प्रकाशित किया जाने वाला है। इस प्रतिमान में व्यापारियों द्वारा काम में लाये जाने वाले उस मीटर का वर्णन किया गया है जो कि मोडा नहीं जाया करेगा। इसमें इस्पात अथवा अन्य धातुओं के फीतों अथवा जंजीरों से बनाये गये पैमानो का वर्णन नहीं किया गया है। लम्बाई नापने के लिये स्वीकृत पैमाने इस प्रकार होंगे

धातु के	लकड़ी के
१) मीटर अथवा १ मी०	२ मीटर अथवा २ मी०
२) ०.५ मीटर अथवा ०.५ मीटर	

धातु के पैमाने हल्के इस्पात अथवा पीतल के बनाये जायंगे जिन पर निकल अथवा क्रोमियम की पालिश की जायगी या ये स्टेनलेस स्टील के होंगे।

मीटर का रूप पहली बार देखने पर कुछ राज्यों में प्रयुक्त होने वाले प्रतिमानित गज जैसा ही लगेगा। परन्तु सावधानी के साथ देखने पर प्रकट होगा कि मीटर की डिजायन इस समय चलने वाले गज से भिन्न होगी। दोनों के बीच सबसे बड़ा अन्तर तो यह होगा कि मीटर पर सरकारी मोहर लगाये जाने की व्यवस्था होगी। यह व्यवस्था दोनों सिरों से १ या २ सेण्टीमीटर हट कर रहेगी। मोहर के सिरों तक तीर बने होंगे जिनके फल यह प्रकट करेंगे कि मीटर की लम्बाई कहां से आरम्भ होती है। इसके अलावा मीटर की लम्बाई लगभग ३९.५ इंच

होगी। इस प्रकार मीटर गज से लम्बा होगा और इसे देखकर ही कोई भी व्यक्ति उसे पहचान सकेगा।

चिन्हों का अंकनः

मीटर पहले १० सेण्टीमीटरों तक प्रत्येक सेण्टीमीटर के चिन्ह अंकित रहेंगे। इसके बाद हर पांच सेण्टीमीटर के बाद ये चिन्ह अंकित किये जायंगे। हर दस सेण्टीमीटर के बाद लगाये जाने वाले चिन्हों पर अंक पड़े होंगे। इन्हें पढ़ने में आसानी करने की दृष्टि से सेण्टीमीटरों के चिन्ह चौड़ाई के आधे भाग तक बनाये जायेंगे जबकि पांच-पांच सेण्टीमीटरों के चिन्ह पूरी चौड़ाई में बानये जायंगे। इनके अतिरिक्त हर २५ सेण्टीमीटरों के बाद एक काटा अंकित किया जायेगा। पूरे मीटर में काटा के चिन्ह २५, ५० और ७५ सेण्टीमीटरों के बाद अंकित किये जायंगे। ये सभी चिन्ह केवल एक ओर बनाये जायंगे। पैमाने का नाम दूसरी ओर शुरू के सिरे से प्राय: एक तिहाई लम्बाई छोड़ कर लिखा जायगा। इसी प्रकार निर्माता का नाम तथा ट्रेड मार्क दूसरे सिरे से एक तिहाई लम्बाई छोड़ कर लिखा जायगा। चिन्हों के अंक अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में लिखे जायंगे जिसके पहले हिन्दी में 'मीटर' और बाद में अंग्रेजी में 'metre' शब्द लिखा रहेगा।

लम्बाई के पैमानों की क्षम्य अशुद्धियां निर्धारित कर दी गई हैं और ऐसा करने में यह भली भांति विचार लिया गया है कि इनके द्वारा कपड़ा, पट्टे, तार, फीते आदि नापे जायंगे जिनमें शुद्ध नाप करने की काफी आवश्यकता होगी। इसलिये यह तय किया गया है कि हर ५ सेण्टीमीटर के बाद जो चिन्ह लगाये जायं उनमें ०.२५ मिलीमीटर से अधिक-घटा बढ़ी नहीं होनी चाहिए। इनके सिवा पैमाने के शुरू वाले सिरे से लेकर किसी भी चिन्ह तक १ मिलिमीटर की लम्बाई १००१ मिलीमीटर से अधिक अथवा ९९९.५ मीटर से किसी दशा में कम नहीं होनी चाहिये। आधे मीटर के लिये ये अशुद्धियां भी आधी हो जायंगी।

यहाँ बताई गई क्षम्य अशुद्धिया मुख्यत: नये पैमानों के बारे में हैं। प्रयोग में आते रहने वाले पैमानों के लिये ये १ मीटर में १ मिलीमीटर और आधे मीटर में ०.५ मिलीमीटर तक हो सकती हैं। यदि पैमाने इतने से अधिक बड़े अथवा छोटे निकलें तो उन पर मोहर नहीं लगाई जायगी।

लकड़ी के पैमाने:

मीटर प्रणाली के अन्तर्गत लकड़ी के पैमाने केवल २ मीटर की लम्बाई वाले ही स्वीकृत किये गये हैं। ये पैमाने इमारती लकड़ी आदि नापने के काम आते हैं। लकड़ी के पैमाने २ मीटर से अधिक लम्बे नहीं बनाये जायेंगे क्योंकि लकड़ी के सिंकुड़ जाने से उनकी लम्बाई में फर्क पड़ जाने की आशंका रहती है। १ मीटर लम्बे पैमाने भी लकड़ी के नहीं बनाये जायंगे क्योंकि फिर धातु और लकड़ी के पैमानों के मध्य गड़बड़ी फैल जायगी। धातु की अपेक्षा लकड़ी के पैमाने कम सही होते हैं। लकड़ी के पैमाने भली प्रकार सुखाई हुई सागौन, सीसम, हल्दू, विजासाल आदि अच्छी लकड़ियों के बनाये जायंगे जिसके टेढे हो जाने अथवा सिकुड़ जाने का डर न रहे।

धातु के पैमानों के समान लकड़ी के पैमाने पर भी पहले दस सेण्टीमीटरों तक प्रति सेण्टी-मीटर पर चिन्ह अंकित किये जायंगे। इसके बाद ५ प्रति सेण्टीमीटरों के बाद चिन्ह अंकित होंगे। सेण्टीमीटरों के अंक प्रति १० सेण्टीमीटरों के बाद ही लिखे जायंगे। प्रति २५ सेण्टीमीटर के बाद काटे का निशान भी होगा। सरकारी मोहर लगाने के लिये पैमाने के दोनों सिरों पर धातु मढ़ी जायगी। यह धातु की चौड़ाई भी पैमाने की लम्बाई में शामिल होगी।

यह निश्चय किया गया है कि क्षम्य अशुद्धि ५ सेण्टीमीटर में १ मिलीमीटर से अधिक नहीं होनी चाहिये। पैमाने के शुरू वाले सिरे से किसी भी चिन्ह तक २ मिलीमीटर से अधिक अशुद्धि नहीं होनी चाहिए। लकड़ी के नये पैमाने की लम्बाई में जो क्षम्य अशुद्धि रह जाती है उसके अनुसार वह अधिक से अधिक ४ मिलीमीटर बड़ा अथवा २ मिलीमीटर कम हो सकता है। काम में आने वाले पैमाने में यह क्षम्य अशुद्धि ४ मिलीमीटर से अधिक नहीं होनी चाहिए। धातु के पैमानों के समान लकड़ी के पैमानों पर भी एक सिरे पर प्रायः १।३ लम्बाई पर पैमाने का नाम तथा दूसरे सिरे पर निर्माता का नाम और ट्रेड मार्क अंकित रहेंगे।

(३१ वे पेज का शेष)

टेलीविजन का शुभारम्भ—

१५ सितम्बर को राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने नई दिल्ली में आल इण्डिया।रेडियो द्वारा संचा-लित टेलीविजन सर्विस का शुभारम्भ किया। इस केन्द्र के खुल जाने से दिल्ली के चारों ओर १२ मील तक के लोग टेलीविजन पर होने वाले कार्यक्रमों को घर बैठे देख-सुन सकेंगे। यह कहा गया है कि अभी २५ स्थानों में टेलीविजन लगाये गये हैं, किन्तु शीघ्र ही उनमें वृद्धि की जावेगी। भारत के ही।इतिहास में नहीं वरन् दक्षिणी पूर्वी एशिया के लिये यह उल्लेखनीय घटना है कि टेली-विजन कार्य-क्रम सुचारु रूप से संचालित हो रहा है। टेलीविजन के द्वारा देश में मनोरंजन का नवीन साधन जुटाया गया है। भारत के लिये यह अपूर्व अवसर है कि 'इलेक्ट्रानीय-विज्ञान' का समुचित विकास करे।

सार संकलन

१ राकेट क्यों उड़ते हैं ?

कुछ समय पूर्व तक लोगों को राकेटों और प्रक्षेपणास्त्रों के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं थी और राकेट उनके लिए अत्यधिक कौतूहल की वस्तु थी। परन्तु दो वर्षों की इस संक्षिप्त अवधि में लोगों ने राकेटों की उड़ानों, प्रक्षेपणास्त्रों के परीक्षणों और उपग्रहों की स्थापना के इतने अधिक समाचार पढ़े हैं कि अब किसी देश द्वारा किए गए राकेट परीक्षणों और उड़ानों का समाचार पढ़ कर उन्हें विशेष कौतूहल नहीं होता। अन्य दैनिक समाचारों की तरह वह इस प्रकार के समाचारों का भी अभ्यस्त हो गया।

फिर भी, बहुत कम लोगों को यह ज्ञात है कि राकेट क्या है, प्रक्षेपणास्त्र किसे कहते हैं और ये किस प्रकार छोड़े जाते हैं; किन भौतिक सिद्धान्तों के आधार पर ये कार्य करते हैं ?

राकेटों के निर्माण में प्रयुक्त सिद्धान्तः

अब तो विज्ञान के सामान्य छात्र भी यह जानते हैं कि 'जितनी ही तेज कोई क्रिया होगी, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही उग्र होगी।' परन्तु न्यूटन के पूर्व इस सिद्धान्त का ज्ञान बहुत कम लोगों को था। प्रश्न यह है कि इस सिद्धान्त का उपयोग किस प्रकार हुआ है तथा राकेट चालित और जेट चालित यान किस प्रकार गति प्राप्त करते हैं ?

ईंधन जलता है और इस प्रक्रिया में अत्यधिक ताप युक्त गैसों का अविर्भाव होता है। ये गैसें फैलती है और राकेट की पूँछ से अत्यधिक प्रबल वेग से बाहर की ओर भागती है। गैसों के राकेट की पूँछ से निकल कर भागने की क्रिया की जो प्रतिक्रिया होती है उसी से राकेट को संचालन-शक्ति प्राप्त होती है। यह प्रतिक्रिया उतनी ही उग्र होती है, जितनी उग्र राकेट से गैसों के निःसरण की क्रिया।

सहज ही यह प्रश्न उठता है कि यदि राकेट और जेट दोनों ही इस सिद्धान्त पर आधारित है तो इनमें अन्तर क्या है ?

जेट और राकेट में मुख्य अन्तर यह है कि ईंधन जलाने के लिए जेटयान वायुमण्डल से ऑक्सीजन खींचता है। अतः जेट चालित यान उतनी ऊँचाई तक तो उड़ सकते हैं, जहाँ तक वायु में ऑक्सीजन मौजूद रहती है। लेकिन राकेटों में आक्सीजन अन्दर ही मौजूद रहता है, अतएव वे किसी भी ऊँचाई पर बिना किसी बाधा के कार्य कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध में यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि यदि गर्म गैसों द्वारा वायु को प्रबल वेग से ठेलने की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही राकेट को गति प्राप्त होती है तो वायु रहित अन्तरिक्ष में राकेट किस प्रकार चल सकता है ? वस्तुतः गर्म गैसों द्वारा वायु को ठेलने के कारण राकेट को गति प्राप्त नहीं होती। यह गति गर्म गैसों के राकेट से टकराने के फलस्वरूप उत्पन्न शक्ति से प्राप्त होती है। तथ्य तो यह है कि राकेट के संचालन के लिए जितनी कम वायु हो उतना ही अच्छा होता है, क्योंकि वायु के अधिक परिमाण में होने पर राकेट से निःसृत होने वाली गैसों के मार्ग में रुकावट आती है और उनकी गति घट जाती है। फल यह होता है कि निःसरण की गति मन्द होने के कारण राकेट की गति भी धीमी पड़ जाती है।

राकेटों में दो प्रकार के ईंधन इस्तेमाल किये जाते हैं—ठोस ईंधन और तरल ईंधन। तरल ईंधन से चलने वाले राकेट में ईंधन और जारक तत्व अलग-अलग टंकियों में रहते हैं। 'कम्बशनचैम्बर' में ये दोनों पदार्थों-ईंधन और जारक तत्वों का संयोग होता है। इसके फलस्वरूप ईंधन जल उठता है।

फिर राकेट और प्रक्षेपणास्त्र में क्या अन्तर है ? क्या सभी राकेटों को प्रक्षेपणास्त्र की संज्ञा दी जा सकती है ?

व्यापक अर्थों में 'प्रक्षेपणास्त्र' शब्द का अर्थ होता है कोई ऐसा शस्त्र जिसका प्रक्षेपण किया जाए (फेंका जाए)। इस अर्थ में सभी राकेटों को प्रक्षेपणास्त्र कहा जाएगा। लेकिन सैनिक अर्थों में एक प्रक्षेपणास्त्र स्वनियंत्रित शस्त्र होता है। अतएव इस संकुचित अर्थ में सभी राकेटों को 'प्रक्षेपणास्त्र' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सभी राकेटों को शस्त्र के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाता है और इनमें से कुछेक शीघ्र ही मनुष्य द्वारा संचलित हो जाएँगे।

तो क्या वही प्रक्षेपणास्त्र राकेट कहे जा सकते हैं ? इसका उत्तर भी नकारात्मक है, क्योंकि व्यापक अर्थों में पत्थर से भी 'प्रक्षेपणास्त्र' का कार्य लिया जा सकता है। लेकिन आधुनिक प्रक्षेपणास्त्रों में से कुछ तो राकेट चालित है और कुछ जेट-चालित।

प्रेक्षपणास्त्रों की भी कई किस्में होती हैं परन्तु उनमें दो मुख्य हैं : नियंत्रित प्रक्षेपणास्त्र और वैलिस्टिक प्रक्षेपणास्त्र। लक्ष्य की ओर उड़ान भरते हुए नियंत्रित प्रक्षेपणास्त्र पर पूरा नियंत्रण रहता है और उड़ान के दौरान भी इसकी दिशा बदली जा सकती है। यह गतिशील लक्ष्यों को बेधने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता हैं। लेकिन वैलिस्टिक प्रक्षेपणास्त्र का पथ-प्रदर्शन प्रारम्भिक उड़ान में केवल थोड़े समय तक ही किया जा सकता है। इंजन जल जाने पर यह अपने लक्ष्य स्थान तक की यात्रा ठीक उसी प्रकार पूरा करता है जिस प्रकार तोप का गोला अपने लक्ष्य पर गिरता है। इसीलिए वैलिस्टिक मिसाइल का उपयोग केवल स्थिर लक्ष्यों को बेधने के लिए किया जाता है।

राकेट इंजिनियरों ने निरन्तर परिश्रम करके बहुखण्डीय राकेटों का निर्माण करने में भी सफलता प्राप्त की है।

तीन खण्ड वाले राकेट में तीन राकेट एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। पहला खण्ड राकेट के छूटने के समय पृथ्वी पर ही प्रज्वलित हो जाता है और इसी के वेग से सम्पूर्ण राकेट ऊपर उठता है। पहले खण्ड के जल कर गिर जाने पर दूसरा खण्ड चालू हो जाता है। दूसरा खण्ड भी जल जाने पर अलग हो जाता है और तीसरा खण्ड कार्य करने लगता है। सहज ही यह प्रश्न उठता है कि राकेटों को एक के ऊपर एक फिट न कर एक साथ क्यों नहीं बांध दिया जाता और एक साथ ही उन्हें क्यों नहीं छोड़ दिया जाता ? वस्तुतः एक के ऊपर एक राकेट फिट करने का एक लाभ यह है कि अत्यावश्यक हो जाने पर भार को राकेट से अलग किया जा सकता है और इस प्रकार उतनी ही संचालन-शक्ति राकेट को अधिक दूर तक ले जाने में समर्थ हो जाती है।

राकेट की शक्ति बढ़ाने के सम्बन्ध में भी निरन्तर अनुसन्धान किए जा रहे हैं। इसके लिए वैज्ञानिकों ने कुछ उपाय भी खोज निकाले हैं। वे या तो तरल जारकों (आक्सीडाइजर) का इस्तेमाल करते हैं या ईंधन की मात्रा बढ़ाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि ईंधन जितनी देर तक जलता रहेगा, राकेट की गति भी उतनी ही बढ़ती जाएगी। वस्तुतः बात यह होती है कि ईंधन में निहित रसायनिक-शक्ति ताप में परिणत हो जाती है। और यही शक्ति फिर यांत्रिक-शक्ति का रूप धारण कर लेती है।

अणुशक्ति का जिस तीव्र गति से विकास हो रहा है; उसे देखते हुए लोगों को यह कौतूहल होने लगा है कि अणुशक्ति चालित राकेट क्या आज के सामान्य राकेटों से कुछ भिन्न होगा ?

वस्तुतः मुख्य अन्तर यह होगा कि रसायनिक-शक्ति का स्थान, अणुशक्ति ले लेगी। आणविक भट्ठी द्वारा गैसें गर्म होंगी और जारक पदार्थों की भी आवश्यकता नहीं होगी।

अयन शक्ति चालित राकेटों का निर्माण करने की बात बहुत से अमेरिकी वैज्ञानिक सोच रहे हैं। अयन शक्ति चालित राकेट में आणविक भट्ठी से निःसृत होने वाली अणुशक्ति तापशक्ति में बदलेगी और यही तापशक्ति विद्युत-शक्ति द्वारा अयनों का स्वरूप ग्रहण करेगी और यही अयन राकेट से बाहर निकलेंगे।

सामान्य रासायनिक ईंधन से चलने वाले राकेटों का ईंधन तेजी के साथ जलेगा और तीव्र वेग से निःसृत होने वाली गैसों के कारण राकेट एकदम प्रचण्ड वेग धारण कर लेगा। अणुशक्ति और अयन शक्ति चालित राकेटों में शक्ति का स्रोत यूरेनियम होगा, जिसमें अपार शक्ति निहित रहती है। यूरेनियम का एक टुकड़ा बहुत समय के लिए काफी होगा। लेकिन भारी होने के कारण इसकी धक्का देने की शक्ति कुछ कम रहेगी।

फिर प्रश्न उठता है कि पृथ्वी से उपग्रह स्टेशन तक पहुंचने और उपग्रह से अन्य ग्रहों की उड़ान भरने के लिए कौन से राकेट सर्व श्रेष्ठ रहेंगे ?

धक्का देने की अधिक शक्ति रखने के कारण पृथ्वी से उपग्रह-स्टेशन तक पहुंचने के लिए

सायनिक-ईंधन से संचालित राकेट सर्वोत्तम रहेंगे, लेकिन ग्रहों की यात्रा के लिए अयन राकेट यानों का उपयोग करना ठीक रहेगा, क्योंकि उपग्रह स्टेशन से उड़ने वाले राकेटों को अधिक धक्का देने की शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उन्हें तो ऐसा ईंधन चाहिये, जो दीर्घकाल तक चल सके।

२ अन्तरिक्ष-यान निर्माण और संचालन:

अन्तरिक्ष-यान अब कल्पना की वस्तु नहीं रहा। शीघ्र ही वह साकार रूप ग्रहण करने वाला है। मानव को अन्तरिक्ष में ले जाने वाले यान का निर्माण करने के पूर्व इस सम्बन्ध में पूर्ण निश्चय कर लेना है कि यान और उसमें फिट अत्यधिक जटिल मशीनों के संचालन में मानव-चालक को कितना योग देना है ? सहज ही यह प्रश्न उठता है कि चालक स्वयं निष्क्रिय और चुप हो कर सीट में बैठा रहे और यान के संचालन और मशीनी उपकरणों के नियन्त्रण का पूर्ण दायित्व यन्त्रों पर छोड़ दे अथवा स्वयं भी इस कठिन कार्य में सक्रिय योग दे ?

लगभग सभी प्रकार की स्वचालित मशीनें मनुष्य द्वारा किए गए विशिष्ट निर्णयों के अनुसार ही अपना कार्य करती हैं। मनुष्य ही उन्हें चला सकता है और उसके कार्य में परिवर्तन भी वही कर सकता है। अतएव यह तो पूर्ण स्पष्ट है कि अन्तरिक्ष-यान के संचालन में भी निर्णय करना मनुष्य का कार्य होगा और इस के लिए यह आवश्यक है कि वह समस्त सूचना मनुष्य को प्राप्त होती रहे, जिनके आधार पर उसे निर्णय करते हैं। वस्तुतः निर्णय एक प्रकार से तथ्यों के समीक्षात्मक मूल्यांकन का ही दूसरा रूप है और इसी समीक्षात्मक मूल्यांकन के लिए यह परमावश्यक है कि मानव-मस्तिष्क समस्त तथ्यों को सहज ही ग्रहण कर सके।

अन्तरिक्ष यात्रा को अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए इस समस्त यात्रा को कई भागों में बांटा जा सकता है जैसे प्रारम्भिक उड़ान; कक्षा की ओर उड़ान; कक्षा में स्थापना; कक्षा से अलग हो कर पृथ्वी के वायु-मण्डल में पुनः प्रवेश कर पृथ्वी पर उतरना इत्यादि।

संक्षेप में, पर प्रकार की उड़ान के लिए यह आवश्यक है कि उड़ान के प्रत्येक चरण के सभी पहलुओं के सम्बन्ध में मनुष्य को पूरी जानकारी होनी चाहिए। सामने आने वाली बाधाओं पर विजय पाने के लिए अन्तरिक्ष-यान के चालकों में किन गुणों और विशेषताओं का समावेश हो, यह मालूम होना भी परमावश्यक है।

इस परमावश्यक जानकारी को प्राप्त करने के लिए हमें वायु की घनता तथा विभिन्न ऊँचाइयों पर वायु घनत्व में पड़ने वाले अन्तर, वास्तविक तापमान और उड़ान की प्रक्रिया में उत्पन्न हो सकने वाले उच्चतम तापमान इत्यादि के सम्बन्ध में सही सूचना संग्रह करनी होगी। यह तो एक उदाहरण है। आधारभूत सूचना एकत्र करने के लिए हमें इसी प्रकार के अनेको विश्लेषण करने पड़ेंगे।

आवश्यक तथ्यों की पूर्ण जानकारी सुलभ हो जाने पर मनुष्य उन्हें सम्बद्ध कर कल्पना को साकार रूप प्रदान करने का प्रयत्न करेगा। मनुष्य का संसार वही है, जो वह अपनी आँखों से देखता

है। इस संसार की प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में उसकी जानकारी, उसकी कल्पना और उसकी अनुभूति ईक्षण शक्ति पर निर्भर करती है। जैसा स्वरूप और जैसा आकार-प्रकार उसे यहाँ दृष्टिगोचर होता है, उसी के आधार पर वह सृष्टि की अन्य वस्तुओं की कल्पना करता है। उदाहरणार्थ, अन्तरिक्ष यान का चालक अपने यान और स्वयं को एक इकाई के रूप में ही ग्रहण करेगा। सामान्य वायु-यान में सामने लगी खिड़की से यान-चालक को इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती रहती है, परन्तु उल्काओं के प्रहार के भय से अन्तरिक्ष-यान में इस प्रकार की खिड़की नहीं बनाई जा सकेगी। तब यह आवश्यक होगा कि वायुयान के अन्दर कोई ऐसी स्वचालित यांत्रिक-व्यस्था की जाये, जिससे समस्त वाह्य अन्तरिक्ष का चित्र, यानचालक यान के अन्दर अपनी सीट के सामने लगे खिड़कीनुमा परदे पर देख सके।

वाह्य वस्तुओं में एक सबसे महत्वपूर्ण वस्तु क्षितिज मानी जाती है, क्योंकि इसको देख कर ही यान-चालक अपने यान की वास्तविक स्थिति का पता लगाता है। लेकिन अन्तरिक्ष में उसे क्षितिज जैसी कोई वस्तु दृष्टिगत नहीं होगी। लेकिन उसके चारों ओर फैली सृष्टि के दृश्यों को ग्रहण कर स्वचालित यान्त्रिक-व्यवस्था यान के अन्दर एक ऐसा कृत्रिम खाका प्रस्तुत कर सकेगा, जिससे चालक को यान के बाहर की दुनिया के बारे में काफ़ी जानकारी मिल सकेगी। अन्तरिक्ष में उड़ते समय यान-चालक को प्रकाश जैसी किसी वस्तु के दर्शन नहीं होंगे। उसे यही प्रतीत होगा कि जैसे वह अमावस की काली रात में उड़ रहा हो। उसे न तो कोई क्षितिज, न भूमि और न आसमान के दर्शन होंगे। उसे केवल यही प्रतीत होगा कि उसके आस-पास और चारों तरफ नक्षत्र और तारों के समूह बिखरे पड़े हैं। ऐसी स्थिति में यदि उसे अपनी स्थिति समझने के लिए कोई कृत्रिम आधार सुलभ न रहा तो विशाल शून्य में वह अपने को असहाय और पूरी तरह पथ-भ्रष्ट अनुभव करेगा।

यान-चालक को इस बात का भी पता रहना चाहिए कि पृथ्वी से कौन सा रास्ता किस ओर जाता है। अपनी दृष्टि को अन्तरिक्ष की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए भावनाओं पर काबू पाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे पृथ्वी पर इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। अन्तरिक्ष-यान का उड़न मार्ग वक्राकार होगा और यान भी वक्राकार होंगे। लेकिन चूँकि दूरी बहुत अधिक होगी, अतएव यान चपटा प्रतीत होगा। अन्तरिक्ष में चालक के लिए कोई निर्धारित मार्ग सुलभ नहीं रहेगा, अतः यह आवश्यक होगा कि या तो सिद्धान्त रूप में मार्ग की कोई कल्पना की जाए या ऐसे उपकरणों की व्यवस्था हो जो मार्ग-दर्शन का कार्य कर सकें।

यान के अन्दर स्क्रीन पर काल्पनिक मार्ग का निर्माण करने के लिए उन्हीं सिद्धान्तों का उपयोग किया जा सकता है, जो पृथ्वी पर सड़क-मार्ग के निर्माण के लिए प्रयुक्त होते हैं। इस कल्पित मार्ग पर उड़ान भरने वाला अन्तरिक्ष-यान-चालक भी लगभग ऐसा ही अनुभव करेगा, जैसे

सड़क पर मोटर हाँक रहा हो, क्योंकि पर्दे पर उसे प्रकाशपूर्ण ऐसा भाग दिखेगा, जिस पर उसका यान मोटर की तरह दौड़ रहा होगा। मार्ग सम्बन्धी सभी आवश्यक सूचना सुलभ करना और उसे यह बताना भी आवश्यक होगा कि निर्धारित मार्ग पर आरूढ़ रहने के लिए उसे क्या करना चाहिए। यान में फिट विभिन्न उपकरणों से उड़ान के जो आंकड़े और तथ्य मिलते रहेंगे, उनका उपयोग कर विद्युदणु गणक-यन्त्र टेलिविजन के पर्दे पर चालक को यह बताता रहेगा कि वह कितनी ऊँचाई पर किस स्थिति में है, किस ओर जा रहा है। मार्ग से भटक जाने की सूचना भी उसे पर्दे पर मिल जाएगी। यदि कल्पित मार्ग पर कुछ संकेत सूचक यन्त्र एक निर्धारित गति से उड़ते दिखते रहें तो यान-चालक को अपने यान की गति का अनुमान लगाने में सहायता मिलेगी। इन संकेत-चिन्हों की गति को दृष्टि में रख कर यान यह मालूम कर सकेगा कि उसका यान निर्धारित गति से अधिक गति से उड़ रहा है या कम गति से, ठीक उसी प्रकार जैसे एक मोटर चालक सड़क पर दौड़ती हुई अन्य गाड़ियों को देख कर अपनी गति का अनुमान लगा लेता है।

इस प्रकार की व्यवस्था से न केवल वायुयान का मार्ग दर्शन हो सकेगा बल्कि वायुयान की शक्ति और ईंधन का पूर्ण सदुपयोग हो सकेगा, क्योंकि यान अपने गन्तव्य लक्ष्य की ओर जाता हुआ इधर-उधर नहीं भटकेगा। आवश्यकता और संकट पड़ने पर विद्युदणु गणक-यन्त्र की सहायता से कम से कम समय में पृथ्वी को वापस लौटने के लिए सुरक्षित और छोटा मार्ग-निर्धारित करने का कार्य भी सम्पन्न हो सकेगा। यान की स्थिति का ठीक पता लगने पर यान चालक निश्चिन्त हो जाता है। यद्यपि अन्तरिक्ष यान हजारों मील की गति से उड़ेगा फिर भी टेलिविजन के पर्दे पर दृष्टिगोचर होने वाले पथ पर चालक को ऐसा लगेगा मानों वह ५० मील की गति से सफ़र कर रहा हो।

इसके अलावा यान में ऐसे यन्त्र भी रहने चाहिए जिनसे चालक को यान की सही स्थिति दृष्टिगोचर हो सके। यह यन्त्र-मार्ग-दर्शन इत्यादि के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना आगे उड़ान की योजना तैयार करने में सहायता करेगा। पृथ्वी से कितनी दूर पर वह किस प्रकार की कक्षा में स्थापित हैं, अन्तरिक्ष में उसका गन्तव्य लक्ष्य क्या है, अमुक समय वह कहाँ पर है, ईंधन कितना शेष है, इत्यादि सभी बातों की जानकारी उसे एक साथ प्राप्त होनी चाहिए। इसके अलावा चालक को यान की दशा, विकिरण की यात्रा, तापमान, दबाव, उल्काओं की स्थिति और घनता इत्यादि के सम्बन्ध में भी निरन्तर सूचना प्राप्त होती रहेगी। इस सूचना के आधार पर चालक आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक कदम उठा सकेगा।

इन समस्त सूचनाओं को सुलभ करने के लिए किस प्रकार के उपकरणों और यन्त्रों के निर्माण के सम्बन्ध में तेजी के साथ अनुसन्धान और परीक्षण किए जा रहे हैं। पनडुब्बी जहाज के संचालन से प्राप्त अनुभव का उपयोग भी आवश्यक यन्त्रों के विकास तथा चालक के प्रशिक्षण के लिए किया जा रहा है।

पुस्तक समीक्षा

(१) भेषजायन—जनवरी-१९५८, अंक १, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, मूल्य ७५ न० पै० प्रति अंक।

हिन्दी में भैषजिक साहित्य के सृजन की महत्वाकांक्षा को लेकर 'भेषजायन' पत्रिका का सम्पादन हुआ है। इसमें विद्यार्थियों तथा जिज्ञासुओं के लिये चिकित्सा-सम्बन्धी सभी प्रकार की सामग्री का चयन किया गया है। प्रथम अंक से ही गहरे पैठ कर मोती लाने का प्रयास स्तुत्य है। फार्मेसी किसे कहते हैं, नामक लेख में चित्र गुप्त जी ने 'भेषज' या 'भेषजायन' जैसे शब्दों की व्याख्या के साथ ही 'फार्मेसी' के आवश्यक अंगों का विस्तार से वर्णन किया है।

(२) विज्ञान प्रगति—भाद्र १८८१, वर्ष ८, अंक ८, कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, मूल्य ५० न० पै० प्रति अंक।

'विज्ञान प्रगति' का मुख्य उद्देश्य है, छोटे उद्योग धंधों से सम्बधित वैज्ञानिक अनुसन्धानों को जन-जन के पास तक पहुँचाना। एतदर्थ इस पत्रिका में विविध लेख तथा सूचनायें रहती हैं। प्रस्तुत अंक के 'सूर्य की गर्मी से रसों को गाढ़ा करने का उपकरण' शीर्षक एक महत्वपूर्ण लेख में भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित ऐसे यन्त्र की उपयोगिता का वर्णन है जिसके द्वारा कुछ ग्रामीण उद्योग धंधों यथा ताड़ तथा ईख से गुड़ बनाने, में सूर्य की ऊष्मा का प्रयोग किया जा सकता है।

पत्रिका में प्रयुक्त शब्दावली में से कुछ शब्द अत्यन्त अस्पष्ट हैं। यथा पृ० २८२ पर, "हाल के वर्षों में डा० कृष्णन के अध्ययनों का सम्बन्ध एल्कली धातुओं हेलाइडों के केलासों की **बारम्बारताओं** और **एनहारमोनीसिटियों**, तथा ड्रूड और लारेन्स के **छितरावन फारमूले** में आने वाली लाक्षणिक **बारम्बारताओं** के बीच अन्तर के **आलोचनात्मक** विश्लेषण से रहा है।" एक ही वाक्य में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनके हिन्दी समानार्थी शब्द होते हुए भी अंग्रेजी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अंग्रेजी के कुछ हिन्दी रूपान्तर ऐसे हुए हैं जिनसे किसी प्रकार का अर्थ नहीं निकलता। स्वीकृत शब्दावली में उनके लिये दूसरे शब्द वर्तमान हैं। इस प्रकार से सरकारी पत्रिका में ही शब्दावली का प्रयोग न किया जाना चिन्त्य है। आशा है भविष्य में इस ओर अधिक ध्यान दिया जावेगा।

(३) साहित्य सन्देश—जुलाई-अगस्त १९५९, साहित्यरत्न भण्डार आगरा, मूल्य २)।

'साहित्य सन्देश' का यह संयुक्त अंक रीति काव्यालोचन विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। रीतिकालीन विचारधारा, भाषा, शैली तथा पृष्ठ भूमि पर विद्वानों के द्वारा लिखे गये विविध लेखों का इस अंक में अनुपम संकलन हुआ है। विद्यार्थियों तथा अन्य साहित्य प्रेमियों को रीतिकालीन साहित्य के समझने में प्रस्तुत सामग्री से बहुत सहायता मिलेगी।

(४) भारत सरकार—वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय:—वार्षिक कार्य विवरण, १९५८-५९ में इसमें सन् १९५८-५९ में वाणिज्य तथा उद्योग क्षेत्र में होने वाली भारत की प्रगति का सुसम्बद्ध एवं सूचनाप्रद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। समय-समय पर विभिन्न मन्त्रालयों से ऐसे वार्षिक विवरण प्रकाशित किये जाते हैं जो कृषकों, उत्पादकों, औद्योगिकों तथा वैज्ञानिकों के लिये अत्यन्त लाभप्रद होते हैं। प्रस्तुत विवरण में इंजीनियरिंग तथा धातु शोधन उद्योग, रासायनिक तथा अन्य सम्बद्ध उद्योग, नमक, लघुउद्योग, खादी तथा ग्रामोद्योग, रेशम, जूट, बगीचा उद्योग आदि पर विशेष सूचनायें हैं।

(५) Provisional list of Technical terms in Hindi—आयुर्वेद, ३ प्राकृतिक भूगोल, २, इंजीनियरिंग ३, राजनय ४ तथा कानून ३। शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार।

भारतीय शिक्षा मन्त्रालय ने विभिन्न विषयों की हिन्दी परिभाषिक शब्दावली बनाने का जो गुरुतर भार अपने हाथों में सन् १९५० में लिया था उसमें यथेष्ट रूप से अग्रसर है। आयुर्वेद प्राकृतिक भूगोल,इंजीनियरिंग, राजनय तथा कानून सम्बन्धी शब्दावलियों के तृतीय,द्वितीय, चतुर्थ तथा तृतीय भाग प्रकाशित हैं। ये शब्दावलियाँ अभी विचाराधीन हैं और उन पर सुझाव माँगे गये हैं। इतना तो निश्चित है कि ऐसी शब्दावली के निर्माण तथा प्रकाशन से हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनने में सुगमता हो रही है किन्तु विभिन्न विषयों के समान अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी रूपान्तर सदैव एक ही नीति से नहीं किये जा रहे। प्रकाशित शब्दावली में अनेक शब्दों पर पाठकों की असहमति स्वाभाविक है किन्तु उसको दूर करने का कुछ प्रयत्न होगा या नहीं कहा नहीं जा सकता। भारतीय शिक्षा मन्त्रालय को चाहिये कि इस ओर यथेष्ठ ध्यान दे।

उदाहरणार्थ प्राकृतिक भूगोल की शब्दावली के कुछ शब्दों के साथ-साथ प्रस्तावित सूची दी जा रही है।

अंग्रेजी शब्द	पारिभाषिक शब्द	प्रस्तावित
Erosion	अपरदन	क्षरण, कटाव
Crystal	स्फाट	मणिभ, केलास
Weathring	अपक्षय	विघटन
Composition	संघटन, संविरचना	संरचना
Daicry	डेरी	दुग्धज
Dynamical	परिवर्तनात्मक	गतिकीय
Freshwater	अक्षार जल	मीठा जल
Biotic	जीवीय	जैविक
Barren	ऊसर	बंजड़
Assimilation	स्वाँगी कर	स्वीयकरण
Balance	साम्य	सन्तुलन
Arid	रूक्ष	शुष्क

साथ ही सुझाव है कि मौसम (weather) गम्भीर (deep),अवधि (duration तथा epoch) वलन (fold) आदि के लिये अन्य उपयुक्त एवं सरले शब्द चुने जायँ।

विज्ञान वार्ता

गन्ने की खोई से नाइलोन

गन्ने की खोई नाइलोन का कपड़ा बनाने में काम आती है। यद्यपि गन्ने की खोई सभी चीनी कारखानों के बाइलरों में जलाने के काम आती है, लेकिन अच्छे किस्म के बायलरों और गन्नों के कारण खोई काफी मात्रा में बच भी जाती है। उत्तर प्रदेश और बिहार में तो यह मात्रा सब स्थानों से अधिक है। खोई में रेशों के अलावा पेंटोसन्स और लिगनिन्स होता है। विशेष ताप पर गन्ने की खोई पर एक अम्ल डालने से पेंटोसन्स से हल्का पीला और तेल जैसा चिकना द्रव निकलता है। यह द्रव फरफ्युरल कहलाता है। नाइलीन बनाने के लिये यह मुख्य पदार्थ है। नाइलोन बनाने में काम आने के अलावा फरफ्युरल पैट्रोलियम उद्योग में तेलों की सफाई और नकली राल बनाने के काम आता है। खोई से फरफ्युरल प्राप्त करने के लिये जो अम्ल काम में लाया जाता हैं, वह बहुत मंहगा है। कानपुर की राष्ट्रीय चीनी संस्था में दूसरी विधि से फरफ्युरल प्राप्त करने के लिये प्रयोग हो रहे हैं। नयी विधि में इस मंहगे अम्ल के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होगी।

खोई बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध है। अतः कम कीमत पर फरफ्युरल तैयार किया जा सकेगा। इससे नाइलोन का उत्पादन बढ़ेगा। नाइलोन का उत्पादन बढ़ने से देश की आवश्यकता की तो पूर्ति होगी ही साथ ही कुछ कपड़ा बाहर भी भेजा जा सकेगा।

घी का परीक्षण

मैसूर भी खाद्य अनुसंधानशाला ने देशी घी में वनस्पति की मिलावट का पता लगाने की विधि को सरल बमाने के लिये दो सुधार किये हैं। इस विधि में परीक्षा के लिये घी में अलकोहल फरफ्युरल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डाला जाता है। यदि घी में मिलावट होती है तो घी गुलाबी हो जाता है।

फरफ्युरल को सुरक्षित रखने में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। अगर इसे वैसे ही रख दिया जाये तो इसका रंग उड़ जाता है। अतः इसे प्रयोग करने से पहले फिर खींचना पड़ता है। मैसूर की संस्था ने एक प्रयोग के लिये पर्याप्त फरफ्युरल और हाइड्रोक्लोरिक एसिड को मुहबन्द शीशियों में उपलब्ध किया है। इस प्रकार फरफ्युरल कम से कम तीन महीने तक सुरक्षित रहेगा। इसके अतिरिक्त फरफ्युरल प्राप्त करने के लिये संस्था ने हाइड्रोफरएमाइड चूर्ण का भी प्रयोग किया। हाइड्रोफरएमाइड में हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाने से तुरन्त फरफ्युरल प्राप्त हो जाती है। सुधरी हुई विधि के अनुसार कोई भी व्यक्ति आसानी से घी की मिलावट का पता लगा सकता है। प्रयोग के लिये घी की दस बूँदे पर्याप्त हैं और इससे १० प्रतिशत या इससे अधिक मिलावट का पता लगाया जा सकता है।

नीम के तेल की सफाई

भारत में नीम का तेल बहुत बड़ी मात्रा में और आसानी से मिलता है। पर इसकी सफाई और इसे उद्योगों में काम लाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। पूना की राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला पिछले १० वर्ष से इस विषय का विस्तृत अध्ययन कर रही है। इसके फलस्वरूप नीम के तेल की रासायनिक रचगा का पता चला है। नीम के तेल को साफ करने, इसका रंग उड़ाने और इसे हाइड्रोजन की सहायता से जमाने आदि की विधियाँ भी निकाली गयी हैं।

दो बीमारियों के लिये एक टीका

मुर्गियों के रानी खेत और चेचक इन दोनों रोगों की रोकथाम के लिये एक ही टीका ईजाद करने के लिये रानीखेत (मद्रास) की पशु रोग निरोधक औषधि तैयार करने वाली संस्था में भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् की सहायता से प्रयोग किये जा रहे हैं। इन रोगों के लिये टीके पहले ही निकाले जा चुके हैं। पर दोनों रोगों के लिये एक के बाद एक टीका लगाने में मुर्गी पालने वालों को बहुत मेहनत पड़ती है और मुर्गियों को भी अधिक तक लीफ होती है। अब तक के प्रयत्नों के उक्त दोनों रोगों के लिये एक टीका निकाला जा सका है और उसके प्रभाव की जाँच के लिये परीक्षण चल रहे हैं।

भारत का नमक उद्योग

(१) १९५७ में देश के १६४ कारखानों ने ९ करोड़ ८३ लाख मन नमक बनाया। १९५६ में इन कारखानों ने ८ करोड़ ८६ लाख मन नमक बनाया था। इस प्रकार १९५७ में नमक का उत्पादन १९५६ के उत्पादन से ११ प्रतिशत बढ़ गया।

(२) १९५१-५२ में भारत नमक की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो गया और उसने नमक का निर्यात भी शुरू कर दिया। १९५७ में लगभग १ करोड़ १९ लाख २९ हजार मन नमक निर्यात किया गया, जो १९५६ में निर्यात की गयी मात्रा से ४३ प्रतिशत अधिक है। इस प्रकार १९५७ में भारत ने सबसे अधिक नमक विदेशों में भेजा।

(३) पिछले साल लाइसेन्सदार कारखानों ने निर्धारित किस्म का ही नमक बनाया। नमक की शुद्धता की कसौटी यह रखी गयी है कि उसमें ९५ प्रतिशत सोडियम क्लोराइड होना चाहिये।

(४) केन्द्रीय नमक सलाहकार मण्डल और क्षेत्रीय मण्डलों का अक्टूबर, १९५७ में पुनर्गठन किया गया। राजस्थान के लिये नया क्षेत्रीय मण्डल बनाया गया और अन्य क्षेत्रीय मण्डलों का गठन पुनर्गठन राज्यों के अनुसार नये ढंग से किया गया।

(५) सरकारी और निजी क्षेत्र में इस उद्योग की तरक्की के लिये दूसरी आयोजना में १ करोड़ ६० लाख रु० की व्यवस्था की गयी है।

सौराष्ट्र का केलसाइट खनिज उद्योग

देश में सर्वोत्तम कैलसाइट सौराष्ट्र में मिलता है। यही नहीं, संसार में जितने प्रकार का कैलसाइट मिलता है, उसमें भी सौराष्ट्र के इस खनिज का अद्वितीय स्थान है। सौराष्ट्र में इसकी

खानें विभिन्न दिशाओं में काफी दूर तक फैली हुई हैं और कैलसाइट प्रायः ३० से ४० फुट और कहीं-कहीं इससे भी अधिक गहराई पर मिलता है। कैलसाइट के भण्डार नवानगर, पोरबन्दर, जूनागढ़ तथा अमरेली में हैं। किन्तु सबसे बड़ी खानें अमरेली में हैं, जहाँ पनाला पहाड़ी में लगभग है। भावनगर, गोंडल, ५८ हजार टन कैलसाइट है। जूनागढ़ में १५ फुट की गहराई में ही इसके लगभग २८ हजार टन कैलसाइट मोरवी, पालिताना तथा वधवान में भी इसकी खानें हैं। अलाव पठार के कई अन्य भागों में भी कैलसाइट मिलता है।

'जिओलाजिकल सर्वे आफ इंडिया' की प्रयोगशाला में नवानगर के कैलसाइट की जाँच करने पर पता लगा कि इसमें मिलावट बिल्कुल नहीं होती और इसका उपयोग कैलसियम कारबाइड तथा रंग उड़ाने का पाउडर तैयार करने, मिट्टी के बर्तनों पर चमक पैदा करने, कारखानों में काम आने वाला चूना बनाने तथा धातुओं को साफ करने में किया जा सकता है।

इससे कई वस्तुओं में सफेदी लायी जा सकती है, जैसे रबड़, सूती कपड़े, कागज, शीशे के सामान, चमड़े का सामान, चीनी। इससे धातुओं पर बिना खरोंच के डर के पालिश भी की जा सकती है। नवानगर तथा पोरबन्दर में इसका काफी व्यापार होने लगा है। इन स्थानों में कैलसाइट को पीसकर पाउडर बनाया जाता है और इसे कलकत्ता, बम्बई तथा अन्य स्थानों को भेजा जाता है। कैलसाइट के अधिकतर टुकड़ों के आर-पार देखा नहीं जा सकता। इससे चश्मे के शीशे आदि बनाने में कैलसाइट का उपयोग नहीं किया जा सकता। किन्तु उसके पारदर्शक तथा अच्छे टुकड़ों को अलग की कोशिश की जानी चाहिये, जिससे 'प्रिज्म' बनाने के काम आ सकें। इसके लिए ये टुकड़े साफ तथा पारदर्शक होने चाहिये और इनमें खरोंच नहीं होने चाहिएँ। चौकोर टुकड़े जो ७।८ इंच से कम लम्बे होते हैं, काम में नहीं आते।

रात में मछली के शिकार के लिये नया लैम्प

आजकल रात में मछली पकड़ने के लिये एशियाई समुद्रों में नये किस्म का बिजली का लैम्प काम में लाया जा रहा है। अभी कुछ ही स्थानों पर इसे आजमाइश के तौर पर काम में लाया जा रहा है। इसे काम में लाने का तरीका बड़ा आसान और पहले के मिट्टी के तेल की लालटेनों में बहुत अच्छा है।

दिन छिपने से पहले एक बड़ी नाव दो छोटी-छोटी नावों के साथ मछली पकड़ने के स्थान पर पहुँचती हैं। दोनों छोटी नावों में लैम्प लगे होते हैं। इन नावों को थोड़ी-थोड़ी दूर पर लंगर के सहारे खड़ा कर दिया जाता है। बड़ी नाव भी पास ही रहती है। जब प्रकाश के पास खूब मछलियाँ इकट्ठी हो जाती हैं तब उन्हें पकड़ने लिये जाल फेंका जाता है।

इस लैम्प की सबसे बड़ी अच्छाई यह है कि इसे मछली पकड़ने वाले अपने आप तैयार करा सकते हैं। इसे प्रयोग करने में पुराने किस्म की लालटेनों से कम खर्च आता है। साथ ही यह लैम्प पानी के भीतर रहने की वजह से समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें उठने के समय भी अच्छी तरह काम देत है। इस लैम्प के प्रयोग से मछुए रात को अधिक मछली पकड़ सकेंगे।

कपड़ों पर निशान लगाने की स्याही:

दिल्ली की श्रीराम औद्योगिक अनुसंधान संस्था ने कपड़ों पर निशान लगाने की स्याही बनाई है। यह स्याही सूती कपड़ा कारखानों में काम आती है। कपड़े के थानों पर धुलाई, रंगाई आदि के निर्देश इसी स्याही से लिखे जाते हैं। अभी तक इस काम के लिये धातु की मुहर और कोलतार के यौगिक काम में लाये जाते थे। पर यह बड़ा पुराना ढंग था। अतः इस काम के लिये जल्दी सूख जाने वाली स्याही बनाई गई। इस स्याही के प्रयोग से यह काम बड़ी आसानी से हो जाता है।

औसतन एक सूती कपड़ा कारखाने में प्रति वर्ष १०० पौंड से १५० तक निशान लगाने की स्याही खर्च होती है। इस हिसाब से देश के ५२१ सूती कपड़ा कारखानों की ६६ हजार पौंड स्याही की प्रतिवर्ष आवश्यकता होती है। सूती कपड़ा बनाने वालों की सहायता की दृष्टि से श्रीराम औद्योगिक अनुसन्धान संस्था ने कपड़ो पर निशान लगाने की स्याही तैयार की है। अभी तक इस काम के लिये सारी स्याही बाहर से ही मगाई जाती है।

सिलिका ईंटों के लिये पत्थर:

भारतीय भूगर्भ सर्वे ने बिहार और बंगाल में खड़गपुर क पहाड़ियों के दक्षिणी भागों में स्फटिक जैसे घटिया पत्थर के भण्डारों का पता लगाया है। एक पड़ताल टोली के प्रयोगों से यह पता चला है कि इस पत्थर की सिलिका ईंटें बनाने में काम लाया जा सकता है।

इस्पात उद्योग के विस्तार के साथ सिलिका ईंटों की जरूरत बहुत बढ़ गई है। क्योंकि इस्पात गलाने की भट्टियों में सिलिका ईंटें ही लगाई जातो हैं। इसके अतिरिक्त भट्टी और गैस बनाने की मशीनों में भी सिलिका ईंटों का प्रयोग होता है।

चूड़ियों तथा ईंटों का निर्माण:

"भारत-१९५८" प्रदर्शनी के विज्ञान मंडप में चश्मे या दूरबीन के शीशे का एक मोटा टुकड़ा रखा था। जिससे हीरे की तरह किरणें फूट रही थी, इसे देखने के लिये भीड़ लगी रहती थी। पर इस काँच का मुख्य गुण इसकी चमक नहीं, बल्कि इसकी उपयोगिता है। पहली बार देश में इतनी बढ़िया किस्म का शीशा तैयार किया गया है और इसे बनाने का श्रेय कलकत्ते की सेन्ट्रल ग्लास एण्ड सिरेमिक इंस्टिट्यूट को है। यह इंस्टिट्यूट कलकत्ता के उपनगर जादवपुर में सन् १९५० में स्थापित हुआ था। इससे भारत के काँच और चीनी मिट्टी के उद्योग के विकास में बड़ी सहायता मिली है। इधर काँच और चीनी मिट्टी से बनी चीजों की माँग बहुत बढ़ी है। देश में प्रति वर्ष ३ करोड़ ५० लाख रु० काँच और १ करोड़ ३० लाख रु० का चीनी मिट्टी का सामान बनाया जाता है। पर इससे भी पूरा नहीं पड़ता और इनकी माँग बराबर बनी रहती है। काँच औ चीनी मिट्टी के उद्योग इस संस्था के अनुसन्धानों पर बहुत भरोसा करते हैं।

उत्तर प्रदेश के बहुत पुराने और बड़े घरेलू उद्योग फिरोजाबाद की चूड़ियों के उद्योग को इस इंस्टीट्यूट की खोजों से बहुत लाभ हुआ है। फिरोजाबाद में प्रति बर्ष लगभग ४ करोड़ रु० का

चूड़ियाँ बनाई जाती हैं और इस काम से सत्तर हजार से अधिक लोगों की रोजी चलती है। अभी हाल तक चूड़ियों को लाल रंगने के लिये सेलेनियम का इस्तेमाल होता था। केवल फिरोजाबाद में ही १५ लाख रु० का सिलेनियम बाहर बाहर से मंगाया जाता था। इंस्टीट्यूट ने सेलेनियम के बजाय लाल रंग चढ़ाने के अन्य पदार्थों की खोज शुरू की, जिसके फलस्वरूप कई विधियों का पता चला। इनमें सबसे अच्छी ताँबे रंगने की विधि सिद्ध हुई। अब इसी विधि से लाल चूड़ियाँ बनाई जाती हैं। यह सस्ती भी पड़ती है, यद्यपि यह विधि पेटेन्ट है, पर फिरोजाबाद के चूड़ी बनाने वालों के अलावा लाल रंग के लट्टू और खतरे का संकेत देने वाली बत्तियों के लाल शीशे आदि बनाने में भी इसके उपयोग की अनुमति है।

केन्द्रीय काँच और चीनी अनुसंधान संस्था की खोजों ने केवल एक पुराने घरेलू उद्योग की ही सहायता नहीं की वरन् यह एक नये उद्योग को प्रारम्भ करने में भी सहायक हुई है। अभी कुछ महीने पहले इस इंस्टीट्यूट की निकाली हुई विधि के अनुसार भीलवाड़ा (राजस्थान) में आग एवं गर्मी सहने और रोकने वाली अभ्रक की ईंटें बननी प्रारम्भ हुई हैं।

ये ईंटें कारखानों की भट्टी गनाने के काम आती हैं। अभी तक ये ईंटें वर्मिक्यूलाइट से बनती थीं, जो बाहर से मंगाया जाता था। इन ईंटों की उपयोगिता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि नये इस्पात के कारखानों की भट्ठियों में यही ईंटें लगेंगी। बाद में भी इन भट्ठियों की मरम्मत के लिये इनकी जरूरत पड़ेगी।

यह संस्था इसकी पड़ताल भी कर रही है कि किन-किन चीजों को बनाने लायक मिट्टी देश में मिल सकती है। यह और अच्छे किस्म की शीशियाँ अग्नि ईंटें, काँच के साँचे औ प्लास्टर आफ पेरिस बनाने के लिये प्रयोग कर रही है। यह सफेद एनामेल बनाने में एंटीमनी (अंजन) की जगह किसी और पदार्थ को खोजने और रंग-रंगने, टिटेनियम काँच आदि बनाने में अभ्रक के उपयोग के बारे में भी अनुसंधान कर रही है। ये सब चीजें, विविध उद्योगों में बहुत काम आती हैं। इसके अतिरिक्त इंस्टिट्यूट में काँच से मुलायम चिकना और चमकदार कपड़ा बनाने की भी एक विधि निकाली गयी है। इस कपड़े के पर्दे, लैम्पशेड, टाई, झोले और जनाने टोप और कपड़े बनते हैं। यह कपड़ा दीवार मढ़ने के काम भी आता है।

राष्ट्र भाषा और विज्ञान

पिछले मास संसद में भाषण देते हुये गृहमन्त्री पन्त जी ने बताया है कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा की पूर्ण सत्ता प्राप्त करने के लिये जो १५ वर्ष की अवधि स्वीकृत हुई थी, उसे बढ़ा दिया गया है। जब तक देश में अंग्रेजी की आवश्यकता प्रतीत होती रहेगी और जब तक हिन्दी में समस्त कार्य न होने लगेंगे अंग्रेजी पूरक भाषा का काम करती रहेगी। यह सत्य है कि हिन्दी के राष्ट्र भाषा बनने में जो कठिनाइयाँ हो रही हैं उनमें सर्वप्रमुख यह है हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की शिक्षा शीघ्र सम्भव नहीं हो सकती। इस कमी को दूर करने के लिये पारिभाषिक शब्दावली बनाने का कार्य केन्द्रीय सरकार ने स्वयं अपने हाथों में लिया था। किन्तु उसकी प्रगति इतनी मन्द रही कि हिन्दी-विरोधियों को फिर से अवसर मिला कि वे अंग्रेजी का समर्थन करें। यह कहा जाता है कि हिन्दी में अभी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रगति की अभिव्यक्ति कर सके। यही नहीं हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव भी बताया जाता है। किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से जब तक हिन्दी भाषा भाषी प्रान्त अपने समस्त स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा हिन्दी में प्रारम्भ किये जाने की उचित व्यवस्था न करेंगे, इस प्रकार से हिन्दी को अनन्तकाल तक राष्ट्र भाषा पद पर नहीं बिठाया जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों अथवा वैज्ञानिक शोधों के लिये अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है किन्तु यह दूरदर्शिता न होगी कि इस भय से देश में वैज्ञानिक शिक्षा का प्रारम्भ हिन्दी में किया ही न जाय। आवश्यकता है कि समस्त अध्ययन हिन्दी में हों। इससे राष्ट्र भाषा हिन्दी का मार्ग प्रशस्त होगा।

अनुपम विजय

१४ सितम्बर की अर्धरात्रि को रूसी राकेट (ल्यूनिक द्वितीय) चन्द्रमा तक पहुँच गया है और वहाँ रूसी वैज्ञानिक विजय की पताका फहरा दी है। ज्ञात हो कि प्रथम राकेट जो जनवरी में छोड़ा गया था वह लक्ष्यभ्रष्ट होने के कारण चन्द्रमा का उपग्रह न बनकर सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने लगा था। तब से रूसी वैज्ञानिक चन्द्रमा तक पहुँचने के लिये अनेक प्रकार की तय्यारी करते रहे हैं। अन्ततः उन्होंने दूसरा राकेट (ल्यूनिक-२) छोड़ कर अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा किया। यह राकेट परिगणित समय से केवल एक मिनट बाद चन्द्रमा से टकराया। पृथ्वी से चन्द्रमा तक की दूरी को ध्यान में रखते हुये तथा अन्य व्यवहारिक कठिनाइयों का अनुमान लगाते हुये यह कहा जा सकता है कि विज्ञान के क्षेत्र में चन्द्रमा तक की उड़ान अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इस घटना या विजय की महत्ता को, यह कह कर कि निकिता क्रुश्चेव की अमेरिका यात्रा के पूर्व एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर वैभव दिखाने का प्रयत्न है, घटाया नहीं जा सकता। अब वह दिन दूर नहीं दीखता जब मानव चन्द्रमा तक यात्रा करने में समर्थ हो सकेगा।

(शेष पृष्ठ १७ पर देखें)

'विज्ञान' में विज्ञापन

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रति वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	४०० रु०
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	५०० ,,
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०० ,,
,, आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२० ,,
,, चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये १५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिये।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक कमीशन जोड़ कर भेजा जाय।

साथ भेजे हुये ब्लाकों को परिषद स्वीकार करेगा।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानं जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ६० | २०१६ विक्र०; कार्तिक १८८१ शाकाब्द; नवम्बर १९५९ | संख्या २

रसायनज्ञ आचार्य रावण

विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री, प्राध्यापक, गुजराती महाविद्यालय, इन्दौर

त्रेता युग में भगवान श्री राम के साथ रावण का युद्ध प्रसिद्ध है। जनसाधारण की रावण के प्रति न तो सहानुभूति है और न श्रद्धा। यही नहीं वे चरित्र की दृष्टि से हेय सिद्ध होते हैं परन्तु किम्वदन्तियों के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि चरित्र तो उनका श्रेष्ठ था ही, वे ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में भी भारतीय वाङ्मय को समृद्ध बनाने के कारण महानतम सिद्ध होते हैं। कहा भी तो जाता है कि सम्राट् रावण के यहाँ मेघ पानी भरा करते थे और विभिन्न शक्तियों के प्रतीक एवं अधिष्ठाता देवतागण उनके दास थे। स्वर्ग तक उन्होंने सीढ़ियाँ बना ली थीं। ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन के लिये उनके अन्तिम समय में श्री राम ने लक्ष्मण को आचार्य रावण के पास भेजा था। ये तथ्य राम की महानता एवं ज्ञान के प्रति उनकी नम्रता तो सिद्ध करते ही हैं लेकिन साथ ही साथ रावण की महान् विद्वत्ता एवं वैज्ञानिकता के भी प्रतीक हैं। यों तो प्राप्त जानकारियों के आधार पर वेद, दर्शन, साहित्य, ज्योतिष आदि सभी शास्त्रों में उनकी प्रतिभा की गति रही है लेकिन उनका एक ग्रन्थ, "अर्क-प्रकाश" भी माना जाता है। इस ग्रन्थ के सिंहावलोकन से मैंने पाया है कि न केवल आयुर्वेद, वरन् रसायनशास्त्र भी उनकी प्रतिभा से अछूते नहीं रहे हैं।

अर्क-प्रकाशः

इस ग्रन्थ का उपदेश, रावण ने अपनी गर्भवती एवं अशक्त पत्नी मन्दोदरी को शक्ति एवं स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये दिया था, यथाः—

"उपायं ब्रूहि मे नाथ गर्भिण्या हि यथोचितं।
यथा विवर्धते गर्भो जायते च बलं मम ॥६॥

मन्दोदरी कह रही है—"हे नाथ मुझ गर्भवती को कोई योग्य उपाय बताइये जिससे मेरा गर्भ पुष्ट हो एवं बल बढ़े"। इस पर रावण ने उत्तर देते हुए कहा कि इस शास्त्र का ज्ञान अत्यन्त तपस्या एवं सेवा के पश्चात् माता पार्वती से उन्हें प्राप्त हुआ था।

"दिव्यौषधीनाम् कल्पस्तु कथितः प्रीतया तया।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहिता प्रिये ॥१६॥"

रावण ने कहा—"हे प्रिये! तो फिर उन्होंने (माता पार्वती ने) अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक मुझे समस्त श्रेष्ठ औषधिक उपादानों का ज्ञान बताया। तुम भी उन्हीं समस्त औषधियों का सम्यक ज्ञान एकाग्रतापूर्वक सुनकर प्राप्त करो।"

इसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ रावण मन्दोदरी के संवाद के रूप में है। अर्क शास्त्र के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में धातु, रत्न, विष, औषधियों के गुण-दोष आदि विषय भी सम्मिलित हैं।

कुछ इतिहासज्ञ इस ग्रन्थ के रचयिता "लंकेश रावण" के होने के बारे में सन्देह करते हैं। कुछ तो इस तथ्य को स्वीकार ही नहीं करते किन्तु इस प्रकार का वादविवाद तो भारत के प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों के सम्बन्ध में चल रहा है। हम तो यही मान कर चलते हैं कि "अर्क-प्रकाश" ग्रन्थ के रचयिता रावण ही हैं। श्री शालिग्राम वैश्य द्वारा सम्पादित सटीक "अर्क-प्रकाश" की भूमिका में दी गई निम्न टिप्पणी इस ग्रन्थ की अत्यन्त प्राचीनता को किसी सीमा तक पुष्ट करती है:

"अच्छा हम किसी से यह नहीं कहते कि त्रेता युग में लंकाधिपति रावण ने यह ग्रन्थ निर्माण किया है। यदि रावण के बदले में किसी और भी आचार्य को इस ग्रन्थ का निर्माता निश्चित किया जाय तो भी वह मनुष्य इस समय से बहुत पहले हुआ होगा। क्योंकि यह ग्रन्थ जो मैं उड़ीसा से लाया था वह ताड़ के पत्र पर सं० १२०७ विक्रमी का लिखा हुआ है। इससे भली-भाँति निश्चित होता है कि यह ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन है इसके पहले और किसी ने अर्क बनाने की रीति प्रकट नहीं की थी।..."

रसायन शास्त्र की दृष्टि से महत्वः

साधारण-सिद्धान्तः—आचार्य रावण सांख्य दर्शन के अनुयायी प्रतीत होते हैं। वे पंच तत्व के सिद्धान्तों के पोषक थे। उनके अनुसार पृथ्वी, जल, वायु, तेज एवं आकाश ये पाँच तत्व हैं। इनके गुण क्रमशः गुरुत्व, स्निग्धता, रूक्षता एवं हलकापन हैं। तत्वों से समस्त पदार्थ एवं औषधियाँ बनती हैं। औषधियों के विशेष गुण तत्वों के समुच्चयात्मक गुण-भाग होते हैं। औषधियाँ लता-गुल्मादि पाँच प्रकार की होती हैं एवं इनके पत्र-पुष्पादि पाँच अंग होते हैं। जो गुण औषधियों के होते हैं वे ही अर्कों के भी होते हैं। यह गुण अर्थात् मानव शरीर पर प्रभाव करने वाले गुण हैं। किसी भी औषधिक पदार्थ में, स्वादु-अम्लादि षट् रस, गुरु-स्निग्धादि पंचगुण, उष्ण-शीतादि त्रिवीर्य, मृदु-कटु इत्यादि विपाक एवं शक्ति इन पाँच गुणों की संहति होना आवश्यक है।

अर्क-शास्त्र—अर्क निकालने में उपयुक्त पदार्थों का रावण ने पाँच भागों में वर्गीकरण किया है।

अत्यन्त कठिन, कठिन, गीला, ढिलढिला एवं पतला या टपकने वाला। इन पदार्थों के गुण दोषों का विशद विवेचन करने के अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न प्रकार के विशिष्ट यन्त्रों एवं उपादानों की विस्तृत योजना भी प्रस्तुत की है। इनके द्वारा उपदिष्ट ऊर्ध्व-नलिका-टंक-यन्त्र विशेष प्रेक्षणीय है। इस यन्त्र का सिद्धान्त आधुनिक शीतक यन्त्रों (कन्डेन्सर) की टक्कर का है। अर्कों एवं भोजन पदार्थों को सुरक्षित रखने के लिये विभिन्न प्रकार के पात्रों एवं तरीकों का समीचीन विवेचन भी उन्होंने किया है। इन अर्कों को आवश्यकतानुसार तापक्रमों पर प्राप्त करने के लिये उन्होंने छः प्रकार की अग्नियों का निर्देशन दिया है। ये अग्नियाँ हैं क्रमशः धूमाग्नि, दीपाग्नि, मन्दाग्नि, खराग्नि और भटाग्नि। स्पष्ट है कि किसी निश्चित ताप मापक प्रणाली एवं ताप मापक यन्त्र के अभाव में उपर्युक्त विभाजन प्रणाली निर्धारित की गई है। अर्क निकालने के उन्होंने कई प्रकार बताये हैं। उदाहरणार्थ कुछ श्लोकों के भाव देखिये:

"अजवायन काला जीरा आदि पदार्थों को कठिन द्रव्य कहते हैं। हे कोकिलकंठी (मन्दोदरी) जिस कठिन द्रव्य का अर्क निकालना हो उसमें द्रव्य से दुगना पानी डाले और सर्वप्रथम क्रमानुसार चार पहर धूप में एवं चार पहर चाँदनी में रखे। देशकालानुसार यह समय घटा एवं बढ़ा लेवें। अब अर्क निकालने के यन्त्र एवं पात्र का उपयोग कर उसका अर्क निकाल लेवें।"

आचार्य रावण ने कई प्रकार के मांसों एवं उनके अर्कों का विस्तृत विवेचन दिया है। सुरा, वारुणी, मद्य एवं मादक द्रव्यों के भेदों एवं उपभेदों का स्पष्ट एवं बुद्धिमत्तापूर्वक विवरण दिया गया है। इनके प्रभावों का एवं उपयोग के प्रकारों का भी निर्देशन किया गया है। प्रतीत होता है कि रावण कुछ अंशों तक किण्वन (Fermentation) की प्रक्रिया से परिचित थे। इसके पश्चात् उन्होंनें कई औषधिक पदार्थों के अर्कों के गुण दोषों का संक्षिप्त विवरण दिया है। "अर्थातः संप्रक्ष्यामि केवलार्क गुणान् प्रिये।" अर्थात् हे प्रिये अब मैं केवल अर्कों के गुणों का ही वर्णन करूँगा।"

इसके पश्चात् कुछ रोगों एवं अर्कों के रोग निवारणार्थ उपयोग बतलाये गये हैं। सम्मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, जल एवं अग्नि पर विचरण-इनकी तान्त्रिक एवं रासायनिक लेप विधियाँ बतलाई गई हैं। इसके पश्चात् धातु, रस, भोज्य पदार्थ आदि के शोधन-मारण एवं संरक्षण के प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है।

रावण के अनुसार सात प्रकार की धातुएँ, सोना, चाँदी, तांबा, रांगा, जस्ता, सीसा और लोहा होती हैं। इसमें उन्होंने सोने के तीन प्रकार, चाँदी के आठ प्रकार आदि बतलाये हैं। सुवर्ण माक्षिक, नीलाथोथा आदि सात उपधातुएँ होती हैं। रावण यह जानते थे कि नीले थोथे में ताँबा होता है। हीरा, मोती, मूँगा, गोमेद, नीलम, वैडूर्य, पुखराज, पन्ना और माणिक्य ये नौ रत्न होते हैं। उन्होंने वैकान्त, स्फटिक आदि नौ उपरत्न भी बतलाये हैं। धातुओं एवं उपधातुओं के शोधन-मारण की विधियों का उन्होंने वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—"सुवर्णादि सप्त धातुओं को पत्राकार कर अग्नि में तपावें। उनको गेरू, सज्जीखार आदि सात उपयुक्त परिवेष्टनों से आवृत्त करें और निम्न द्रव्यों में क्रमशः बुझावे। (१) दस प्रकार के तक्र (२) अन्न के क्वाथ (काँजी) (३) अम्लवर्ग (४) पुष्प वर्ग (५) फल रस (६) क्षीर वर्ग (६) अर्क वर्ग (७) जल (शुद्ध)। रावण ने धातु

आदि के भौतिक, रासायनिक एवं प्राणीशास्त्र सम्बन्धी गुण-दोषों का भी समीचीन विवेचन किय है। उदाहरणार्थ "अतिशुद्ध जस्ता दर्पण के समान प्रकाशवान, छायायुक्त, गम्भीर, श्वेत कान्ति वाला, बुझाने से चाँदी के समान चमकदार तथा गलाने एवं तोड़ने पर हरिताल के समान रंग वाला होता है। यही शुद्ध जस्ता, गाय के घी के साथ नेत्रों के लिये, पान के साथ प्रमेह के लिये और अरणी के चूर्ण के साथ जठराग्नि के लिये अत्यन्त लाभकारी होता है।"

रसों, उप-रसों, विषों एवं उपविषों के प्रभावों एवं शोधन विधियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

उपसंहारः

अर्क प्रकाश ग्रन्थ के शोध करने पर कई महत्वपूर्ण तथ्यों का पता चल सकता है। उदाहरणार्थ प्याज एवं लहसुन को सुगन्धित करने का तरीका ही लीजिये। निम्नलिखित चुने हुए श्लोक- इस विषय की महत्ता सिद्ध करते हैं।

"पलांडु लशुनादीनाम् दुर्गन्ध हरणं श्रृणु।
उत्पाद्यांत विषं सम्यक्तक्र मध्ये विनिक्षिपेत ॥५१॥
...."तस्यार्कस्य सुगन्धेन एकदा मोहितों हरः।
को जानाति रसोनस्य ह्यर्कोयंमिति भूतले ॥५७॥"

अर्थात्—"हे प्रिये! प्याज एवं लहसुन को दुर्गन्ध हीन करने का तरीका सुन। इन पदार्थों का गूदा निकाल कर इनको छाया में रखा जाय। या इनको छील कर तक्र में रखा जाय।...यह अर्क अत्यन्त सुगन्धित होता है। इसकी परमोत्तम सुगन्धि से शिवजी भी एक बार मोहित हो गये थे। फिर साधारण लोग तो कैसे कह सकते हैं कि यह प्याज एवं लहसुन का अर्क है। वस्तुतः पृथ्वी पर ऐसा दूसरा कोई अर्क ही नहीं है।"

———

कपूर तुलसी

श्री रामेश बेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

इतिहास—तुलसी (Ocimum) गण (genus) का यह पौदा भारत की उपज नहीं है परन्तु अब भारत में यह अनेक स्थानों पर पैदा किया जा रहा है। भारत में इसके प्रवेश का इतिहास रोचक है। इसमें से कपूर निकालने का परीक्षण पहले विदेशों में वैज्ञानिकों ने किया। उनके कार्यों के विवरण जब शोध पत्रिकाओं में छपे तो हमारे देश में वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर गया। संयोगवश उन्हीं दिनों द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया। यातायात की सुविधायें समाप्त हो गईं। अनेक पदार्थ जो हमारी दैनिक आवश्यकता में आते थे, युद्ध सामग्री के अंग बन जाने से अलभ्य हो गये। कपूर भी इन्हीं में से एक था। चिकित्सा, पूजा, उद्योग आदि प्रयोजनों में यद्यपि हम हजारों सालों से कपूर का प्रयोग कर रहे थे परन्तु सदियों से हमें यह उपयोगी पदार्थ विदेशों से मिल रहा था। अब तक यह बड़े वृक्ष को काट कर उसमें से निकाला जाता था। इस वृक्ष को बड़ा होने में लगभग आधी शती लग जाती थी। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। कपूर की गन्ध वाला तुलसी-गण का यह पौदा एक साल में ही तैयार हो जाता है इसलिये इससे व्यापारिक पैमाने पर कपूर प्राप्त करने के परीक्षण किये जाने लगे। प्रारम्भिक परीक्षणों से जब पता चला कि यह पौदा प्राकृतिक कपूर का अच्छा स्रोत है और इससे निकाला गया शुद्ध कपूर जब व्यापारिक क्षेत्रों में भी आने लगा तो संसार में सर्वत्र इसके बीजों की मांग होने लगी। भारत में ये बीज सर्व प्रथम देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला में मंगाये गये। शाला की रसायनशाला और गौण बन उपजशाला के तत्कालीन अध्यक्ष डाक्टर श्रीकृष्ण के प्रयत्नों से यहाँ इसकी कृषि आरम्भ की गई।

पूर्वीय अफ्रीका के केनिया प्रदेश की यह वन-सम्पत्ति है। कपूर देने के कारण इसका नाम कपूर-तुलसी पड़ा है। औद्भिदी के विद्वान इसे ओसिमम किलिमेण्डशेरिकम (Ocimum Kilimandscharicum Guerke) कहते हैं। भारयीय साहित्य पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि १४५० ईस्वी के लगभग एक भारतीय चिकित्सक कैयदेव ने अपनी संस्कृत पुस्तक में कपूर तुलसी नाम के एक पौदे का वर्णन किया है। कैयदेव का यह पौदा यद्यपि अफ्रीका वाली कपूर तुलसी तो नहीं क्योंकि वह हमारे देश में पैदा ही नहीं होता, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि कैयदेव भी तुलसी गण के ऐसे एक पौधे को अवश्य जानते थे जिसमें कपूर की गन्ध आती थी।

खेती—सावधानी से बोया जाय तो एक औंस बीज से इतने पौधे तैयार हो जाते हैं कि एक एकड़ से अधिक क्षेत्र में रोपे जा सकें। बीज बोने के चार पांच सप्ताह बाद पौधे पुनरारोपण के योग्य हो जाते हैं। खेतों में सिंचाई की व्यवस्था हो तो सर्दियों की समाप्ति पर फरवरी के अन्तिम सप्ताह से शुरू करके मार्च के दूसरे-तीसरे सप्ताह तक नर्सरी में बीज बो देना चाहिये। अप्रैल में

पनीरी को उठा कर खेतों में पौधे बिठाने चाहिये। पौधे साधारणतया एक फुट के अन्तर पर और डौले दो फीट के अन्तर पर रहने चाहिये।

सिंचाई के लिये पानी प्राप्त न हो तो वर्षा के सम्भावित समय से चार-पांच सप्ताह पूर्व नर्सरियों में बीज बोने चाहिये और बरसात प्रारम्भ हो जाने पर पुनरारोपण करना चाहिये।

नरसरियों में बीज बोने के बाद नरसरियों को पानी से भर नहीं देना चाहिये। पानी देने के लिये सूक्ष्म छिद्रों वाला शीकर बरतना चाहिये। दूसरा तरीका यह है कि अतिच्यवन से बीजों तक नमी पहुँचाई जाय। इसके लिये लगभग एक फुट चौड़ी, जमीन से जरा उठी हुई लम्बी क्यारियाँ बनाते हैं और उन पर बीज बोते हैं। क्यारियों के चारों ओर जो खाई है उसमें पानी भर देते हैं। इससे बीजों तक नमी पहुँच जाती है।

नरसरी की क्यारियों की मिट्टी को लगभग एक फुट तक गहरा खोद कर अच्छी तरह साफ और मुलायम कर लेना चाहिये। जमीन यदि मोटिया और चिकनी है तो उसे हलका करने के लिये आवश्यकतानुसार रेत तथा खाद मिला लेना चाहिये।

बीज बोना—क्योंकि बीज बहुत छोटे होते हैं इसलिये दस भाग रेत में मिलाकर छिड़कना चाहिये। इससे वे सब जगह एक समान बिखरते हैं। बुवाई छिटका भी होती है और पंक्तियों में भी। पंक्तियों की दूरी तीन-चार इंच रखी जाती है। बीज डालने के बाद उन्हें हलके मिट्टी या खाद लगभग १/१२ इंच मोटी तह से ढक देना चाहिये। इसके ऊपर सूखे पत्ते या घास का हलका-हलका फैला देना चाहिये। एक सप्ताह बाद बीज अंकुरित हो जायें तो यह आवरण हटा देना चाहिये और दिन की गर्मी से बचने के लिये छाया की समुचित व्यवस्था करनी चाहिये। आवश्यकतानुसार सिंचाई और निराई करते रहें।

पुनरारोपण—पौधों को गुच्छों में ही उठा कर टोकरियों में रोपण के स्थान पर ले जाया जाता है। सिंचाई या पहली वर्षा के बाद जब जमीन में नमी हो तो पौधे लगाने के लिये यह उपयुक्त होती है। गीली या सूखी भूमि में रोपण नहीं किया जाना चाहिये। लकड़ी या लोहे की खूंटी से बनाये छेदों में पौधों की जड़ों को डाल कर हाथ या पैर से चारों ओर की मिट्टी को दबाते जाना चाहिये। रोपण की सबसे अधिक सरल और प्रभावशाली विधि यह है कि खुरपे के फलक से धरती में फच्चर बना कर उसमें जड़ बैठाते जायें और खुरपे से ही साथ-साथ दबाते चले जायें।

इसकी खेती के लिये चिकनी मृदा सर्वोत्तम रहती है। जिन स्थानों पर पाला (तुषार) अधिक पड़ता है वे स्थान इसके लिये बुरे हैं। लगभग तीन-चार हजार फीट की ऊंचाई तक यह उग सकता है।

यदि ऐसी संम्भावना हो कि अधिक वर्षाओं के पानी से खेतों में बाढ़ सी आ जायगी तो पौधों को मेंड़ों पर लगाना चाहिये। मेंड़ों का ढाल ऐसा हो कि अधिक पानी पौधों को बिना हानि पहुँचाए निकल जाय। एक एकड़ खेत में लगभग बीस हजार पौधे लगते हैं। इतने पौधे तैयार करने के लिए लगभग एक सौ बीस वर्ग फीट का टुकड़ा नर्सरी के लिये पर्याप्त होता है।

कपूर प्राप्त करना—पौधे जब बड़े हो जायें और धरती के पास के पत्ते ज्यों ही पीले पड़ने लगें उन्हें जमीन से चार या छः इंच ऊपर हंसिये से काट लेना चाहिये। सबसे निचले पत्तों का पीला पड़ना पानी की कमी के कारण न होकर परिपक्वता के परिणामस्वरूप होना चाहिये। स्थापना के प्रथम वर्ष सितम्बर और दिसम्बर में दो बार कटाई की जानी चाहिये। आगामी वर्षों में साल में तीन कटाइयाँ करनी चाहिये। पहली मई में, दूसरी सितम्बर में और तीसरी दिसम्बर में यदि पाले से मृत्यु न हुई तो पौधे साधारणतया चार-पांच साल जीवित रहते हैं। काटने के बाद फसल को खुली हवा में सुखाना चाहिये। छाया में सुखाना अधिक अच्छा रहता है। पीट कर सूखे पत्तों को तने से छुड़ा लेना चाहिये। केवल पत्तों का भाग ही आसवन के काम आता है। वायुशुष्क पत्तों में जब पन्द्रह से बीस प्रतिशत से अधिक आर्द्रता न रहे तो इन्हें बोरों में भर कर या कमरे में ढेर लगा कर भण्डारित कर सकते हैं। शीत ऋतु में आसवन लाभ-दायक होता है क्योंकि ठण्डा करने के लिये निम्न ताप का पानी सुलभ होता है जिससे कपूर तथा तेल का फलप्रद संघटन उपलब्ध हो सकता है। पत्र-सामग्री के भण्डारित करने से कपूर और तेल की उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अमेरिका में किये गये अनुसन्धानों के अनुसार अच्छे स्थानों पर साल में तीन फसलें काटने से प्रति एकड़ बारह सौ मन से पन्द्रह सौ मन तक पत्तियाँ और टहनियाँ प्राप्त होती हैं। शाखाओं से पत्तियों को अलग करने पर लगभग आधा भार रह जाता है। इस प्रकार प्रति एकड़ छः सौ मन से साढ़े सात सौ मन तक पत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। सूखने पर इन पत्तियों का भार कम हो कर प्रति एकड़ एक सौ बीस मन से डेढ़ सौ मन तक रह जाता है

सूखी पत्तियों में से चार-पांच प्रतिशत कपूर निकल सकता है। इस आधार पर एक एकड़ रोपस्थली से एक वर्ष में औसतन सौ पौण्ड कपूर और तेल की प्राप्ति की आशा की जा सकती है।

कपूर निकालने की प्रक्रिया—सौगंध-तेलों (एसेन्शियल आयल्स) के आसवन के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले सामान्य तरीकों द्वारा कपूर का आसवन होता है। अन्तर केवल यह है कि संघनक (कन्डेन्सर) काफी चौड़ा होता है जिससे इसकी दीवारों पर ठोस कपूर को सुगमता से खुरचा जा सके।

आसवन की प्रक्रिया में कपूर के कण संघनक की दीवार पर जमते जाते हैं और तेल नीचे बोतल में स्रवित होता रहता है। आसवन दो घण्टे में समाप्त होता है। इसके पश्चात् संघनक को खोल कर भीतर जमे हुए कपूर को खुरच लेते हैं और तेल को छान कर पृथक् रख देते हैं। इस तेल में भी कपूर का कुछ अंश मिला रहता है जो बाद में अलग कर लिया जाता है।

साफ करने के लिये कपूर को कोयले और चूने के साथ एक कड़ाही में मिलाते हैं। सिकता अवगाह (सेण्ड बाथ) पर इसे १६०° से० पर पन्द्रह बीस घण्टे गरम किया जाता है। काँच का एक ऊँचा बरतन ऊपर ढक देते हैं। कपूर उड़ कर इसकी दीवारों पर जम जाता है।

चिकित्सा में उपयोग—युद्ध काल में जब कपूर का मूल्य बहुत चढ़ गया था, 'कपूर तुलसी' की खेती में लाभ था परन्तु अब भाव गिर जाने से यह लाभप्रद फसल नहीं रही। आर्थिक दृष्टिकोण

से यह स्थिति ठीक है । परन्तु इसका एक अधिक महत्वपूर्ण उपयोग भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति, आयुर्वेद में अनेक जटिल रोगों की औषध के रूप में भी होता है । औषधीय उपयोगिता का भारतीय दृष्टि से विचार किया जाय तो भेषजीय प्रयोजनों में प्राकृतिक कपूर को ही काम में लेना चाहिये । आज कल बाजार में मिलने वाला कपूर विदेशों से आयात होता है और विभिन्न देशों में यह रासायनिक विधियों द्वारा कृत्रिम रूप से निर्माण किया जाता है । पौधों से प्राप्त होने वाला प्राकृतिक कपूर इस समय व्यापार में उपलब्ध ही नहीं हैं । हमारे देश में शूलहरों तथा पीपक पाचक दवाओं के बड़े-बड़े निर्माता सभी इस नकली कपूर का प्रयोग कर रहे हैं । आयुर्वेदीय दवाओं की विशुद्धता की दृष्टि से यह ठीक नहीं है । आयुर्वेदीय घृतों में वनस्पति घी का प्रयोग जिस तरह हेय समझा जाता है उसी तरह इन मूल्यवान दवाओं में नकली कपूर को नहीं बरतना चाहिये । पौधों में मिलने वाले नैसर्गिक कपूरों में सर्वोपरि तुलसी-कपूर है । बाजार में मिलने वाले कृत्रिम कपूर से यदि यह कुछ मंहगा है तो भी वैद्यों तथा फार्मेसियों को तुलसी-कपूर का प्रयोग करने में ही आग्रह होना चाहिये । इसी प्रकार धार्मिक दृष्टिकोण से पूजा, पाठ, होम आदि में भी हमें तुलसी-कपूर का प्रयोग इष्टकर होगा । धर्मकर्मों में तो तुलसी को वैसे भी बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है । तुलसी के समान इस पौधे को विविध रोगों की चिकित्सा में उपयोग किया जा सकता है । पत्तों के आसवन में कपूर के अतिरिक्त जो आसुत जल प्राप्त होता है उसमें तुलसी जल और कपूर का जल दोनों के गुण विद्यमान होते हैं । इसे अर्क तुलसी तथा अर्क कपूर के सदृश तो बरत ही सकते हैं, धर्मकर्मों में और मन्दिरों में तुलसी चरणामृत के रूप में भी इसका प्रयोग लाभदायक होगा । आसवन में प्राप्त तेल का उपयोग पानों को सुवासित तथा स्वादिष्ट बनाने में भी है ।

कुछ सुझाव—सन् १९५३ में मैंने वन-अनुसन्धान शाला की माइनर फॉरेस्ट प्राडक्ट्स ब्रांच से कपूर तुलसी के कुछ बीज प्राप्त कर के गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की औद्भिदी वाटिका में बोये थे । यहाँ पर ये पौधे बहुत अच्छी तरह उगे, फूले, फले और विकसित हुए । आरम्भ में इनकी मामूली सी देखभाल की गई थी । परन्तु इस समय तो ये प्रायः नैसर्गिक अवस्थाओं जैसी परिस्थितियों में मजे में पनप रहे हैं । इनको देखते हुए मेरी यह सम्पति बनी है कि कपूर-तुलसी के बीजों को हमारे देश के अन्दर अनुकूल-प्रदेशों में बड़े पैमाने में बिखेर देना चाहिये । देश के भिन्न-भिन्न केन्द्रों में खेती करने से ज्ञात हो चुका है कि यह पौधा भारत के किसी भी स्थान में और सामान्यतया किसी भी भूमि में उग सकता है । पौधा बहुत सबल है और कड़ी धूप या वर्षा से नष्ट नहीं होता । रोग कीटाणुओं द्वारा इसके नष्ट होने की सम्भावनाएं नहीं हैं । गाय, बैल, भेड़, और बकरी तथा दूसरे ढोर इसे नहीं चरते । हमारे देश की परिस्थितियों में जब यह पौधा प्राकृतिक बन जायगा तो वनों से नाम मात्र के दामों पर केवल थोड़ी सी मजदूरी से भरपूर परिमाण में प्राप्त हो सकेगा । तब इससे बनाया गया कपूर सस्ता भी रहेगा और हम नकली कपूर के विदेशी आयात को प्रतिस्थापित कर सकेंगे । गाँवों में कपूर तुलसी के खेती के प्रति सम्मान पैदा किया जाय और कुटीर उद्योग के रूप में इससे कपूर निकालने की योजना बनाई जाय तो निस्सन्देह बहुत जल्दी यह एक व्यापक घरेलू धन्धा बन जायगा जो हमारे देश की कपूर की बड़ी मांग को पूरा कर देगा ।

———

पूर्व बुद्ध कालीन विश्व में व्यवहृत कुछ रासायनिक क्रियाएँ

[डा० रमाशंकर राय, प्राध्यापक, रसायन विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय]

मानव सभ्यता का विकास ईसा के जन्म से कई सहस्राब्द पूर्व प्रारम्भ हो गया था। नील नदी की घाटी, सिन्ध के मैदान, दजला और फरात के तटवर्ती प्रदेशों तथा पश्चिमी एशिया में भूमध्य सागर के तटवर्ती भूभागों में नवीन सभ्यताएँ आविर्भूत हुईं। इन प्रदेशों में अनेक नगरों का निर्माण हुआ, राजकीय सत्ताएँ संस्थापित हुईं और आदिकालीन युग के व्यवहारों को त्यागकर मनुष्य ने अभिनव आविष्कारों की ओर ध्यान दिया। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति, व्याधियों से छुटकारा पाने के उपायों, वैभव तथा विलास की सामग्रियों के संग्रह तथा जीवन में उपस्थित होने वाली नई-नई समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयत्न, प्रयोग तथा आविष्कार किए गए। इस समय व्यवहृत विधियों में वैज्ञानिक मनोवृत्ति तथा दृष्टिकोण का अभाव है और यही कारण है कि यह अव्यवस्थित सी प्रतीत होती हैं।

पाषाणकालीन सभ्यता को छोड़कर नव पाषाणकाल में पदार्पण करने पर मनुष्य को सुरा का ज्ञान हुआ। उत्सवों तथा आमोद प्रमोद के लिए मादक द्रवों का प्रयोग किया जाने लगा। मिस्र में शर्कराधिक फलों तथा मधु के घोल को किण्व करके मादक द्रव बनाने का प्रचलन था। रसों के इस मिश्रण को तीन-चार दिनों तक किण्व किया जाता था। इस प्रकार रासायनिक क्रिया द्वारा सुरा बन जाती थी। कतिपय ऐसे भी विवरण मिले हैं जिनके द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि कुछ समय के उपरान्त इस क्रिया को बन्द कर दिया जाता था क्योंकि अलकोहल से एसिटिक एसिड का बनना प्रारम्भ हो जाता था और सुरा का स्वाद खट्टा हो जाता था। मिश्र में सहस्राब्द ई० पू० में पाए गए एक भित्ति चित्र के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि सुरा बनाने के लिये खजूर के फलों का रस निकाला जाता था। फलों के ढेर में पानी डालकर और उसे कुचल कर उसका रस निकाल दिया जाता था। कभी-कभी इस रस में मधु का घोल भी मिलाया जाता था। इसे किण्व करके मादक द्रव बनाया जाता था। उक्त पदार्थों में शर्करा का अंश अधिक होता था। अतएव इन पदार्थों द्वारा निर्मित सुराओं में अलकोहल की मात्रा अधिक होती थी। किण्व करते समय रसों के मिश्रण में कतिपय वनस्पतियाँ तथा मसाले भी मिला दिए जाते थे। इनके कारण सुरा का स्वाद और भी रुचिकर हो जाता था। मिश्र के प्राचीन लेखों से ज्ञात हुआ है कि ताड़ के वृक्षों के रस से भी सुरा बनाई जाती थी। इस प्रकार के बने द्रव पदार्थ का उपयोग मिश्र में ममियों (सुरक्षित शवों) की रक्षा के लिये किया जाता था। मिश्र के थीन्स नामक स्थान पर दो सहस्राब्द ई० पू० के एक मकबरे में एक चित्र मिला है जिसमें सुरा बनाने की विधियाँ विस्तार पूर्वक चित्रित की गई हैं।

जौ तथा गेहूँ द्वारा बनी हुई सुराओं का प्रारम्भ सुमेर सभ्यता के समय से होता है। सुमेरियन सुराएँ प्रायः अन्नों से बनाई जाती थीं। स्वाद, बनाने की विधियों तथा अन्य गुणों के आधार

पर इसका नाम्नीकरण भी किया गया था। विश्व इतिहास में सुराओं के वर्गीकरण का सर्वप्रथम उल्लेख यहाँ पर मिलता है। अनाजों में पाए जाने वाले स्टार्च को आंशिक रूप से माल्ट शर्करा में परिवर्तित करने के लिये अन्न को अंकुरित किया जाता था। माल्ट के साथ वनस्पतियाँ, खजूर, मसाले तथा अन्य कई वस्तुएँ भी मिला दी जाती थीं। इस मिश्रण को भीगे हुए अनाज के साथ मिलाकर किण्व किया जाता था। इसके विपरीत मिस्र में पन्द्रह सौ ई० पू० के लगभग खमीर (Yeast) का पता चला है। कभी-कभी किण्व करते समय इन सुराओं में सुगन्धित पुष्प तथा मधु का घोल भी मिला दिया जाता था। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मेसोपोटामिया में माल्ट निर्माण करने तथा किण्व करके बियर (Beer) नामक सुरा बनाने का कार्य तीन सहस्राब्द ई० पू० में प्रारम्भ हो गया था। इस भूभाग में पैदा होने वाले अन्न का आधा भाग बियर बनाने में प्रयुक्त होता था। अनाजों में विशेषतया जौ का उपयोग किया जाता था। विभिन्न रंग तथा स्वाद वाली सुराओं के बनाने में श्वेत, लाल, तथा काले जौ और गेहूँ का मिश्रण प्रयुक्त होता था। सुमेर सभ्यता में सामाजिक स्तर तथा प्रतिष्ठा के अनुसार सुरा के उपभोग की मात्रा भी निश्चित की गई थी। कालान्तर में इन लोगों ने तापक्रम पर भी नियंत्रण करना सीख लिया, जिससे किण्व करने की क्रिया सुगम हो गई। बेबीलन में स्त्रियों के हाथों में सुरा निर्माण का कार्य दिया गया था। धीरे-धीरे यह कार्य स्त्रियों के हाथों से निकल कर पुरुषों के हाथों में चला गया। जनसंख्या की वृद्धि होने के कारण अनाज का उपभोग बढ़ गया। अन्नाभाव के कारण सुरा बनाने में खजूर तथा सुगन्धित वस्तुएँ प्रयोग की जाने लगीं। सुरा बनाने की एक और भी विधि प्रचलित थी। जौ को कूट कर छिलका निकाल दिया जाता फिर इसके ढेले बना दिए जाते थे। इन ढेलों को पका कर माल्ट बनाया जाता था। इस माल्ट में सुगन्धित पदार्थ मिलाकर पानी से आर्द्र किया जाता था। इसमें नमक मिला कर पात्रों में किन्व किया जाता था। थोड़ी सी सुरा बन जाने पर इसे निकालकर दूसरे पाव में किण्व किया जाता था। फिर ठोस पदार्थ को छान कर सुरा से पृथक् कर लिया जाता था। इन सुराओं में अलकोहल की मात्रा छः से आठ प्रतिशत होती थी।

यूनान के सुरा के देवता डायोनिसस (Dionysos) के मेसोपोटामिया त्याग करने का कारण यह था कि वहाँ के निवासी बियर के व्यसनी हो गए थे। यह आख्यायिका इस बात की पुष्टि करती है कि तीन सहस्राब्द ई० पू० में मिस्र निवासियों को सुरा बनाने की कला मेसोपोटामिया से मिली। अंगूर शर्करा से बनी सुरा (Wine) का पहली बार उल्लेख २११० ई० पू० में गुडिया (Gudea) के लेख से मिलता है। इस राजा ने सुरा बनाने के लिए वृक्षों के नीचे अंगूर की लताएँ आरोपित कीं। अंगूर की सुरा असीरिया के राजाओं का प्रिय पेय था। सम्राट अशुर नसीर पाल (८८४ ई० पू०) तथा सेनाचरिब (७०५ ई० पू०) ने अंगूर की सुराओं का उपभोग किया। नेबूकदनेजर तथा सरगों द्वितीय ने भी कई उत्तम सुराएँ आयात कीं। अशुर बानी पाल (६६८ ई० पू०) के पुस्तकालय से दस उत्तम सुराओं की एक सूची उपलब्ध हुई है। मिश्र तथा मेसोपोटामिया में अंगूर के फलों के छिलकों में से यीस्ट निकालकर अंगूर शर्करा को अलकोहल में परिवर्तित किया जाता था। सुरा बनाने के लिए अंगूर के फलों को पैरों से कुचला जाता था। ठोस पदार्थ का रस पूर्ण रूप से निकाल दिया जाता था। फिर यीस्ट डाल कर इसे किण्व

किया जाता था। किण्वित द्रव को लिनेन के बने वस्त्रों से छान कर पात्रों में संग्रह किया जाता था और पात्रों का मुँह अच्छी तरह से बन्द कर दिया जाता था। बाइबिल में भी सुराओं के विवरण पाए जाते हैं। यहूदी समाज में भी सुराओं का उपभोग किया जाता था। इनके धर्म ग्रन्थों में यह उल्लेख मिलता है कि तीन वर्ष तक सुराएँ सुरक्षित रखी जाती थीं। समय के व्यतीत होने के साथ ही साथ उनका स्वाद भी उत्तम हो जाता था। किन्तु कुछ समय के उपरान्त स्वाद कड़ुवा होने लगता था। यह भी उल्लेख पाया जाता है कि अधिक किण्व करने से सुरा में काञ्जिकाम्ल (सिरका) बन जाता था। इस अम्ल का पता प्राचीन काल में लग चुका था और औषधियों में डालने तथा वनस्पतियों के घोलने में इसका उपयोग होता था।

चित्रों के बनाने में रंगों की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न रंगों को प्राप्त करने के लिए मनुष्य ने जैविक, वानस्पतिक तथा खनिज पदार्थों का पर्यवेक्षण किया। प्रकृति में उपलब्ध इन पदार्थों के द्वारा अनेक रंग उपयोग में आने लगे। एशिया में निकट पूर्व के देशों में रंगने के लिए गैरिक का उपयोग बहुतायत से होने लगा। गैरिक से हमारा अभिप्राय प्राकृतिक अवस्था में पाए जाने वाले लौह अयस्क से है, जिनका रंग लाल या पीला होता है। इन अयस्को में जल की मात्रा अनिश्चित होती है और यही कारण है कि इनके रंगों में परिवर्तन होते हैं।

लाल वर्ण वाले गैरिक का उपयोग मिस्र देश में राजवंशों की संस्थापना से भी पूर्व होने लगा था। मेसोपोटामिया, एशिया माइनर तथा फिलिस्तीन में मृण्पात्रों के रंगने तथा भित्ति चित्रों के बनाने में इसी पदार्थ का उपयोग होता था। फिलिस्तीन में लकड़ियाँ रंगने के लिए लाल सीसे का चूर्ण प्रयुक्त होता था। इस यौगिक को बनाने की कला मेसोपोटामिया से प्रारम्भ हुई। सीसे तथा श्वेत सीसे के मिश्रण को गरम किया जाता था। गरम करने पर यह मिश्रण लिथार्ज में बदल जाता था। इसे पीस कर आग पर गरम किया जाता था। गरम करने पर मिश्रण लाल सीसे में परिवर्तित हो जाता था। गहरा लाल रंग बनाने के लिए श्वेत तथा लाल रंगों और सीपियों को मिला कर पीसा जाता था। आर्सेनिक के सल्फाइड तथा लिमोनाइट के घोल से पीला रंग बनाया जाता था। मिश्र के गजर नामक स्थान पर एक समाधि में संग्रहीत लिमोनाइट का ढेर मिला है। इसी देश में सम्राट तुतनखामेन के मकबरे से प्राप्त अनेक वस्तुओं में से आर्सेनिक का सल्फाइड भी है। उक्त वस्तुओं से इस कथन की पुष्टि होती है। इतना ही नहीं अष्टदश राज्यवंशीय कालीन थीब्स के भित्ति चित्रों में भी इसी पीत रंग का उपयोग किया गया है। मिस्र में पूर्व राज्यवंशीय काल से ही पीले रंग वाले सीसे के आक्साइड का प्रचलन हो गया था। इसी काल में लाल और पीले रंगों को मिलाकर नारङ्गी रंग बनता था। बेबीलन में बर्तनों पर चमक लाने के लिए नेपुल्स-पीत नामक रंग का आवरण चढ़ाया जाता था। यह रंग लेड एन्टिमानेट है। भूरा रंग बनाने की कई विधियाँ प्रचलित थीं। काले धरातल पर लौह औषिद का लेप करने से, अथवा प्राकृतिक गैरिक तथा जिप्सम को चूर्ण करके या पीत गैरिक तथा हैमेटाइट को पीस देने पर भूरा रंग बन जाता था।

ताँबे के यौगिकों से हरे रंग का कार्य लिया जाता था। हरे रंग का घोल बनाने के लिए मिश्र में कापर कार्बोनेट नामक रासायनिक पदार्थ या प्राकृतिक अवस्था में उपलब्ध जल मिश्रित कापर सिलिकेट को पीसा जाता था। इसके अतिरिक्त सिकता, क्षार तथा ताँबे के अयस्कों को आग

में पिघलाया जाता था। इस ढेर के चूर्ण, को भी रंग बनाने में प्रयुक्त किया जाता था। इस विधि द्वारा निर्मित हरे रंग का विवरण छठे राजवंश के समय में मिलता है। जिस समय ताँबे के यौगिकों ने हरे रंग के अभाव की पूर्ति की, उसी समय उत्तम श्रेणी के नीले रंगों का भी आविष्कार हुआ। राजवर्त (Lepis lazuli) तथा टरक्वायज(Turquoise) नामक पदार्थों का चूर्ण नीला रंग बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। मेसोपोटामिया निवासियों ने पात्रों पर नीले रंग का चमकदार आवरण चढ़ाने तथा नीले रंग का काँच बनाने के लिए कोबाल्ट के लवण प्रयुक्त किए। मेसोपोटामिया में भी मिस्र की भाँति राजवर्त के चूर्ण का उपयोग होता था। मिश्र में बालू, खड़िया मिट्टी सज्जी मिट्टी तथा क्षारीय ताम्र कार्बोनेट को उच्च ताप पर गरम किया जाता था। इस क्रिया द्वारा मिश्रण का रंग पीला हो जाता था। पदार्थ के कई नाम थे। इतिहासकार प्लिनी ने इसे केरूलियम (Caeruleum) तथा थियोफ्रैस्टस् ने कायनास (Kynos) की संज्ञा से विभूषित किया। इस यौगिक को बनाने का कारखाना मिस्र देश के अलअमरना नामक स्थान पर मिला है। इसी प्रकार का एक अन्य पदार्थ प्राचीन असीरिया में पन्द्रह सौ ई० पू० के लगभग बनता था। मिस्र में इस यौगिक का उपयोग रंगीन काँच बनाने, बर्तनों पर नीले रंग का आवरण चढ़ाने तथा रंगने के लिए होता था। इसके अतिरिक्त छोटी-छोटी वस्तुएँ बनाने में भी इसका उपयोग किया जाता था।

मिस्र में काले अञ्जन का भी प्रचलन था। काला अञ्जन गैलीना द्वारा बनाया जाता था। इस देश में पाप्त काले रंगों के विश्लेषण से पता चला है कि इनके बनाने में काजल अथवा जली अस्थियाँ ली गई थीं। मेसोपोटामिया में कालिमा उत्पन्न करने के लिए बिटुमेन का आश्रय लिया गया। मिस्र में श्वेत रंग खड़िया या जिप्सम से बनाया जाता था। सुमेर सभ्यता में श्वेत चूर्ण बनाने के लिए खड़िया तथा जिप्सम को मिला कर उपलों की आँच में गरम किया जाता था। प्लिनी तथा थियोफ्रैस्टस ने लिखा है कि सीसे पर सिरके की प्रतिक्रिया द्वारा श्वेत सीसा बनाया जाता था। श्वेत रंग का आवरण प्राप्त करने के लिए कभी-कभी चीनी मिट्टी का भी उपयोग किया जाता था। असीरिया के निवासी पात्रों पर चमकदार आवरण उत्पन्न करने के लिए टिन के आक्साइड का प्रयोग करते थे। दरद (Cinnabar) को अर्द्धपातन क्रिया द्वारा पातन करने पर पारा मिलता था। इस पारे को छोटी-छोटी धातु की बनी मूर्तियों पर चढ़ाया जाता था।

रञ्जन कला का विकास मिस्र देश में जिप्सम के प्लास्टर द्वारा बनाए गए आधारों पर हुआ। जिप्सम खानों से निकलता था। इसे गरम करके पीसा जाता था। पिसे चूर्ण को पानी से आर्द्र कर के आधार बनाया जाता था। गिजा तथा सक्कारा के मकबरों में इस पदार्थ का उपयोग विशेष रूप से किया गया था। मिस्र ही की भाँति मेसोपोटामिया में भी इस प्लास्टर के बने भित्ति के धरातल पाये गए हैं। किन्तु इन लोगों का ज्ञान जिप्सम से बने धरातलों तक ही सीमित न था। २५०० ई० पू० में भी चूने के पत्थरों के जलाने की विधि इन लोगों को ज्ञात थी। मेसोपोटामिय के खफज (Khfafaaje) नामक स्थान पर इसी समय की एक चूने की भट्ठी मिली है।

—:o:—

मानव सभ्यता और संस्कृति पर विज्ञान का प्रभाव

(संकलित)

विज्ञान की शक्ति अपार है। समय और समाज की आवश्यकताओं के फलस्वरूप विज्ञान का विकास हुआ है और वर्तमान युग पर विज्ञान का कितना अधिक प्रभाव है, यह किसी से छिपा नहीं। मानव जीवन और मानव सभ्यता के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का आधिपत्य है और यह भी पूरी तरह निश्चित है कि संसार के भावी स्वरूप का निर्माण भी विज्ञान ही करेगा। विज्ञान मनुष्य की शक्ति, क्षमता और बुद्धिमत्ता का प्रतीक है, लेकिन इसके साथ ही उसने मानव की दुर्बलताओं और सीमाओं को भी पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है।

यदि मनुष्य अभावग्रस्त न होता तथा जीवन व्यतीत करने के लिए उसे कई प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता न पड़ती तो संसार विज्ञान के आलोक से रहित होता। न विज्ञान का विकास होता और न मनुष्य की बुद्धि आविष्कारों की ओर प्रवृत्त होती। तथ्य यह है कि अभावग्रस्त होते हुए भी मनुष्य साहस, शक्ति और स्फूर्ति से ओतप्रोत था और इसलिए उसने संसार की सभी विघ्न-बाधाओं को भेद कर अपना मार्ग ढूंढ निकाला।

अमेरिका के महापुरुष श्री फ्रैंकलिन और श्री जेफर्सन की गणना ऐसे व्यक्तियों में की जाती है, जिसमें सच्चे वैज्ञानिक की आत्मा निवास करती थी। इन दोनों महापुरुषों ने अपने अकथ परिश्रम द्वारा ऐसे आधारभूत सत्यों की खोज की, जो आज समस्त मानव जाति का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। ये दोनों महापुरुष कोरे राजनीतिज्ञ ही न थे। वह यह समझते थे कि देश की प्रगति और समृद्धि की दृष्टि से विज्ञान का क्या महत्व है। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि दल, दरिद्रता और अभाव के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए विज्ञान एक अत्यधिक शक्तिशाली साधन है। उनका यह सोचन सर्वथा उचित था कि विज्ञान उनके देशवासियों का जीवन-स्तर सुधारने में महत्वपूर्ण योग देगा तथा अन्धविश्वास और अज्ञानता को पूरी तरह नष्ट कर देगा। उन्हें यह भी विश्वास हो गया था कि अत्याचार, बर्बरता, दमन, धार्मिक उत्पीड़न इत्यादि से मानव जाति को मुक्त करने की क्षमता विज्ञान में ही है।

इन महापुरुषों ने आज से २०० वर्ष पूर्व जो भविष्यवाणियाँ की थीं, वह बिलकुल सही निकलीं। इस अवधि में उनका स्वप्न ही पूरा नहीं हुआ, बल्कि मानव जीवन और सभ्यता के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान की सहायता से आश्चर्यजनक प्रगति की गई है। कृषि उद्योग, व्यवसाय, चिकित्सा और जीव विज्ञान इत्यादि के क्षेत्र में इतनी अभूतपूर्व क्रान्ति हो गई है जिसकी सम्भवतः इन महापुरुषों ने भी कभी कल्पना न की होगी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान का सहारा लेकर मनुष्य ने आश्चर्यजनक सफलताएं प्राप्त की हैं। विज्ञान के बल पर पृथ्वी-मण्डल की सीमाओं को भेद कर अन्तरिक्ष में उड़ान भरने और अन्य ग्रहों और उपग्रहों पर मानव सभ्यता का ध्वज लहराने के स्वप्न हम देख रहे हैं। वह दिन भी दूर नहीं जब जीवन के रहस्य को भी हम सुलझा लेंगे।

विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने मोटर, रेडियो, टेलिविजन, टेलीफोन इत्यादि आधुनिक सुख-सुविधा की तरह-तरह की वस्तुएं और रोगाणुनाशक आश्चर्यजनक औषधियां तैयार की हैं तथा बहुत से घातक रोगों पर उसने विजय प्राप्त की है। संक्षेप में, विज्ञान ने मनुष्य के जीवन को हर प्रकार से सुखी बनाने का प्रयत्न किया है।

लेकिन यह पर्याप्त नहीं कि संसार के कुछेक देश ही विज्ञान के आलोक से आलोकित रहें तथा शेष संसार पहले की तरह अभावग्रस्त और अन्धकारपूर्ण बना रहे। समय की माँग है कि संसार के अन्य भागों को भी विज्ञान से पूरा-पूरा लाभ प्राप्त हो। यह सम्भव नहीं कि आधा विश्व विज्ञान के अन्धकार से मुक्त और सुखी हो तथा शेष संसार में अज्ञानता और अन्ध-विश्वास का अखण्ड साम्राज्य हो। यह ठीक है कि एशिया और अफ्रीका के देशों में नवजागृति के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं तथा शीघ्र ही अन्धकार-ग्रस्त क्षेत्रों में भी ज्ञानरूपी प्रकाश की किरणें फूट निकलेंगी। परन्तु इसके लिए प्रयत्न, साहस और प्रोत्साहन की अत्यधिक आवश्यकता है। मनुष्य ने जो ज्ञान और जानकारी प्राप्त की है उसका उस समय तक लोप नहीं हो सकता जब तक पृथ्वी मण्डल पर मानवजाति रहती है। जब तक मानव जाति जीवित है, यह अज्ञान और अन्धविश्वास के अन्धकार को भेदने के अपने प्रयत्न को बराबर जारी रखेगी।

विज्ञान जहाँ मानव जाति के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ है, वहाँ उसने बहुत सी समस्याओं को भी जन्म दिया है। इसमें दो समस्यायें सबसे अधिक जटिल हैं। पहली समस्या तो यह है कि विज्ञान ने मनुष्य को अपारशक्ति प्रदान की है। इस शक्ति का उपयोग अच्छे तथा बुरे कार्यों के लिए समान रूप से किया जा सकता है। उदाहरणार्थ अणुशक्ति को लीजिये, आणविक शस्त्रास्त्रों के निर्माण के फलस्वरूप एक प्रलयंकारी शक्ति जो मानव जाति के लिए एक वरदान सिद्ध हो सकती थी आज समस्त मानव जाति के लिए एक अभिशाप बन गई है और मानव-जाति के विनाश का भय उत्पन्न हो गया है। संसार के विभिन्न देशों की विभिन्न शासन-प्रणालियों पर आधारित सरकारें इस समस्या को नहीं सुलझा सकतीं, क्योंकि वह अपने स्वार्थों और सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर ही उस पर विचार करती हैं। हम केवल यह आशा कर सकते हैं कि ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समाजों का निर्माण हो जो एक दूसरे के प्रति सहानुभूति, सहिष्णुता और मित्रता की भावना रखते हों। समाज ही इस समस्या को सुलझा सकेगी।

दूसरी समस्या यह है कि विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप प्रत्येक वस्तु का स्वरूप बदल गया है और भविष्य में भी उसमें निरन्तर परिवर्तन होना है। ज्ञान की कोई सीमा नहीं और न वह किसी एक पुस्तक में सीमित किया जा सकता है। ज्ञान में निरन्तर विस्तार होता रहता है तथा सभ्यता और संस्कृति के मापदण्डों में भी उसी के अनुसार परिवर्तन होते रहते हैं।

यदि हम स्वतन्त्र रहना चाहते है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि जीवन का बलिदान करने की अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखें। मनुष्य के हृदय में ज्ञानोपार्जन की तीव्र लालसा और उत्कण्ठा जगा कर ही हम संसार और मानव सभ्यता का वास्तविक कल्याण कर सकते हैं। विज्ञान ने आज समस्त संसार को विशाल परिवार में परिणत कर दिया है। प्रेम, सहिष्णुता, निष्ठा, विश्वास और सहयोग के बल पर ही यह विशाल परिवार फल-फूल सकता है।

———

सार संकलन

आणविक शक्ति के कुछ औद्योगिक उपयोग

मानवता ने विभिन्न साधनों से शक्ति का विदोहन करके अपनी क्षमता में कल्पनातीत वृद्धि की है और श्रेष्ठतर ढङ्ग पर जीवन-यापन करने में समर्थ हुआ है।

शक्ति-साधन के रूप में कोयले के उपयोग के फलस्वरूप मानव की आर्थिक क्रियाशीलता के क्षितिज का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। लोहा-उद्योग का इतना अधिक विस्तार इसी का परिणाम था। यातायात के क्षेत्र में तो इसने अद्भुत क्रान्ति कर दी। पालों के सहारे चलने वाले छोटे-छोटे जहाजों का स्थान द्रुत गति से महासागरों को पार करने वाले वाष्प-चालित जलयानों ने ले किया। शक्ति-चालित रेल और सड़क यातायात के युग का प्रारम्भ हुआ। कोयला ही रासायनिक उद्योग का आधार स्तम्भ बन गया और क्षिप्रगति से विकसित हो रहे विशाल विद्युत्-शक्ति उद्योग के लिये ईंधन की व्यवस्था भी इसी ने की। सबसे बड़ी बात यह थी कि यह काल और दूरी पर विजय प्राप्त करने की दिशा में मानव के अभियान-पथ पर एक युगान्तकारी मोड़ बन गया।

तेल और गैस मानव को शक्ति प्रदान करने वाले अन्य महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन्होंने भी हमारे विश्व को विस्तृत करने और दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया। खनिज तेल के आधार पर ही विशाल मोटर और ट्रक-उद्योग विकसित हो सका है। इसने काँच की माँग में अत्यधिक वृद्धि की है। इसके उपयोग का ही यह परिणाम है कि हजारों लाखों मील सड़कों का निर्माण करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप सीमेंट, बालू और अन्य आवश्यक सामग्रियों की माँग बढ़ी। इस समय खनिज तेल का उपयोग रेल सड़क यातायात के लिये ईंधन तथा रासायनिक उद्योग के लिये एक महत्वपूर्ण मूल सामग्री प्रदान करता है। इसी के सहारे आज मानव आकाश में एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ने लगा है।

जब अणु को विखण्डित किया जाता है, तो दो बातें होती हैं। एक तो इसके फलस्वरूप अत्यधिक ऊष्मा-शक्ति उत्पन्न होती है और विखण्डित पदार्थ का कुछ अंश शक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। दूसरे, इसके फलस्वरूप विकिरण का प्रादुर्भाव होता है, जिसके अन्तर्गत शक्ति-कण उड़ कर अन्य अणुओं में प्रविष्ट हो जाते हैं, और इस प्रकार उन्हें गतिमान अथवा रेडियो-सक्रिय बना देते हैं।

आणविक भट्ठी द्वारा ताप से बिजली उत्पन्न करने की समस्या एक ऐसा विषय है, जिसने आज संसार भर के इंजीनियरों, शिक्षा शास्त्रियों, सरकारी कर्मचारियों, अर्थशास्त्रियों और दूसरे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रखा है। इस दिशा में यूरोप और जापान सहित सुदूरपूर्व के अन्य

देशों में विशेष प्रयत्न हो रहे हैं, किन्तु आशा है कि जैसे-जैसे अन्य क्षेत्रों और देशों में उद्योगों का विकास होता जायेगा और वे अणुशक्ति वाले बिजलीघरों की बिजली प्रयुक्त करने में समर्थ होते जायँगे, वैसे ही वैसे तत्सम्बन्धी गतिविधियों का विस्तार इन क्षेत्रों और देशों में भी होता जायगा।

यूरोप और संसार के कई अन्य भागों में ईंधन की पूर्ति अत्यन्त अपर्याप्त और अमेरिका की तुलना में कहीं अधिक मँहगी है। 'यूरेटम' नामक संघटन के अन्तर्गत पश्चिमी यूरोप के ६ देश १९६३ या १९६५ तक १०,००,००० किलोवाट आणविक बिजली उत्पन्न करने वाले कारखानों की स्थापना कर लेने का आयोजन कर रहे हैं। अणु-शक्ति द्वारा इतनी बिजली का उत्पादन अत्यधिक नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इस दिशा में यह प्रारम्भिक प्रयास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इतनी आणविक बिजली से यूरोप के लगभग ३०,००,००० निवासियों की आवश्यकता पूरी की जा सकेगी। किन्तु आणविक ताप का उपयोग कुछ अन्य महत्वपूर्ण दिशाओं में भी हो रहा है। इनमें से एक है जलयानों को चलाने में आणविक ईंधन का उपयोग।

अणुशक्ति-चालित जलयानों के विकास की दिशा में अमेरिका ने महत्वपूर्ण प्रगति की है। उसकी इस प्रकार की दो पनडुब्बियों—'नौटिकल' औरे "सीउल्फ"—ने विस्तृत सेवाएँ प्रदान की हैं और गोताखोर जहाजों के संचालन के क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त की हैं। स्मरणीय है कि अभी पिछले वर्ष उन्होंने हिमाच्छादित ध्रुव सागर के गर्भ में हो कर बड़ी सफलता के साथ अपनी यात्राएँ सम्पन्न कीं, और इस प्रकार, भू-मण्डल के उत्तरी सिरे पर अतलान्तक और प्रशान्त महासागरों के बीच अपार सम्भावनाओं वाले एक महत्वपूर्ण जल-मार्ग का द्वार उन्मुक्त किया।

आणविक भट्ठियों द्वारा उत्पन्न ईंधन से संचालित व्यापारिक जलयानों के निर्माण की दिशा में भी अच्छी प्रगति हो रही है। अमेरिका के प्रथम अणुशक्ति-चालित व्यापारिक पोत 'सावना' का जलवतरण-समारोह सम्पन्न हो चुका है। उसे पूर्ण रूप से सुसज्जित करने का काम जारी है। उसके लिये ७४,००० थर्मल किलोवाट बिजली उत्पन्न करने वाली एक जल-निपीड़ित आणविक भट्टी द्वारा ईंधन की व्यवस्था की गयी है। विमान-संचालन में अणुशक्ति के उपयोग की कल्पना की जा रही है। इस विषय में काफी अनुसन्धान और विकास कार्य सम्पन्न हो चुका है। १९५७ में अमेरिका ने विमान में प्रयुक्त होने वाले इंजिन के किस्म के एक टर्बोजेट इंजिन को अणुशक्ति द्वारा धरातल पर ही परीक्षणार्थ संचालित किया।

आणविक भट्टी से उत्पन्न बिजली के उपयोग का एक अन्य अमित सम्भावना वाला महत्व-पूर्ण क्षेत्र उद्योग है। औद्योगिक वस्तुओं को सँवारने में इसे प्रयुक्त करने का प्रयास हो रहा है इसके अतिरिक्त, वातावरण को गर्म करने में आणविक ताप का प्रयोग किया जा रहा है। अमेरिका के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में स्थित वातावरण को इस प्रकार गर्म करने की दिशा में सफल परीक्षण किये गये हैं। इंगलैण्ड और अन्य देशों में भी वातावरण को इस प्रकार तप्त करने की दिशा में प्रयास जारी है।

इस समय कोयला, तेल और गैस से उत्पन्न कुल बिजली का लगभग ५० प्रतिशत मशीनों द्वारा ताप के रूप में औद्योगिक कार्यों में प्रयुक्त हो रहा है। शेष में से २५ प्रतिशत का उपयोग

वातावरण गर्म करने में हो रहा है। वातावरण गर्म करने की प्रक्रिया के अन्तर्गत, बिजली का उपयोग घरों और व्यापारिक कार्यालयों को गर्म रखने में तथा पानी गर्म करने और भोजन पकाने में होता है।

रसायन, धातु-शोधन तथा अन्य प्रकार के उद्योगों में संलग्न कम्पनियाँ आणविक भट्टियों द्वारा उत्पन्न ताप का उपयोग करने की सम्भावनाओं की खोज में लगी हुई हैं। आशा है कि इन क्षेत्रों में कालान्तर से आणविक शक्ति का उपयोग होने लगेगा। उदाहरण के लिये, स्वीडेन में आणविक ताप उत्पन्न करने वाले बिजलीघरों की स्थापना की दिशा में कार्य हो रहा है। इसी प्रकार नार्वे में लकड़ी की लुगदी और कागज उद्योगों में आणविक ताप प्रयुक्त करने की दिशा में अच्छी प्रगति हो रही है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इंजिनियर, उद्योग और सरकार महासागरों के विशाल साधनों को उपयोग में लाने के तरीके ढूँढ निकालेंगे। इन महासागरों में धातुएँ और रासायनिक तत्त्व भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिये, अनुमान लगाया गया है कि एक घन मील समुद्री जल में ३,००,००० टन ब्रोमीन, बहुत बड़ी मात्रा में गैसोलीन तत्त्व तथा व्यापारिक कार्यों में प्रयुक्त हो सकने की असीमित सम्भावनाओं वाली विविध प्रकार की अन्य धातुएँ घुली हुई हैं।

२. क्या मनुष्य की अन्तरिक्ष में जीवित रह सकता है ?

संसार के वैज्ञानिक आजकल अन्तरिक्ष में विचरण करने और मंगल, शुक्र आदि ग्रहों की यात्रा करने की सम्भावनाओं पर गम्भीरता के साथ विचार कर रहे हैं, लेकिन अभी इस स्वप्न को साकार बनाने की दिशा में उन्हें बहुत कुछ करना शेष है। अन्तरिक्ष यात्रा के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के समक्ष जो सबसे अत्यधिक जटिल समस्याएं उपस्थित हैं, उनमें अन्तरिक्ष यात्रा के कार्यक्रम में मनुष्य की भूमिका भी एक अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्या है।

यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्य अन्तरिक्ष-यात्रा में पड़ने वाले खतरों का सीधा सामना कभी नहीं कर सकता। वैज्ञानिकों के लिए मानव की यही कमी निश्चय ही एक अत्यधिक निराशा की बात है। इस सम्बन्ध में सभी वैज्ञानिक एक मत हैं कि अन्तरिक्ष-यात्रा की दृष्टि में मनुष्य में जीव-विज्ञान और रसायन-विज्ञान की दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मनुष्य कहीं भी वायु और भोजन के अभाव में जीवित नहीं रह सकता। यदि उसे अन्तरिक्ष में जीवित रहना है तो यान के अन्दर उसे अनुकूल परिस्थितियां और वातावरण सुलभ होना चाहिए। प्रश्न यह नहीं है कि अन्तरिक्ष यात्री विशेष प्रकार का सूट पहने अथवा साधारण वस्त्र। मुख्य समस्या तो यह है कि उसे परिचित वातावरण सुलभ किया जाए, जिसका वह पृथ्वी पर अभ्यस्त हैं। संक्षेप में, अन्तरिक्ष यान को स्वयं एक छोटी सी पृथ्वी का रूप धारण करना पड़ेगा।

अमेरिकी सेना के तीनों अंगों तथा अमेरिकी विश्वविद्यालयों, अनुसन्धान-संस्थाओं, यान-निर्माताओं और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा अन्तरिक्ष-यात्रा में मनुष्य की प्रस्ताविक भूमिका का अत्यधिक बारीकी और सूक्ष्मता के साथ अध्ययन किया जा रहा है। ये अनुसन्धान संस्थाएं

अन्तरिक्ष-यात्रा में मानव की भूमिका के विभिन्न पहलुओं पर गहन और व्यापक अनुसन्धान कर रहे हैं। । जीवाणु रसायन-शास्त्री यह अध्ययन कर रहे हैं कि अन्तरिक्ष में मनुष्य से शरीर की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है, उसे कैसे और किस प्रकार भोजन कराया जा सकता है। रेडियो-जीवाणु शास्त्री मानव शरीर पर ब्रह्माण्ड किरणों के सम्भावित प्रभावों के बारे में, स्वच्छता और सफाई कार्यों के इंजिनियर मल-मूत्र को ठिकाने लगाने और यान को साफ सुथरा रखने, तथा बनस्पति-शास्त्री इस सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे हैं कि अन्य ग्रहों पर मनुष्य किस प्रकार की खाद्य-सामग्री प्राप्त करने की आशा कर सकता है। यही नहीं, वैज्ञानिक मनुष्य की कार्य-क्षमता तथा मनोवैज्ञानिक-क्षमता को मापने के लिए भी प्रयन्तशील है।

यह भी प्रश्न उठता है कि वर्षों की अन्तरिक्ष-यात्रा पर रवाना होने वाले मानव के स्त्री बच्चों का क्या होगा ? कितने दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद उसकी पत्नी को उसे तलाक देने का अधिकार होगा। संक्षेप में, अन्तरिक्ष-यात्रा का प्रभाव मानव समाज और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों और दाम्पत्य जीवन पर भी पड़ेगा। अतएव समाज शास्त्रियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे इन बातों पर भी अभी से गम्भीरता-पूर्वक मनन करना प्रारम्भ कर दें ताकि उपयुक्त अवसर आने पर मनुष्य को अंधेरे में न भटकना पड़े।

एक क्षण के लिए यह भी मान लीजिए कि यदि मनुष्य किसी ऐसे ग्रह पर जा उतरता है, जहां के निवासी न केवल टेक्निकल दृष्टि से, बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी उनसे आगे हैं, तो स्थिति क्या होगी ? यदि ये अन्वेषक अन्तरिक्ष-यात्रा वहां की उत्कृष्ट शासन-व्यवस्था, संस्कृति और सभ्यता से प्रभावित हो कर पृथ्वी को जीतने के लिए उन्हें आमंत्रित करते हैं और उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं तब क्या होगा ? ये या ऐसी अनेक सम्भावनाओं पर वैज्ञानिक, समाज शास्त्री, इतिहासवेत्ता तथा अन्य विशेषज्ञ अत्यधिक सावधानी से विचार कर रहे हैं।

अमेरिका के एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक डा० जेनाल्ड एन० माइकेल ने इण्डियाना पोलिस में 'अमेरिकन एसोसिएशन फार दी एडवान्स आफ साइन्स' के समक्ष अभी हाल में भाषण देते हुए कहा था कि मंगल ग्रह की यात्रा में लगभग २॥ वर्ष लगेंगे। आधुनिक सभ्य समाज में ऐसा व्यक्ति मिलना बहुत कठिन है जो इतने दीर्घकाल नक अन्तरिक्ष यान में धैर्य के साथ रह सके। इसके लिए हमें ऐसे समाज से व्यक्तियों को चुनना होगा, जिसमें लोग दीर्घकाल तक एकान्त में रहने के अभ्यस्त हों।

कुछ अमेरिकी वैज्ञानिकों का कथन है कि अन्तरिक्ष-यात्रा का सूत्रपात करने के लिए महिला अधिक उपयुक्त रहेगी, क्योंकि वह पुरुष की अपेक्षा वातावरण में और चाहार दीवारी के अन्दर रहने की अधिक अभ्यस्त होती हैं। एक दूसरा कारण यह भी है कि महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा अधिक दीर्घजीवी होती है और लम्बी अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए दीर्घजीवी यात्री का होना अधिक उपयुक्त होता है। महिलाओं के पक्ष में एक तीसरा कारण यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि वे अधिक समय तक अकेले रह सकती हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए भौतिक विज्ञान का ज्ञाता ही नहीं बल्कि उसे इंजिनियरिंग, ज्योतिष-विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, इत्यादि विषयों का भी अच्छा जानकार होना चाहिये। पुरुष या महिला अन्तरिक्ष-यात्री का पूर्ण स्वथ्य होना भी परमावश्यक है। यह भी आवश्यक है कि इन स्वस्थ अन्तरिक्ष-यात्रियों को आवश्यक प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाए ताकि वे बदली हुई परिस्थितिओं के अनुकूल अपने को ढाल सकें।

लेकिन इस समय तो यही प्रतीत होता है कि पहला अन्तरिक्ष-यान केवल एक व्यक्ति को ही ले जा सकेगा, क्योंकि इस समय की गणना से यह पता चलता है कि १ पौण्ड वजन को अन्तरिक्ष में ले जाने के लिए आधा टन इंधन और धातु की आवश्यकता पड़ेगी।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर ने यह सुझाव दिया है कि मंगल ग्रह की यात्रा पर रवाना होने वाले अन्तरिक्ष-यात्री को शरीर का तापमान कम करने वाली ऐसी औषधि दी जानी चाहिए जिसे खाकर वह उस समय तक कुम्भकरण की नींद सोता रहे, जब तक वह मंगल-ग्रह के आस-पास न पहुँच जाए। इस दवा के प्रभाव से यात्री सम्मोहित अवस्था को प्राप्त हो जाएगा, उसके शरीर का तापमान घट जाएगा, हृदय की धड़कनें मन्द पड़ जाएँगी, शरीर को भोजन पानी की बहुत कम आवश्यकता पड़ेगी और इस दौरान शरीर को जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी वह इन्जेक्शन द्वारा अपने आप उसके शरीर में पहुँचती रहेगी।

यात्रियों को ताजा भोजन सुलभ करने के सम्बन्ध में कुछ वैज्ञानिकों का सुझाव है कि अन्तरिक्ष-यान के अन्दर की विशेष प्रकार की एल्गी (एक विशिष्ट वनस्पति) उगाई जा सकती है। इसमें सभी पोषक तत्व आवश्यक अंश में विद्यमान रहते हैं और यान के अन्दर विशेष प्रकार के टैंकों में यह आसानी से उगाई जा सकेगी। इसे उगाने के लिए यात्रियों द्वारा परित्यक्त मल-मूत्र को खाद के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकेगा। अन्तरिक्ष यात्रियों को आक्सीजन सुलभ करने में भी इससे सहायता मिलेगी।

अन्तरिक्ष-यात्रियों के समक्ष एक सबसे बड़ी समस्या भारहीनता की है। राकेट के गुरुत्वाकर्षण शक्ति से मुक्त होते ही यात्रियों को इस स्थिति का सामना करना पड़ेगा। वह बिल्कुल भारहीन हो जाएगा। उसके कक्ष की वायु में भी कोई भार नहीं रहेगा और उसके साँस लेने के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा। परिणाम यह होगा कि यान के अन्दर की सभी वस्तुएँ कक्ष में तैरती हुई दिखेंगी। इस प्रकार के वातावरण का अभ्यस्त बनने में मनुष्य को प्रचुर समय लग सकता है और मनुष्य से शरीर पर इसके अनेकों दुष्प्रभाव पड़ सकते हैं और मांस पेशियाँ बेकार हो सकती हैं।

पृथ्वी से शुक्र और मंगल ग्रहों की यात्रा में तीन वर्ष तक प्रतिदिन १० लाख मील की दूरी तय करनी पड़ेगी। यह तो निश्चय है कि अन्तरिक्ष में मनुष्य अपने को अकेला और भूला-भटका अनुभव करेगा। वहाँ कोई क्षितिज न होगा, चारों तरफ घनघोर अंधकार होगा और सूर्य तथा अन्य नक्षत्र अंधितारे में भी बहुत प्रकाशमान दीखेंगे। नक्षत्र झिलमिलाते हुए नहीं बल्कि एक ही स्थान पर जड़े से प्रतीत होंगे।

यात्रा के प्रथम चरण में यान पर ब्रह्माण्ड किरणों का इतना तीव्र प्रहार होगा कि यदि चालक का ध्यान न बँटाया गया तो उसका मानसिक सन्तुलन निश्चय ही बिगड़ जाएगा।

पृथ्वी पर पांचवे हिम-युग का पदार्पण :

पृथ्वी में जो हिमनद बह रहे हैं, उनका भविष्य क्या है ? ध्रुव-खण्डों और उनके चारों ओर फैली असीम हिमराशि पिघल रही है या उसमें और भी वृद्धि हो रही है ?—यह एक ऐसी पहेली है, जिसे सुलझाने के लिए संसार के अनेक देशों के वैज्ञानिक पिछले वर्षों से प्रयत्नशील हैं। पृथ्वी का लगभग ५ प्रतिशत धरातल हिम से मण्डित है। कुल मिला कर ६० लाख वर्ग मील में हिम और हिमनदों का विस्तार है। इसमें पर्वतों में बहने वाले हिमनद तथा दक्षिणी और उत्तरी ध्रुवों का विशाल हिम-मण्डित भूखण्ड सम्मिलित है। हिम-मण्डित इन विशाल भूखण्डों में जो कुछ होता है, उसका न केवल दुनिया के मौसम पर अपितु मानव जीवन के अन्य पहलुओं पर भी व्यापक प्रभाव पड़ता है।

इधर कुछ वर्षों में हिमनदों के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन हो गए हैं। उदाहरणार्थ, पश्चिमी अमेरिका में पिछले ७० वर्षों में हिमनदों में बहने वाली हिमराशि ५० प्रतिशत घट गई है। यही नहीं, उत्तरी ध्रुव सागर में तैरने वाले हिम-खण्डों की मोटाई में एक-तिहाई कमी हो गई है और ६० वर्ष पूर्व की अपेक्षा आज उसका विस्तार भी बहुत कम हो गया है।

इन परिवर्तनों को देख कर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पृथ्वी धीरे-धीरे अधिक गर्म होती जा रही है। लेकिन इधर कुछ वर्षों में किए गए महत्वपूर्ण अनुसन्धान के फल-स्वरूप वैज्ञानिकगण यह अनुमान भी लगाने लगे हैं कि बहुत सम्भव है ध्रुव-क्षेत्र में हिम के पिघलने का विपरीत प्रभाव भी हो और यह भी बहुत सम्भव है कि यह परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया का प्रारम्भ हो, जिसके कारण आगे कई सौ वर्षों बाद पृथ्वी को पुनः एक नए हिम-युग में प्रवेश करना पड़े।

इस समय पृथ्वी पर जो हिमराशि विद्यमान है, वह वस्तुतः हिम-युग के समय प्रवाहित होने वाले उन विशाल हिमनदों का अवशेष है, जिन्होंने भूतकाल में कम से कम चार बार अधिकांश यूरोप, उत्तरी अमेरिका और उत्तरी एशिया को अपने अंक में समेट लिया था।

पृथ्वी में विद्यमान हिमराशि का दो—तिहाई भाग भूखण्डों पर है। इसमें दक्षिणी ध्रुव-क्षेत्र का ४८ लाख वर्ग मील क्षेत्र, ग्रीनलैण्ड का ६ लाख ६० हजार वर्ग मील क्षेत्र तथा उत्तरी ध्रुव सागर में स्थित अन्य कई हिममण्डित द्वीप शामिल हैं। शेष एक-तिहाई हिमराशि उत्तरी ध्रुव सागर में उतरा रही है। इसका कुल विस्तार लगभग ३०लाख वर्ग मील है।

हिमनदों का प्रारम्भ हिम पात से होता है। जब इतनी अधिक बर्फ किसी प्रकार एक स्थान पर एकत्र हो जाती है कि पिघल कर नहीं निकल सकती, ऊपर जमा बर्फ का दबाव पड़ने पर नीचे की नरम बर्फ पिघल कर पुना ठोस बर्फ के रूप में परिणत होती रहती है और इस प्रक्रिया द्वारा ठोस बर्फ की अनेक परतों का निर्माण होता रहता है। ध्रुव क्षेत्र में तो इतनी अधिक ठण्डक रहती है कि नर्म बर्फ तुरन्त ठोस बर्फ में परिणत हो जाती है। यदि हिमपात निरन्तर होता रहता है, तो हिमनद की मोटाई बढ़ती जाती है और तब अपने भार के कारण यह हिमनद विभिन्न दिशाओं में बह निकलते हैं। हिमनद का आगे का भाग उस समय तक बढ़ता रहता है, जब तक किसी गर्म क्षेत्र

में नहीं पहुँच जाता। यहाँ पहुँचते ही बर्फ का पिघलना शुरू हो जाता है और वह हिमखण्ड हिमनद से अलग हो जाता है। जब तक हिमनद को नई बर्फ मिलती रहती है, हिमनदों का प्रवाह होता रहता है। इन हिमनदों में बहने वाले हिम की गति १ इंच प्रति सप्ताह से ले कर १०० फुट प्रति दिन तक हो सकती है।

पिछली कई पीढ़ियों से समुद्र की सतह हर १०० वर्ष बाद ३ इंच ऊँची उठती जा रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि भूखण्डों में जमा हिमराशि पिघल रही है। इस सन्दर्भ में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि समुद्र में तैरने वाली बर्फ के पिघल जाने से भी समुद्र की सतह में कोई परिवर्तन नहीं होगा। पिछले कुछेक दशकों से यूरोप की एल्प्स पर्वत-श्रेणी तथा संसार की अन्य पर्वत श्रेणियों में बहने वाले हिमखण्डों की बर्फ बहुत तेजी से पिघल रही है। इन हिमनदों से संसार के अनेक देशों के लोगों की जल सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति होती है और यदि इनका तेजी से पिघलना जारी रहा तो बहुत से देशों के लोगों के समक्ष जलाभाव की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। इस सम्भावना को दृष्टि में रख कर वैज्ञानिकों ने हिमनदों को तेजी से पिघलने से रोकने वाले कुछ रासायनिक पदार्थों का निर्माण किया है। उनका दावा है कि यदि ये रासायनिक पदार्थ हिमनदों पर छिड़क दिए जाएँ, तो बर्फ पिघलने की गति बहुत मन्द पड़ जाएगी। इसके अतिरिक्त गर्मी में पिघलने वाली बर्फ के पानी को पर्वतीय घाटियों में रोक लेने के सम्बन्ध में भी इंजिनियर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे हैं। फिर भी, समुद्रों में पानी जिस मात्रा में पहुँच रहा है उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि हिमनदों के अलावा अन्य किसी हिम-मण्डित भूखण्ड की बर्फ भी पिघल रही है।

वैज्ञानिकों ने यह भी पता लगाया कि सभी हिमनद नहीं पिघल रहे हैं। उन्हें ज्ञात हुआ है कि औलम्पिक और कास्केड पर्वत श्रेणियों में हिमपात का परिमाण बढ़ जाने के फलस्वरूप १९५१ से ही वहाँ से निकलने वाले हिमनदों का आकार-प्रकार बढ़ रहा है।

दक्षिणी अलास्का स्थित 'टाकू' तथा अन्य कई हिमनदों का आकार-प्रकार भी बढ़ रहा है। लेकिन इस वृद्धि का कारण गर्म मौसम है। इन हिमनदों के हिमागार काफी ऊँचाई पर हैं और वहाँ इतनी ठण्डक और ऊष्णता रहती है कि हिमपात की कोई सम्भावना नहीं रहती। इधर मौसम कुछ गर्म हो जाने का फल यह हुआ है कि हिमपात का परिमाण बढ़ गया है, जिससे हिमनदों का आकार-प्रकार और बढ़ता जा रहा है।

यह एक विचित्र संयोग है कि ग्रीनलैण्ड में हिममण्डित क्षेत्र संकुचित भी हो रहा है और बढ़ भी रहा है। दक्षिण में कई स्थानों पर बर्फ पिघल रही है। इस का प्रमाण यह है कि कई ऐसे खेत बर्फ से मुक्त हो गए हैं, जो सदियों पूर्व हिम द्वारा आत्मसात कर लिए गए थे। लेकिन इस के साथ ही आन्तरिक भागों में माप करने पर पता चला है कि हिमपात में वृद्धि हो गई है तथा पिछले दशकों की तुलना में इस समय वहाँ हिमराशि बढ़ गई है।

कुछ वर्ष पूर्व हिम-विज्ञान के विशेषज्ञों ने यह हिसाब लगाया कि यदि पृथ्वी के भूखण्डों पर वर्तमान सभी पिघल जाए, तो समुद्र की सतह १५० से २०० फुट तक ऊँची उठ जायगी। इसके फलस्वरूप संसार के अनेक बड़े नगर जल में आत्मसात हो जाएगे। वैज्ञानिकों ने यह भी पता लगाया है कि दक्षिणी ध्रुव में विद्यमान हिम की तह अनुमान से अधिक मोटी है। और अब यह

अनुमान लगाया जा रहा है कि समस्त बर्फ के पिघलने के फलस्वरूप समुद्र की सतह ३०० फुट तक और ऊंची हो सकती है।

१९५७ में अमेरिका के कुछ भूगर्भ-शास्त्रियों ने दक्षिणी ध्रुव भूखण्ड की स्थल यात्रा की थी। इस यात्रा में उन्होंने अनेक स्थानों पर बर्फ की आवाज को परखा। प्रारम्भ में उन्हें आशा के अनुसार २ हजार फुट मोटी बर्फ की तह मिली, लेकिन अन्वेषी दल जैसे-जैसे अधिक अन्दर प्रवेश करता गया, बर्फ की तह अधिकाधिक मोटी मिलती गई। ब्रायड नामक एक स्थल पर बर्फ की तह ९८५० फुट से भी अधिक मोटी प्रतीत हुई। इसी स्थल पर जब वैज्ञानिकों ने एक दूसरे स्थान पर बर्फ की मोटाई नापने का प्रयत्न किया, तो परिणाम देख कर वे चकित रह गए। यहाँ पर उन्हें बर्फ की तह १४ हजार फुट से भी अधिक मोटी प्रतीत हुई।

यह असम्भव प्रतीत होता है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव की समस्त बर्फ पिघल जाय। हाँ, यह सम्भव है कि उत्तर ध्रुव सागर में तैरने वाले विशाल हिम-खण्ड पिघल जाएं। यदि ये हिम-खण्ड पिघलते हैं तो समुद्र की सतह पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वास्तविकता यह है कि जल में तैरने वाले विशाल हिमखण्डों का बहुत बड़ा भाग जल के अन्दर भी रहता है। अतएव पिघलने पर इस रिक्त स्थान की पूर्ति हो जाती है।

लेकिन उत्तरी ध्रुव सागर क्षेत्र की हिमराशि पिघलने के अन्य विनाशकारी प्रभाव भी पड़ सकते हैं। न्यूयार्क नगर के दो वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि उत्तरी ध्रुव सागर की हिमराशि पिघलने के कारण पिछले १० लाख वर्षों में पृथ्वी को चार हिम युगों से इसी लिए गुजरना पड़ा। उनका कहना है कि यदि उत्तरी ध्रुव सागर बर्फ से मुक्त हो जाता है तो ध्रुव-क्षेत्रों से बर्फ के ऐसे विनाशकारी अन्धड़ उठने लगेंगे, जिनकी मनुष्य कल्पना नहीं कर सकता। तीसरे हिम-युग के अन्त बाद से पृथ्वी पर बर्फ के ऐसे विकट अन्धड़ नहीं चले हैं। बर्फ के इन भयंकर तूफानों के कारण पृथ्वी एक नए हिम-युग में प्रवेश कर सकती है। ये वैज्ञानिक हैं समुद्र शास्त्र विशेषज्ञ तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय की लेमौण्ट ज्योतिषशाला के निदेशक डा० मौरिस इविंग तथा बुकलिन कालेज में भूगर्भशास्त्र के प्रोफेसर डा० विलियम डोन। हिम-युग सम्बन्धी उनकी इन सैद्धान्तिक मान्यताओं ने वैज्ञानिक जगत में एक हलचल मचा दी है।

अतलान्तक महासागर के तल से जन्तुओं के जो अवशेष प्राप्त हुए, उनका अध्ययन करने पर डा० इविंग और डा० डोन को यह पता चला कि हजारों वर्ष तक ठण्डा रहने के बाद अतलान्तक महासागर लगभग ११ हजार वर्ष पूर्व धीरे-धीरे गर्म होने लगा। ऐसा क्यों हुआ ? इस प्रकार का उत्तर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उक्त वैज्ञानिक इस निश्चय पर पहुँचे कि किसी समय उत्तरी ध्रुव सागर बर्फ से मुक्त होगा। उसका ठण्डा जल विशाल परिमाण में अतलान्तक महासागर में प्रवेश करने लगा। इस ठण्डे जल के कारण अतलान्तक महाहागर भी धीरे-धीरे ठण्डा होता गया। इसके बाद जब उत्तरी ध्रुव सागर पुनः बर्फ से ढक गया, तो अतलान्तक महासागर की ओर उसके जल की निकासी बन्द हो गई। परिणाम यह हुआ कि अतलान्तक महासागर पुनः गर्म होने लगा। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के समय उन्हें ऐसे किन्हीं प्रमाणों का ज्ञान नहीं था, जिन से उनकी मान्यता की पुष्टि हो सकती। लेकिन कुछ माह बाद ही लेमौण्ट परीक्षणशाला को उत्तरी ध्रुव सागर तल में पाई जाने वाली वस्तुओं के कुछ नमूने प्राप्त हुए। इनकी जाँच करने पर पता चला कि किसी समय उत्तरी ध्रुव सागर में अत्यधिक सूक्ष्म जलचरों का अस्तित्व था, लेकिन ११

हजार वर्ष पूर्व सहसा ही उनका लोप हो गया। यह समय रेडियो-सक्रिय आइसोटोप की सहायता निर्धारित किया गया।

इसके कुछ समय बाद इन दोनों वैज्ञानिकों को यह भी विदित हुआ कि प्राणिशास्त्र विशेषज्ञों को यह प्रमाण मिले हैं कि १० हजार वर्ष पूर्व उत्तरी ध्रुव सागर के तटों पर मनुष्य बसते थे। मनुष्य बर्फ से जमे हुए क्षेत्रों में रहने नहीं जाता। इससे केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी समय उत्तरी ध्रुव सागर बर्फ से मुक्त था। यदि उत्तरी ध्रुव सागर बर्फ से मुक्त हो जाता है, तो पृथ्वी के मौसम पर इसका बहुत प्रभाव पड़ेगा। उक्त दोनों वैज्ञानिकों ने मौसमों के चार्ट बना कर यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया है कि मौसिम पर इस परिवर्तन के क्या प्रभाव पड़ सकते हैं? इन चार्टों से यह पता चलता है कि जब उत्तरी अतलान्तक महासागर के बहने वाली गर्म धाराएं उत्तरी ध्रुव सागर में प्रवेश करेंगी तो ध्रुव क्षेत्र की वायु में वाष्प की अधिकता बहुत हो जायगी। इसके फलस्वरूपउत्तरी ध्रुव सागर के यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका के तटों पर हिमपात की मात्रा बहुत बढ़ जाएगी और हजारों वर्षों की अवधि में इन दीपों पर वर्फ की तहें बिछ जाएंगी।

हिमराशि के निरन्तर बढ़ते रहने की क्रिया-प्रक्रिया उस समय तक चलती रहेगी, जब तक समुद्र का पानी जमने के फलस्वरूप समुद्र की सतह कई सौ फुट गिर नहीं जाती। चूंकि ग्रीनलैण्ड और नार्वे के बीच समुद्र काफी उथला है, अतएव समुद्र की सतह गिरने पर एक स्थिति ऐसी आएगी जब अतलान्तक सागर का गर्म जल उत्तरी ध्रुव सागर में नहीं पहुँच सकेगा। ऐसी उत्पन्न होने पर उत्तरी ध्रुव सागर पुनः जम जाएगा और ध्रुव-क्षेत्र की वायु में वाष्प की मात्रा घट जाएगी और इस प्रकार ध्रुव-क्षेत्र से चलने वाले बर्फीले तूफान समाप्त हो जाएंगे। फिर भी, उक्त मान्यता से दो प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता। पहला प्रश्न तो यह है कि १० लाख वर्ष पूर्व हिम-युग का सूत्रपात किन कारणों से हुआ?

उक्त वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी की ऊपरी सतह में परिवर्तन होने के कारण ऐसा हुआ। उनका अनुमान है कि इस परिवर्तन के पूर्व उत्तरी ध्रुव क्षेत्र खुले उत्तरी प्रशान्त महासागर में तथा दक्षिणी ध्रुव दक्षिणी अतलान्तक महासागर में स्थित परिवर्तन के फलस्वरूप सबसे ठण्डा क्षेत्र चारों ओर भूखण्डों ने घिरे उत्तरी ध्रुव सागर में जा पहुँचा। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव भी विशाल चट्टानी भूखण्ड में जा स्थित हुआ कि यहाँ पर बर्फ एकत्र होती गई और उसकी निकासी का कोई मार्ग नहीं रहा। वैज्ञानिकों का कहना है कि ध्रुवों में उक्त परिवर्तन होने के काफी प्रमाण प्राप्त किए जा सकते हैं।

एक प्रश्न यह है कि उत्तरी ध्रुव सागर की बर्फ कब पिघलेगी और हिम-युग का सूत्रपात करने वाले बर्फीले अन्धड़ कब चलेंगे?

उक्त वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि मौसम इसी प्रकार रहा तो कई सौ वर्षो बाद उत्तरी ध्रुव क्षेत्र की बर्फ पिघलनी प्रारम्भ हो जायगी। लेकिन कुछ इंजिनियरों का कथन है कि ग्रीनलैण्ड से नार्वे तक एक विशाल बांध का निर्माण कर पांचवें हिम-युग के प्रारम्भ को टाला जा सकता है।

'सांइस डाइजेस्ट' में प्रकाशित एक लेख के आधार पर

———

विज्ञान वार्ता

प्लास्टिक-धातु मिश्रण की नवीन सम्भावनाएँ:

प्लास्टिक से अब ऐसी चीजों को जोड़ा जा सकता है, जिन्हें पहले जोड़ना कठिन था। प्लास्टिक के इस नये उपयोग के फलस्वरूप प्लास्टिक और धातुओं के सर्वथा नवीन मिश्रण तैयार सम्भव करना हो गया है। इन प्लास्टिक-धातु मिश्रणों को उद्योग में विविध प्रकार से प्रयुक्त करने की सम्भावना उत्पन्न हो गई है।

अमेरिका की प्लास्टिक उद्योग परिषद् की एक हाल की बैठक में इन्दकेप (लोस ऐंजेल्स) की फ्यूरेन प्लास्टिक कम्पनी के श्री जौन डेलमाप्ट ने बताया कि शीशे, तांबे, जस्ते, ग्रेफाइट और टिन जैसी धातुओं को अब प्लास्टिक से तैयार एक प्रकार के द्रव राल जैसे पदार्थ के साँचे में विभिन्न अनुपातों में संयुक्त किया जा सकता है। इसके पूर्व सामान्य धारणा यह थी कि इन धातुओं को इस प्रकार के अनुपातों में संयुक्त कर पाना धातु-शोधन विज्ञान के अन्तर्गत असम्भव है।

प्लास्टिक की अधिक टिकाऊ और मजबूत वस्तुएँ तैयार करने के उद्देश्य से धातुओं को इस प्रकार संयुक्त करने में ऐसी धातुओं को चुना जा सकता है, जो उत्पादित वस्तु में वांच्छनीय गुणों का संचार कर सकें। उदाहरण के लिये, इस प्रकार तैयार वस्तु में इच्छानुसार घनत्व या चिकनाहट उत्पन्न की जा सकती है।

कृत्रिम खाद्य-पदार्थों की आवश्यकता:

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने अभी हाल में यह भविष्य वाणी की है कि विश्व की तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में मनुष्य को कोयले और चूने जैसी वस्तुओं से अपने कृत्रिम खाद्य-सामग्रियाँ तैयार करना आवश्यक होगा।

यह भविष्यवाणी वाशिंगटन की विज्ञान अकादमी के डा० ए० टी० मैकफर्सन ने की है जिन्होंने कृत्रिम रबर के विकास में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया है। उन्होंने कहा कि मानव जाति के सामने एक सबसे खतरा यह है कि तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या खाद्य-पदार्थों की पूर्ति के समक्ष-बहुत आगे बढ़ जायगी और सामाजिक तत्व इन दोनों के बीच पुनः सन्तुलन स्थापित करने में पीछे रह जाएँगे। लेकिन आधुनिक रसायन शास्त्र में ऐसी विधियाँ विकसित की गयी हैं जिनके द्वारा कोयला, चूना, पेट्रोलियम, वायुमण्डल के नाइट्रोजन और पानी जैसी प्रचुरता से उपलब्ध कच्ची सामग्रियों से खाद्य-तत्वों के निर्माण करना सम्भव है। कृत्रिम तरीकों से खाद्य-पदार्थों का निर्माण करने में जिन प्रारम्भिक रासायनिक सिद्धान्तों का प्रयोग करना होता है, वे पहले से ही ज्ञात हैं। इन

सिद्धान्तों पर चल कर और उपयुक्त साधनों का उपयोग करके ही भविष्य में जनसंख्या-वृद्धि की गम्भीर समस्या को हल किया जा सकता है।

नई अमेरिका वैधशाला का निर्माण:

स्टेमफोर्ड म्यूजियम ऐण्ड नेचर सेण्टर में एक ऐसी वेधशाला का निर्माण किया जाएगा, जिसमें सार्वजनिक प्रयोग के लिए एक २० इंच का दूरवीक्षण यन्त्र उपलब्ध होगा। संग्रहालय के अध्यक्ष जेम्स ए० वीर ने बताया कि इस वेधशाला में अन्तरिक्ष सम्बन्धी अध्ययन और भू-उपग्रहों के स्थान का पता लगाने के लिए सुविधाओं की व्यवस्था की जाएगी। यह वेधशाला एक ३-मंजिले भवन में स्थापित की जाएगी, जिसका एक गैर-सरकारी व्यक्ति द्वारा दिये गये ५ हजार डालर के दान से निर्माण किया जा रहा है। १ लाख डालर के मूल्य का यह दूरवीक्षण यन्त्र वैज्ञानिक यन्त्र तैयार करने वाली स्टेमफोर्ड कम्पनी द्वारा प्रदान किया जा रहा है।

टूटी हड्डियों को जोड़ने के लिए प्लास्टिक सरेस:

वाशिंगटन अमेरिकी सैन्य विभाग की ओर से प्रयोग के रूप में प्लास्टिक सरेस का उपयोग करके टूटी हड्डियों को जोड़ने और बीमार को दो दिनों में ही चंगा कर देने के उद्देश्य से एक परीक्षण हो रहा है। सैन्य विभाग के अधिकारियों ने बताया कि इस सरेस का नाम 'पोलीयूरेथेन पोलीमर' है। यह एक प्रकार का झाग है, जो कि टूटी हड्डियों को एक में बाँध रखता है और फिर हड्डियाँ धीरे-धीरे अच्छी तरह जुड़ जाती हैं। जब किसी टूटी जगह पर इस झाग को लगाया जाता है तो वह एक कड़ा पदार्थ बन जाता है। धीरे-धीरे स्वाभाविक हड्डियाँ तैयार हो जाती हैं और उस कड़े पदार्थ का स्थान ग्रहण कर लेती हैं।

पृथ्वी के अन्तराल का तापक्रम:

पृथ्वी के कड़े अन्तर्भाग और उसके ऊपर छाये पिघले हुए भाग के तापक्रमों सम्बन्धी नवीन गणनाओं से यह पता चलता है कि पृथ्वी का भीतरी भाग पिछले अनुमानों की अपेक्षा अधिक ठंडा है। यह तापक्रम पृथ्वी के अन्तराल में ६०० से लेकर ४,००० मील के विभिन्न स्तरों पर ४,७०० अंश से लेकर ६,३०० अंश फारेनहाइट (२,६०० अंश से लेकर ३,४०० अंश सेण्टीग्रेड) तक भिन्न-भिन्न हैं। पिछले अनुमान के अनुसार इस पिछले और ठोस अन्तर्भाग का तापक्रम ५,४०० अंश से लेकर ७,२०० अंश फारेनहाइट था। तापक्रम सम्बन्धी नये अनुमानों की सूचना जनरल इलेक्ट्रिक रिसर्च लेबोरेटरी के डा० हर्बर्ट एम० स्ट्रांग ने अमेरिकी भौतिक परिषद् को दी है।

कच्चे मकानों के लिए मिट्टी का मजबूत पलस्तर:

राष्ट्रीय इमारत संगठन के प्रयोगों के फलस्वरूप देहातों के मकानों के लिए मिट्टी का ऐसा मजबूत पलस्तर तैयार किया गया, जिस पर पानी का कोई असर नहीं पड़ता। इस समय गाँवों के घरों में मिट्टी का जो पलस्तर लगाया जाता है, वह सस्ता तो पड़ता है, लेकिन टिकाऊ नहीं होता। इसे हर साल बदलना पड़ता है। अतः इमारती अनुसंधान संस्थाओं ने मिट्टी के ऐसे पलस्तर की

खोज शुरू की, जो टिकाऊ हो। उस पर पानी का असर न हो। साथ ही अधिक मंहगा भी न हो।

अनुसंधान संस्थाओं से ऐसे पलस्तर के २२ विवरण आंये, जिनकी जांच सड़क अनुसन्धान संस्था में की गयी और विशेषज्ञों ने जांच के नतीजों पर विचार किया। विशेषज्ञों ने मिट्टी, भूसा, जनता इमलशन और गोबर मिले हुए पलस्तर को सबसे अच्छा ठहराया। इसके लिए मिट्टी न तो ज्यादा चिकनी और न ज्यादा रेतीली होनी चाहिए। यह पलस्तर तैयार करने के लिए १ घनफुट मिट्टी में २ सेर के हिसाब से भूसा मिलाया जाता है। फिर इसमें काफी पानी मिला कर पावों और फावड़े से एक सप्ताह तक रोज मिलाया जाता है, जिससे भूसा गल जाए। पलस्तर करने से दो घन्टे पहले, इसमें ५ प्रतिशत जनता इमलशन मिलाया जाता है। दीवार पर पलस्तर करने के बाद उस पर कई बार पानी छिड़का जाता हैं। जब पलस्तर कुछ सूख जाता है, तो दरारों को भरने के लिए उस पर गोबर लीपा जाता है। इसके ऊपर फिर पलस्तर की आखिरी तह दी जाती है।

वैज्ञानिक विधि से साफ की हुई हल्दीः

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य अनुसंधान ने हल्दी को साफ करने का वैज्ञानिक तरीका निकाला है। अभी तक हल्दी कोसाफ करने के लिए हल्दी की गाठों को गोबर के घोल में डालकर उबाला जाता है। जब गाठें कुछ मुलायम पड़ जाती है तो इन्हें सुखा कर इन पर पालिश की जाती है। यह तरीका कुछ गंदा और स्वास्थय के लिए भी अच्छा नहीं है। इसके बाद हल्दी पर पीला रंग चढ़ाया जाता है। पिछले ३०-४० वर्ष से इसके लिए रेंडी के बीज की पिट्ठी, फिटकरी, पीला रंग, सीसे का क्रोमेट और पिसी हुई हल्दी काम में लाई जाती है। इस प्रकार रंगी हुई हल्दी की गांठों में कुछ सीसा रह जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। मैसूर अनुसंधानशाला की विधि में हल्दी की गांठों को चूने के पानी, सोडियम कारबोनेट या सोडियम बाइ-कारबोनेट के घोल में उबाला जाता है और पीला रंगने के लिए १५० पौंड गाठों को २० ग्राम सोडियम बाइसल्फाइट और २० ग्राम सांद्र नमक के तेजाब के घोल में डाला जाता है।

शाकाहारियों के लिए जूजूबः

देहरादून बन अनुसंधानशाला ने शाकाहारियों के लिए चूसने की मीठी गोली—जूजूब बनाने का नया तरीका निकाला है। अब तक जूजूब जिलेटिन से ही बनाई जाती थी। अतः शाकाहारी इसे नहीं खाते। नये तरीके से जूजूब इमली के बीज की जेली से बनाये जाएंगे। इससे लागत भी आधी हो जाएगी। इमली के बीज की जेली जमावट, जाम, जेली आदि बनाने में भी काम आती है। जूजूब बनाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि जेली बहुत साफ या पारदर्शक हो। अत: इस काम के लिए बिना साफ किया हुआ इमली के बीज का रस काम में आ सकता है। नये तरीके से जूजूब बनाने में इमली के बीज को पीस कर पानी में चीनी और रंग मिला कर उबाला जाता है। इस घोल को गाढ़ा हो जाने पर ठंडी जगह में जमने के लिए रख देते हैं। फिर इस जेली के छोटे छोटे टुकड़े काट कर धूप या चूल्हे पर सुखाते हैं। बाद में इन टुकड़ों पर चीनी और मकई के आटे की तह चढ़ाई जाती है।

मधुमेह के रोगियों के लिए:

मैसूर की केन्द्रीय खाद्य अनुसंधानशाला ने एक नई खोज की है, जो मधुमेह के रोगियों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगी। रक्त में शक्कर की मात्रा पर प्रोटीन युक्त भोजन का क्या प्रभाव होता है, इस सम्बन्ध में यहाँ खोज की गई थी। अनुसंधानशाला के प्रयोगों से पता चला है कि कैसीन या दूध की प्रोटीन तथा वाल एक प्रकार की सेम (डोली चोस लैब लैब) और काले चने की प्रोटीन रक्त में शक्कर की मात्रा कम करने में बहुत सहायक होती है। मधुमेह के रोगियों को मक्खन निकला दूध और काला चना मिश्रित चावल का इडली दी गई, जिससे उनको लाभ हुआ। वाल की कोमल फलियां मधुमेह में अधिक लाभदायक होती हैं। मधुमेह के एक रोगी को जिसे इन्सुलीन के एक दिन में २० इंजेक्शन लगाए जाते या, तीन महीने तक भोजन में ४ औंस से ६ औंस तक की कोमल फलियां, दी गई। इस बीच उसे इंजेक्शन भी नहीं लगाए गए पर रोगी के मूत्र में शक्कर नहीं आई। साथ ही उसके रक्त में शक्कर की मात्रा भी अधिक नहीं पाई गई।

सूर्य छाया का नक्शा:

इमारतों की छाया के अध्ययन का सरल तरीका निकाला गया है। इसके लिए एक मेज काम में लाई जाती है। इस मेज को जितना चाहें झुकाया जा सकता है। मेज एक के कोने पर एक नक्शा लगा होता है और इस नक्शे के बीचोबीच एक सुई लगी होता है। मकान का नमूना मेज के बीच में रखा जाता है और इसे इस तरह झुकाया जाता है कि सुई का सिरा नक्शे के उस भाग की सीध में आ जा सके, जहाँ पर दिन और प्रयोग का समय अंकित है। मकान के नमूने के चारों ओर जो छाया बनती है, उससे मकान की छाया का ज्ञान हो जाता है। इससे वास्तुकारों को मकान की खिड़कियों के छज्जे बनाने में सहायता मिलती है।

इस काम के लिए अलग-अलग इलाकों के लिए अलग-अलग नक्शे काम में लाए जाते हैं। ८० से ३५०° अक्षांश के नक्शे तैयार किए जा चुके हैं।

मेज पर झुकने वाला एक और तख्ता लगाकर एक ही नक्शे से काम चलाया जा सकता है। इस तख्ते को उस स्थान के अक्षांश के अनुसार झुकाव दिया जाता है। शेष क्रिया पहले तरीके की तरह ही होती हैं।

नमक बनाने के कड़ाह की पपड़ी से सोडियम सल्फेट:

भावनगर की केन्द्रीय नमक अनुसंधानशाला ने सांभर में नमक के रवे बनाने के कड़ाहों की तली में जमी हुई पपड़ी से सोडियम सल्फेट प्राप्त करने की तीन विधियाँ निकाली हैं। अनुमान है कि इन कड़ाहों मे १ हजार टन पपड़ी हर साल मिल सकती है।

पहली विधि में पपड़ी से सोडियम सल्फेट निकालने में रेफ्रीजिरेटर जैसे यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। दूसरी में केवल पपड़ी को खुरचने वाले यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। इस विधि की यह अच्छाई है कि इससे सूखा सोडियम सल्फेट मिलता है। इस विधि से सोडियम सल्फेट निकालने के लिए नमक के रवे निकालने के बाद बचा हुआ पानी सुखाकर काम में लायें तो अधिक सोडियम सल्फेट प्राप्त होता है।

तीसरी विधि बहुत सरल है। इसमें घोल तैयार करने और सोडियम सल्फेट अलग करने में विशेष मेहनत नहीं पड़ती। इसके घोल से डेकाहाइड्रेट मिलता है, जिसे धूप में सुखाकर सोडियम सल्फेट प्राप्त किया जा सकता है।

हवाई मार्ग से धरातल का सर्वेक्षण करने वाला यन्त्र :

अमेरिका की तीन कम्पनियों ने घोषणा की है कि उन्होंने एक ऐसा यन्त्र विकसित किया है, जिसकी सहायता से हवाई मार्ग से धरातल का अधिक सही सर्वेक्षण करना सम्भव है। इस यन्त्र द्वारा संसार के किसी भी स्थान पर हवा में गुरुत्वाकर्षण-शक्ति को इतना सही-सही नापना सम्भव है, कि उसका उपयोग पृथ्वी के धरातल के अधिकांश भाग के क्षेत्रफल, उस पर किसी भी विन्दु के सही स्थान, पृथ्वी के आकार और स्वरूप अथवा गुरुत्वाकर्षण शक्ति की भिन्नता का निर्धारण करने में या कुछ भू-भौतिकी उद्देश्यों की दृष्टि से किया जा सकेगा। यह भी आशा है कि इस यन्त्र से भूगर्भशास्त्रियों को भी संसार के उन क्षेत्रों में खनिज तेल के स्रोतों का पता लगाने में सहायता मिलेगी, जिनमें अभी तक तेल की शोध नहीं हुई है।

क्षितिज के पार तक पहुँचने वाले राडार यन्त्र का आविष्कार:

अमेरिकी नौ सेना के वैज्ञानिक विलियम थेलर ने एक नये प्रकार के राडार यन्त्र का आविष्कार किया है, जो क्षितिज के उस पार तक पहुँच सकता है और जिस की सहायता से हजारों मील दूर छोड़े जाने वाले प्रक्षेपणास्त्रों और कुछ आणविक विस्फोटों का पता लगाना सम्भव हो सकता है। श्री थेलर के "टैपी" नामक इस नये आविष्कार के सम्बन्ध में अभी भी अनुसन्धान जारी है और इसे पूर्णतया विकसित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह एक नये प्रकार के राडार पर आधारित है। "टैपी" अपेक्षाकृत सरल और कम खर्चीले उपकरणों द्वारा संचालित होता है। यह पुराने प्रकार के रेडियो-सिद्धान्त पर संचालित होने वाले स्टैण्डर्ड राडार की सीधी रेखा सम्बन्धी दोषों से मुक्त है।

"टैपी" की विशेषता यह है कि यह पृथ्वी और वायुमण्डल की विद्युदणुयुक्त पट्टी के बीच टेढ़े-मेढ़े मार्गों से संकेतों को प्रक्षिप्त करता हुआ क्षितिज को पार कर लेता है। प्रक्षेपण के प्रत्येक विन्दु से संकेत का प्रतिबिम्ब पीछे की ओर प्रारम्भिक विन्दु पर पड़ता है। इस क्रिया को पीछे की ओर प्रकाशपुंज का प्रक्षेपण कहते हैं।

लघु आकार की आणविक भट्टी का निर्माण.

अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन प्रेसराइज्ड वाटर-प्रणाली वाली आणविक भट्टी के एक कारखाने के निर्माण का आयोजन कर रहा है। कमीशन को आशा है कि इस से "एक छोटे पैमाने के कारखाने द्वारा कम लागत पर बिजली उत्पन्न करने की दिशा में महत्वपूर्ण योग" प्राप्त होगा। प्रत्याशित कारखाने में प्रेसराइज्ड वाटर-प्रणाली वाली एक आणविक भट्टी का उपयोग करके ६०,००० क्लिोवाट थर्मल शक्ति और १६,५०० किलोवाट विद्युत शक्ति उत्पन्न की जायेगी। अभी तक इतने छोटे आकार का कोई ऐसा अणुशक्ति सम्बन्धी कारखाना स्थापित नहीं हुआ है, जिसमें

प्रेसराइज्ड-वाटर-प्रणाली वाली आणविक भट्टी का उपयोग होता हो। आशा है कि इस कारखाने का निर्माण मई १९६० में प्रारम्भ और १९६२ में पूरा हो जायेगा।

सीसे के घोल से नवीन धातुओं के निर्माण की सम्भावनाः

वाट्टेल मेमोरियल इन्स्टिट्यूट ने सूचित किया है कि पिघले सीसे में बारीकी से पृथक् की गयी धातुओं को मिश्रित कर के नये प्रकार की धात्विक सामग्रियों का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार तैयार धात्विक सामग्रियों की विशेषता यह होगी कि उन में मिश्रित धातुओं के अतिरिक्त सीसे के भी गुण विद्यमान होंगे। वाट्टेल के अनुसन्धानकर्त्ताओं का कहना है कि इस प्रकार के नवीम धातु-मिश्रणों के लिए कोबाल्ट, ताबा, लोहा, गिबट और टंगस्टेन विशेष रूप से उपयुक्त हैं।

आणविक शक्ति उत्पन्न करने के लिए थोरियम के उपयोग की योजना :

अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन ने अभी हाल में घोषणा की है कि उसने थर्मल शक्ति उत्पन्न करने वाली आणविक भट्टियों को विकसित करने का एक दीर्घकालीन कार्यक्रम तैयार मिया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य थोरियम में अन्तर्निहित शक्ति का उपयोग कर के अन्ततोगत्वा न्यून लागत की आणविक शक्ति उत्पन्न करना है।

पृथ्वी पर प्राकृतिक यूरेनियम की अपेक्षा थोरियम की प्रचुरता अधिक है। थोरियम की विशेषता यह है कि इस पर न्यूट्रोनों से आघात कर के इसे विखण्डनीय यूरेनियम में परिणत किया जा सकता है। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन का कहना है कि पृथ्वी पर थोरियम का ज्ञात भण्डार, जिसका उपयोग व्यावारिक स्तर पर करना सम्भव है, प्राकृतिक यूरेनियम से कम है। सीमित मात्रा में उपलब्ध होने के अतिरिक्त दूसरी कठिनाई यह है कि इसे खोद कर निकालने में यूरेनियम से अधिक लागत पड़ती है।

नयी योजना के अन्तर्गत एक बिजली उत्पादक आणविक भट्टी (थर्मल फीडर रिऐक्टर) विकसित की जायेगी, जिसकी सहायता से अधिक से अधिक २५ वर्ष की "दुगुनी अवधि" तक थोरियम को विखण्डनीय सामग्रियों में परिणत किया जायेगा। "दुगुनी अवधि" समय की वह आवश्यक सीमा है, जिसके भीतर किसी आणविक भट्टी द्वारा इतनी अतिरिक्त मात्रा में विखण्डनीय सामग्री तैयार की जा सकती है, जिस के आधार पर इसी प्रकार की दूसरी आणविक भट्टी चालू की जा सकती है। बिजली उत्पादक आणविक भट्टी जितनी विखण्डनीय सामग्री का उपयोग करती है, उससे अधिक उत्पन्न करती है।

———

भारतीय भूमि सर्वेक्षण की रिपोर्ट:

भारत कृषि प्रधान देश है। चतुर्मुखी उन्नति के लिये आवश्यक है कि देश के अन्नोत्पादन में वृद्धि हो। यह वृद्धि नाना प्रकार से सम्पादित की जा सकती है, यथा—कृषि के योग्य भूमि के क्षेत्र में वृद्धि, उन्नत बीज, यान्त्रिक कृषि, सहकारी कृषि आदि के द्वारा किन्तु इन सभी उपायों के मूल में भूमि ही केन्द्रित है। भूमि की उचित देखरेख, उसका संरक्षण तथा उसका अध्ययन—ये प्रमुख दिशायें हैं जिनपर बल देने की आवश्यकता है। भूमि की उपेक्षा से राष्ट्र की उन्नति कभी भी सम्भव नहीं। भूमि क्षरण भयंकर दानव की भाँति कुछ ही वर्षों में भूमि उर्वरता का विनाश कर देता है। और यह क्षरण इस अदृश्य रूप में होता रहता है कि बिना समुचित प्रबन्ध के उसकी रोक थाम सम्भव नहीं। यह रोकथाम कई प्रकार से सम्भव है। इसके लिये भूमि का इंजीनियरिंग दृष्टि से अध्ययन करना पड़ता है। भूमि के अनेक गुणधर्म ऐसे हैं जो इंजीनियरिंग विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं। इनमें भूमि का सर्वेक्षण, भूमि का मानचित्र निर्माण, भूमि की रन्ध्रता, जल शोषण शक्ति, स्थायित्व तथा अन्य भौतिक गुण आते हैं। ऐसे ही गुणधर्मों के अध्ययन के लिये भूमि संरक्षण विभाग की स्थापना की गई है। यह विभाग उन समस्त प्रयत्नों को एक साथ करने का आयोजन करता है।

भारतीय भूमि सर्वेक्षण योजना और भूमि संरक्षण परिषद को सम्मिलित करके १ मार्च सन् १९५८ को अखिल भारतीय भूमि तथा उपयोगी भूखण्ड सर्वेक्षण की स्थापना की गई थी। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य नदी घाटियों के ७८०० वर्गमील क्षेत्र में भूमि संरक्षण के लिये सर्वेक्षण करना था जिससे दामोदर, कोसी, चम्बल, भाखारा, हीराकुन्ड तथा मुचकुन्द घाटी योजनाओं के अन्तर्गत प्रति वर्ष २५००,००० एकड़ उपयोगी भूमि का सर्वेक्षण करके मानचित्र तैयार किये जा सकें। यही नहीं, आगे चलकर भारत के अन्य भागों में भी भूमि सर्वेक्षण का कार्य भी सम्पन्न किया जा सके। एक वर्ष के अन्तर्गत कार्य में काफ़ी प्रगति हुई है। भारत की विभिन्न भूमि-कोटियों के क्षेत्रों जो कार्य हुआ है उसका विवरण निम्न प्रकार है:—

१—जलोढ भू भाग, नई दिल्ली:—पंजाब प्रान्त के जालंधर जनपद के नवाँशहर तथा बंगा और मध्य प्रदेश के सतना जनपद में सोहावल—इन तीन राष्ट्रीय विकास खण्डों का सर्वेक्षण किया गया। अब पंजाब, राजस्थान, जम्मू तथा काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार के ऐसे भू भागों का सर्वेक्षण किया जायगा।

२—काली मिट्टी का भाग, नागपुर:—नासिक जनपद के ६ तालुकों में १७५८५०५ एकड़, महानदी के १६८००० एकड़, महानदी के अन्य ६६ विभाजकों के ११६२० एकड़, मंद जल विभाजक के १९४०० एकड़, बीजापुर के ३२१८० एकड़, औरंगाबाद के बनों के ५८६८ एकड़, अमरावती के १३००० एकड़, जबलपुर के खमरी जल मार्ग विभाजक के १०५७ एकड़ में भूमि सर्वेक्षण का कार्य हुआ।

३—लाल तथा लेटराइट भूमि क्षेत्र, कलकत्ता:—अप्रैल १६५८ तक इस भाग में प्राय: असंसोल तथा खडगपुर उपविभागों के भूमि सर्वेक्षण एवं मानचित्र निर्माण होते रहे। उसके पश्चात उडीसा में मचकुंड नदी के आवाह क्षेत्र और पश्चिमी बंगाल के कंकसा पुलिस स्टेशन का विस्तृत सर्वेक्षण प्रारम्भ हुआ। शरणार्थियों की बस्ती बनाने योग्य क्षेत्र के लिये भी सर्वेक्षण किया गया। नेफा क्षेत्र में भी सर्वेक्षण प्रारम्भ किया गया है।

४—लाल तथा लेटराइट क्षेत्र २, बंगलोर:—केरल, मद्रास, मैसूर तथा आन्ध्र प्रदेश का विस्तृत सर्वेक्षण हुआ।

यही नहीं मानचित्रकला शाला में भूमि-सर्वेक्षण की योजना पर विचार, भूमि संरक्षण सर्वेक्षण के लिए आधार मानचित्रों के निर्माण, खेतों के मान चित्र निर्माण एवं उनका संकलन, रंगीन मानचित्रों का निर्माण आदि जैसे कार्य भी सम्पादित किये जाते है। इन कार्यों के लिये आवश्यक सामग्री एवं यन्त्रों की व्यवस्था भी है।

इस प्रकार हमें कुछ ही वर्षों में भारतीय मिट्टियों की पूर्ण जानकारी मानचित्रों के रूप में उपलब्ध हो जायगी जिसके द्वारा न केवल उपजाऊ भूमि के ढूंढ निकालने वरन् विभिन्न खण्डों में भवन निर्माण की योजना बनाने में भी सुगमता होगी। तब भारतीय किसान विशिष्ट क्षेत्रों को विशिष्ट फसलों एवं उत्पादनों के लिये काम में ला सकेंगे।

हिन्दी की वैज्ञानिक एवं शिल्पिक पुस्तको पर पुरस्कार की योजना:

हिन्दी में वैज्ञानिक और शिल्पि विषयों की पुस्तकों की रचना को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने डेढ़-डेढ़ हजार रुपये के २०पुरस्कार देना तय किया है। ये पुरस्कार हिन्दी में उच्च शिक्षा की प्रकाशित पुस्तकों पर दिये जाएंगे। पुरस्कार के लिए केवल जीवित लेखक की रचना पर विचार किया जायेगा, चाहे यह उसकी मूल रचना हो अथवा किसी अन्य भाषा से अनुवाद।

इन पुरस्कारों की निम्नलिखित तीन श्रेणियाँ घोषित की गई हैं:—

पहली श्रेणी:—भौतिक-शास्त्र, गणित शास्त्र, रसायन, वनस्पति शास्त्र, प्राणि शास्त्र और भूगर्भ शास्त्र, इन विषयों पर डेढ़-डेढ़ हजार रुपये के छ: पुरस्कार होंगे। ये पुस्तकें सामान्य ज्ञान अथवा उपयुक्त किसी विषय पर होनी चाहिये और भारतीय विश्वविद्यालय की बी० एस० सी० कक्षाओं के स्तर की होनी चाहिये।

दूसरी श्रेणी:—निम्नलिखित विषयों पर लिखी पुस्तकों पर डेढ़-डेढ़ हजार रु० के छ: पुरस्कार दिये जायेंगे—कृषि, चिकित्सा, गृह विज्ञान, सिविल इंजीनियरी, धातुकर्म और स्थापत्यकला।

ये पुस्तकें इंजीनियरी और शिल्पिक संस्थाओं में स्नातक कक्षा के योग्य होनी चाहिये।

तीसरी श्रेणी:—डेढ़-डेढ़ हजार रु० के ८ पुरस्कार राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, मानव शास्त्र, अंतरराष्ट्रीय कानून, चिकित्सा-मनोविशलेषण, प्रायोगिक मनोविज्ञान और शिक्षा पर दिये जावेंगे। इन पर लिखी पुस्तकें ऐसी होनी चाहिये जो भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर अध्ययन के योग्य हों।

पुरस्कार पाने वाले लेखकों को अपनी पुस्तकें छपवाने की छूट होगी और सरकार प्रत्येक पुस्तक की ५०० प्रतियाँ क्रय करेगी यदि ये पुस्तकें भारत सरकार द्वारा निर्धारित ढंग की होंगी। सरकार इन पुस्तकों की छपाई का खर्च वहन नही करेगी।

प्रत्येक विषय की पुस्तकें की परीक्षा करने के लिये ३ योग्य व्यक्तियों की समिति बनायी जायेगी। यह समिति पुस्तकों की प्राप्ति के एक महीने के भीतर अपना मत शिक्षा मंत्रालय को भेज देगी।

लेखकों की पुरस्कार की निधि राष्ट्रीय बचत सर्टिफिकेटों के रूप में दी जायेगी। यदि पुरस्कार पाने वाले नगद पुरस्कार चाहें तो वैसी व्यवस्था भी कर दी जायेगी।

पुरस्कार के निमित्त भेजी गई पुस्तकें उच्चतर होनी चाहिये और इन की हिन्दी ऐसी हो जैसी कि भारतीय संविधान की ३५१ वीं धारा में बतायी गयी है।

प्रतयोंगिता में भाग लेने वाले लेखकों को अपनी पांडुलिपि की पांच प्रतियों के साथ अपनी शिक्षा-दीक्षा, अनुभव आदि का संक्षिप्त ब्योरा भी भेजना होगा। पुस्तकें भेजने की अन्तिम तिथि ३१ मार्च, १९६० है।

हिन्दी से अनुराग रखने वाले वैज्ञानिकों एवं शिल्पियों के लिये यह सुअवसर प्राप्त हुआ है जिससे वे मौलिक कृतियों के सम्पादन या लेखन से राष्ट्रभाषा के भण्डार की वृद्धि कर सकते हैं। भारतीय सरकार द्वारा प्रेरित यह प्रतियोंगिता, हमें विश्वास है, लेखकों में नवीन स्फूर्ति भरेगी। इस अवसर पर उन लेखकों की अनेक कृतियाँ समक्ष आवेंगी जो धनाभाव अथवा प्रकाशन की सुविधाओं के न प्राप्त होंने के कारण लिखी हुई बहुत काल से पड़ी हुई थीं।

रसायन शास्त्र में नोबेल पुरस्कार:

जेकोस्लोवेकिया के सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ यारोस्लाव हैरोस्की को इस वर्ष रसायन शास्त्र पर नोबेल पुरस्कार की घोषणा की गई है। यह पुरस्कार उन्हें उनके द्वारा आविष्कृत विश्लेषण की पोलैरोग्राफीय पद्धति पर दिया गया है।

नोबेल लारियेट हेरोव्स्की का जन्म २० दिसम्बर सन् १८९० ई० में जेकोस्लोवेकिया की राजधानी प्राहा में हुआ था। प्राहा में विश्वविद्यालय शिक्षा समाप्त कर वे लन्दन विश्वविद्यालय गये जहाँ रैमसे, लेविस तथा डानन के साथ कार्य किया। प्राहा से १९१८ में पी० एचडी० तथा लन्दन से १९२१ में डी० यस० सी० की उपाधि मिली। सन् १९२६ में प्राहा विश्वविद्यालय में भौतिक रसायन के अध्यक्ष नियुक्त हुये। इन्होंने पोलैरोग्राफीय पद्धति का आविष्कार सन् १९२२ हीं में कर लिया था किन्तु सन् १९२५ में जापानी वैज्ञानिक शिकाता के सहयोग से प्रथम पोलैरोग्राफ यन्त्र का निर्माण किया। सन् १९५० में ये पोलैरोग्राफीय इन्स्टीटयूट के निर्देशक बनाये गये। उन्हें अनेक विश्वविद्यालयों ने पदवियाँ प्रदत्त करके सम्मानित किया है। इन्होंने यूरोप तथा अमेरिका का भ्रमण करते हुये अनेक व्याख्यान भी दिये हैं।

जेकोस्लोवैकिया जैसे नन्हें किन्तु प्रगतिशील देश के इस महान वैज्ञानिक के सम्मानित होने पर समस्त विश्व को गर्व हो रहा है।

रूसी वैज्ञानिकों द्वारा चन्द्रमा के रहस्यों का उद्घाटन:

४ अक्टूबर को छोड़े गये रूसी राकेट (ल्यूनिक तृतीय) के द्वारा चन्द्रमा के जो फोटोग्राफ लिये गये हैं उनके द्वारा चन्द्रमा के विषय में अब तक अज्ञात बातों का पता चला है। रूसी वैज्ञानिकों ने अपने इस महान प्रयास द्वारा चन्द्रमा के उस भाग का चित्र प्राप्त किया है जो पृथ्वी से परे है और जिसके में विषय किसी को अभी तक कोई जानकारी नहीं थी। विश्व के सभी वैज्ञानिकों ने इस विजय को अनुपम स्वीकार किया है। निस्सन्देह रूस के द्वारा विज्ञान की प्रगति एवं अन्तरिक्ष यात्रा के साधारणीकरण में जो प्रयास हो रहे हैं, वे स्तुत्य हैं। कुछ ही वर्षों में अब चन्द्रमा तक मानव-यात्रा सम्भावित है।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

(त्रैमासिक)

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व के सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थानों पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समाहृत है।

सामान्य सदस्यों के लिये वार्षिक शुल्क ८)। 'विज्ञान' के सभ्य ४) अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक या मासिक होने की सम्भावना है।

प्रधान सम्पादक—डा० सत्य प्रकाश
प्रबन्ध सम्पादक—डा० शिव गोपाल मिश्र

मगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका,
विज्ञान परिषद्,
थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैबन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल मी सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भौतिक रसायन की रूपरेखा—डा० रामचरण मेहरोत्रा	७ रु० ५० नये पैसे

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९०	२०१६ विक्र०; अग्रहायण १८८१ शाकाब्द; दिसम्बर १९५९	संख्या ३

सौगंधिक तैल उद्योग

डा० सदगोपाल, उपनिदेशक,
भारतीय मानक संस्था, नई दिल्ली

उड़नशील सौगंधिक तेलों और सुगंधों का व्यवहार इतना व्यापक है कि मनुष्य के काम में आने वाली सभी प्रकार के पदार्थों में इनका उपयोग किया जाता है। वे साबुन, अंगराग और विविध प्रकार की कृत्रिम गंधों के योगों में प्रयोग किये जाते हैं; कीट, कीटाणु, फफूंद और पीपनाशक द्रव्यों में मिलाए जाते हैं; अगरबत्तियों, धूप और हवन सामग्री में पड़ते हैं; खाने-पीने के तमाखू, सुर्ती, जर्दा, सुंघनी, सिगरेट और बीड़ी में डाले जाते हैं; चाय, काफी, चौकलेट, टाफी, बिस्कुट, मिठाई, शर्बत, सोडावाटर, खाद्य हाइड्रोजनित तैल और मार्गेरीन में मिलाए जाते है; चमड़े तथा लकड़ी के पालिशों, छापे की स्याहियों, औषधियों, जूतों और हैंड-बैगों को सुगंधित बनाते हैं; इनको सिनेमाघरों तथा सभा मंडपों की वायु को दुर्गन्धहीन करने के लिए छिड़कावों में डाला जाता है तथा इनसे चिट्ठी-पत्री के कागजों और निमंत्रण पत्र इत्यादि को सुगंधित बनाया जाता है।

भारत में विविध सुगंधधारी पदार्थ बहुत मात्रा में पाए जाते हैं। इतिहास के पन्नों को पलटने से पता चलता है कि अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतीय चन्दन की लकड़ी, सुगंधित और गरम मसालों तथा सौगंधिक तेलों से लदे हुए कारवां नियमित रूप से मिश्र, यूनान और रोम जाते हुए ईरान, अरब और एशिया माइनर के रेगिस्तानों और पहाड़ों पर से निकला करते थे।

सौगंधिक तैल-उद्योग की जन्मभूमि के रूप में भारत का नाम सारे सभ्य संसार में प्रसिद्ध रहा। कन्नौज, कुंभ कोणम, बंगलूर, पंढरपुर, पूना और पटना इस उद्योग के बड़े केन्द्र थे। मुगल काल में महलों और दरबारों में सौगंधिक तेलों और इत्रों के अत्यधिक उपयोग से इस उद्योग को निरंतर प्रोत्साहन मिला। बढ़िया इत्र निकालने के लिए जौनपुर, गाजीपुर, लखनऊ, दिल्ली, अलीगढ़ और जयपुर जैसे नये केन्द्र प्रसिद्ध हो गए।

योरूपीय उद्योग का विकास

उन्नीसवीं शती के अंतिम दिनों में सौगंधिक तैल-उद्योग ने योरूप में बहुत तेजी से उन्नति आरंभ की। इसका मुख्य कारण विज्ञान का विकास था। प्राकृतिक स्रोतों से सौगंधिक तेलों को निकालने और औद्योगिक तेलों को व्यवहार में लाने की जो वैज्ञानिक विधियाँ ज्ञात हुई, उनको योरूप के इस उद्योग ने व्यापक रूप से अपनाया। नैसर्गिक तेल और संश्लिष्ट सुगन्धित रसायनिक पदार्थ अधिकाधिक मात्रा में तैयार किए जाने लगे।

भारतीय उद्योग की अवनति

इधर भारत में उन दिनों सौगंधिक तैल-उद्योग की अवनति हो रही थी। एक ओर वैज्ञानिक विकास और अनुभव का अभाव था, दूसरी ओर मिलावट करने की आत्मघातक प्रवृत्ति। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय इत्रों और सुगंधों की ओर से लोगों का मन फिर गया। सौगंधिक तैलों के जिस उद्योग को देश में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और जिसे सर्वसाधारण के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का स्वरूप माना जाता था, वह धीरे-धीरे इतना गिर गया कि केवल धनी-मानी लोगों के मनोरंजक और भोग-विलास का साधन-मात्र रह गया और हीन दृष्टि से देखा जाने लगा। बीसवीं शती में एक समय ऐसा आया कि भारतीय इत्रों में विदेशीय संश्लिष्ट पदार्थों को मिला कर बेचना मात्र इस उद्योग का रहा-सहा रूप बन गया। भारत का सुगंधकारी कच्चा माल योरूप और अमेरिका में अधिकाधिक जाने लगा और देश के निर्यात-व्यापार को गहरा धक्का लगा।

भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान

भारत की सुगंधधारी विशाल प्राकृतिक सम्पदा की ओर विशेष रूप से ध्याना आकर्षित करने का काफी श्रेय देहरादून की वन-अनुसंधान-संस्था को प्राप्त है। इस संस्थ में १६०६ से १६५६ तक के ५० वर्षों में देश की सौगंधिक वनस्पतियों के सम्बन्ध में गहरी वैज्ञानिक खोजबीन की जाती रही। इन अनुसंधानों के परिणामस्वरूप देश में चीड़ की राल के आसवन का उद्योग का प्रारम्भ हुआ। जिससे बैरोजा और तारपीन के तेल प्राप्त होते हैं। चन्दन की लकड़ी, रोशा घास, लेमन घास, मौंफिया घास, खस और युकलिप्टस की पत्तियों इत्यादि के उड़नशील तेल भी आसवित किए जाने लगे। जिरेनियम नामक सुगंधित पत्ती वाला पौदा देश में कहीं नहीं पाया जाता था। उसे फ्रांस से मंगा कर दक्षिण

भारत के यरकोड नामक स्थान पर सफलता पूर्वक उगाया जाकर उसकी पत्तियों में से सौगंधिक तेल निकाला जाने लगा। इस प्रकार के विविध उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि भारत के आधुनिक सौगंधिक तैल-उद्योग के विकास की सर्वप्रथम नींव देहरादून की वन-अनुसंधान-संस्था और बंगलूर के इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइन्स के वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा रखी गयी।

प्रथम अखिल भारतीय गंधी-सम्मेलन

१६३१ ई० में लेखक के प्रयत्नों से वाराणसी में सर्वप्रथम भारतीय गंधी-सम्मेलन का आयोजन किया गया। उत्तर प्रदेश के सम्मानित नागरिक राजा मोतीचन्द इसके अध्यक्ष थे। इस सम्मेलन में वैज्ञानिकों तथा सुगंध व्यवसाय को आधुनिक रीतियों के अनुसार विकसित करने में रुचि रखने वाले उद्योग-पतियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया था। सम्मेलन में चर्चा के फलस्वरूप तीन मुख्य समस्याएं सामने आई : (१) उड़नशील तेल निकालने की तत्कालीन विधियों में सुधार किया जावें, (२) उड़नशील तेलों और सौगंधिक द्रव्यों के मानक निर्धारित किए जावें और उन्हें प्रामाणिकता का चिन्ह लगाकर बेचा जावे, तथा (३) संश्लिष्ट और यौगिक सुगंधों के निर्माण में आवश्यक सौगन्धिक रसायनिक पदार्थों के उद्योग का विकास किया जावे। इस सम्मेलन के कारण देश में इस उद्योग के विकास के प्रति काफी जागृति हुई।

विकास के प्रयत्न

भारतीय सौगंधिक तैल-उद्योग के इतिहास को देखने से पता चलता है कि समय-समय पर इस उद्योग को वैज्ञानिक पद्धति से विकसित करने के प्रयत्न किए जाते रहे हैं। लगभग ३५ वर्ष पूर्व रोशा घास के तेल को आसवित करने के लिए तत्कालीन मध्यप्रदेश और बम्बई प्रान्तों में दो बड़ी कम्पनियां बनाई गई थीं। १६२३ में ग्वालियर राज्य ने सिंधिया कैमिकल लैबोरेटरीज बनाई थी और उन्हीं दिनों कानपुर में एक इंडियन एसेन्शल आयल कम्पनी चालू की गई थी। इन सभी प्रयत्नों को कुछ आगे-पीछे, शिल्पिक और संगठन सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण बन्द हो जाना पड़ा। इनकी असफलता से देश के उद्योग ने अनुभव प्राप्त किया और निकट भविष्य में ऐसे प्रयत्न सामने आए जिन्होंने इस भारतीय उद्योग के विकास पर गहरा प्रभाव डाला।

प्रथम विश्व युद्ध के दिनों मैसूर में 'एसनफ्लोर प्रौडक्ट्स लिमिटेड' के नाम से स्वर्गीय श्री के० बी० मावलंकर ने एक कम्पनी बनाई थी। यह कम्पनी अजवायन, दारचीनी की छाल और पत्तियों, खस, जायफल, दवना, पानड़ी और धनिया इत्यादि के सौगंधिक तेल तैयार करती थी। इसकी एक शाखा लन्दन में भी थी। इसके माल ने इंगलैन्ड और अमेरिका में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह कम्पनी ६-७ वर्षों से अधिक नहीं चल पाई। भारत का यह सर्वप्रथम कारखाना था जिसने विविध प्रकार के उड़नशील तेल बनाने के लिए आधुनिक भाप स्रवन के और घोलक-निस्सारण के यंत्र लगाए थे।

इस क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण प्रयत्न वन अनुसंधान-संस्था के भूतपूर्व रसायन शास्त्री श्री पूरनसिंह ने किया। उन्होंने तत्कालीन पंजाब सरकार से २३१ एकड़ भूमि जड़ाँवाला (अब पाकिस्तान में) प्राप्त की और वहाँ रोशा घास की शुद्ध 'मोतिया' किस्म के बोने तथा उससे तेल आसवित करने का काम आरम्भ किया। पूरनसिंह द्वारा तैयार किया हुआ रोशा का तेल इतना उत्तम था कि अपनी सुगंध और विशुद्ध उत्तमता के कारण संसार भर में प्रसिद्ध हो गया था। उसमें 'जिरेनियोल' लगभग ९३ प्रतिशत होता था। इस तेल का वार्षिक उत्पादन लगभग २५०० किलो तक पहुँच गया था। अन्त में देश के विभाजन के कारण उसे छोड़कर स्व० पूरनसिंह के सुपुत्र रामेन्द्र सिंह और उनके अनन्य मित्र स्व० डा० खुदादाद भारत चले आए। रामेन्द्र सिंह ने देहरादून के निकट बीबीवाला के जंगल में धरती प्राप्त करके रोशा घास की खेती और उससे उत्तम तेल तैयार करने के काम को प्रारम्भ कर दिया है।

पन्द्रह वर्ष से कुछ अधिक पहले 'सराया शुगर वर्क्स' सरदारनगर, उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में रोशा घास की बढ़िया 'मोतिया' किस्म और जावा से प्राप्त उत्तम सिट्रोनेला घास की खेती आरम्भ की गई थी। इस स्थान पर तैयार किए गए दोनों तेल बहुत बढ़िया होते थे और विदेशों के खुले बाजारों में अच्छे दाम पर बिकते थे। पिछले कुछ वर्षों से गन्ने की खेती बढ़ाते-बढ़ाते इन दोनों मूल्यवान घासों की खेती इस क्षेत्र में से समाप्त कर दी गई है।

भारतीय सौगन्धित तेल उद्योग के उतार-चढ़ाव वाले इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अवसर लगभग २५ वर्ष पूर्व उपस्थित हुआ जब कि भारत सरकार द्वारा लेखक के 'एरोमैटिक रिसोर्सेज आफ इंडिया' नामक अनुसंधान विषयक निबन्ध को पुरस्कृत किया गया। देश में इस विषय का अच्छा स्वागत हुआ और शीघ्र ही 'हिन्दुस्तान एरोमैटिक्स कम्पनी' के नाम से एक वैज्ञानिक ढंग का कारखाना वाराणसी, नैनी (प्रयाग) और बम्बई में खोला गया। इस कम्पनी ने न केवल विविध प्रकार के सौगंधिक तेल ही बनाए, अपितु कंक्रीट और एब्सोल्यूट, संश्लिष्ट सुगंधित रसायनिक पदार्थ, रेजिनायड, इत्र, पुष्पोपासित पोमेड और तेल, फुलेल, सौगंधिक जल तथा फूलों के सुगंध और निस्सार इत्यादि भी तैयार किए और भारत से बाहर विदेशों में भी बेचे। गत महायुद्ध में इस कम्पनी द्वारा देश के विविध उद्योग व्यवसायों की इन पदार्थों से बहुत सहायता पहुँचाई जा सकी। इसकी बनाई कुछ वस्तुओं की उत्तमता की धाक तो संसार भर में जम गई थी।

लेखक के उपरिलिखित प्रयास से उत्साहित होकर कुछ प्रगतिशील और साहसी निजी उद्योगपतियों ने देश के विविध भागों में मूल्यवान उड़नशील तेल देने वाले पौदों की बड़े पैमाने पर खेती प्रारम्भ कर दी। इसके परिमाण-स्वरूप उत्तर प्रदेश में गुलाब, चमेली और मोतिया; यरकोड (दक्षिण) में चमेली और पैलारगोनियम; उत्तरन (बम्बई प्रदेश) में लाइम और नींबू तथा बंगलूर में दवना और पानड़ी इत्यादि के बगीचे स्थापित हो गए हैं। कई कठिनाइयों के होते हुए भी इन सत्साहसी उद्योगपतियों ने इन पौदों से महत्वपूर्ण सौगंधिक तेल बनाने का प्रयास जारी रखा है।

इसी काल में एण्डरसन नामक दो विदेशी भ्राताओं ने बंगलूर के समीप १० मील पर टाटगनी नामक क्षेत्र में मेक्सिको के असली लिनेलो वृक्षों का एक बड़ा बगीचा खड़ा किया। आर्थिक कठिनाइयों के कारण कुछ वर्षों के पश्चात् ये दोनों महान उद्योगी भाई स्वदेश लौट कर जीवन खो बैठे। टाटगनी का बगीचा कई मालिकों के हाथ से निकलता हुआ अन्त में पिछले कुछ वर्षों से सुप्रसिद्ध कलाकार युगल श्री एस० रोरिक तथा श्रीमती देविकारानी की देखरेख में बहुत उन्नति कर रहा है। यहाँ का बना हुआ लिनेलो का तेल अपनी विशुद्धता के लिए देश-विदेश सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। यदि सरकार इस तेल के अधिकाधिक उत्पादन के लिए उचित योजना को प्रोत्साहन देवे तो भारत के तेल की सारे संसार में मांग बढ़ाई जा सकती है।

हिन्दुस्तान एरोमैटिक्स कम्पनी के सफल प्रयास से उत्साहित होकर सौगंधिक तेल उद्योग को विकसित करने के लिए टाटा आयल मिल्स कम्पनी, कलकत्ता कैमिकल्स कं०, डी० वी० देव (कोचीन), स्टेंडर्ड एसैंशल आयल्स डिस्टिलर्स (कानपुर), गुप्ता एण्ड कम्पनी दिल्ली, एस० एच० केलकर एण्ड कम्पनी (बम्बई), घोष ब्रदर्स (कलकत्ता), इंडस्ट्रिल परफ्यूम्स लि० (बम्बई) इत्यादि कई कारखानदार इस क्षेत्र में आ चुके हैं। कन्नौज की दो पुरानी फर्मों, बनारसीदास खत्री और मनंऊ लाल रामनारायण ने भी आधुनिक साधनों से अपने व्यापार को भारत और विदेशों में बहुत बढ़ाया है। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप आज भारत में सौगंधिक तेल, सुगंधित रसायनिक द्रव्य, कृत्रिम सुगन्ध इत्यादि पदार्थों के निर्माण में सराहनीय उन्नति हो रही है।

इस संबंध में एक विशेष उल्लेखनीय बात है कि हिन्दुस्तान लिवर लि० जैसे प्रगतिशील विदेशी उद्योगपतियों ने भी भारतीय सौगंधिक तेल और अन्यान्य द्रव्यों के अधिकाधिक उपयोग से इनके विकास को बहुत प्रगति प्रदान की है। इंगलैंड के ए० बोक रोबर्ट एण्ड कम्पनी यथा डब्ल्यू जे० बुश एण्ड कम्पनी हालैंड के नार्डन्स, तथा फ्रांस के जगद्विख्यात एन्टोइन शिरिस इत्यादि कई कारखनों ने अपनी शाखाएं भारत में खोलकर काम प्रारंभ कर दिया है। अपनी आर्थिक क्षमता, शिल्पिक अनुभव तथा योग्यता से यह विदेशी उद्योगपति इस भारतीय उद्योग के विकास में महत्वपूर्ण हाथ बटा रहे हैं।

सौगंधिक तैल अनुसंधान-समिति

भारत की सर्वप्रधान कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च के अधीन एक "सौगन्धिक तैल अनुसंधान समिति" लगभग १५ वर्षों से कार्य कर रही है। इस समिति ने खस, चमेली, गुलाब, पानड़ी, जिरेनियम इत्यादि महत्वपूर्ण सौगन्धिक पौदों के विकास के बारे में पड़तालें की हैं। भारत के नैसर्गिक सुगन्धवान पौदों की जानकारी के सम्बन्ध में डा० श्रीकृष्ण के सहयोग से एक लेखावली १५ भागों में प्रकाशित की गई है। लगभग ८-१० लाख रुपये की आर्थिक सहायता द्वारा विविध अनुसंधान केन्द्रों में सौगन्धिक तैलों सम्बनी खोजबीन के फलस्वरूप महत्वपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी एकत्र की जा चुकी है। बंगलूर की

इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस, जम्मू की रीजनल रिसर्च लैबोरेटरी, पूना की राष्ट्रीय रसायन शाला, कानपुर का हारकोर्ट बटलर टैक्नाॅलीजिक्ल इंस्टीट्यूट तथा ऊटाकैमंड के सरकारी सिंकोना विभाग में इस समिति द्वारा देशव्यापी विकास और अनुसंधान के काम की आर्थिक सहायता दी जा रही है। तीसरी पंचवार्षिक योजना में इस कार्य को अधिक प्रोत्साहन मिलने की सम्भावना है।

देहरादून में अनुसन्धान कार्य का श्राद्ध

अत्यन्त खेद से यह लिखना पड़ता है कि गत पच्चास वर्षों के उज्जवल इतिहास में देहरादून की वन-अनुसंधान-संस्था ने जो महत्वपूर्ण कार्य किये, उन्हें १९५७ ई० में अकस्मात् बन्द करके भारत सरकार के कृषि मंत्रालय ने न केवल संस्था के गौरव को गहरा धक्का पहुँचाया है अपितु इस महत्वपूर्ण कार्य को भी। भारतीय सुगन्धवान पौदों सम्बन्धी जानकारी के लिए जिस वन-अनुसंधान-संस्था को ज्ञान-भंडार समझा जाता है आज वहाँ इस विषय से साधारणतया परिचित व्यक्ति का भी अस्तित्व दुर्लभ है।

भारतीय मानक संस्था

भारतीय मानक संस्था ने उड़नशील तैलों को परखने की जो रीतियाँ प्रकाशित की हैं, वे वैज्ञानिक संसार में सर्वत्र अग्रणी और प्रगतिशील मानी गई हैं। इस संस्था के नेतृत्व में महत्वपूर्ण सौगन्धिक तैलों के परीक्षण के लिए १३ भारतीय मानक विशिष्टियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इन्हीं में से चन्दन और लैमनघास के तैलों सम्बन्धी भारतीय मानकों के आधार पर भारत सरकार के खाद्य और कृषि मंत्रालय ने इन तैलों के निर्यात पर "एगमार्क" का प्रमाण-चिन्ह लगाने की योजना चालू की है। इस समय इस संस्था के अधीन लगभग बीस तैलों और रसायनिक द्रव्यों की भारतीय विशिष्टियाँ तैयार की जा रही हैं।

प्रथम राष्ट्रीय गोष्ठी

उड़नशील तेलों और सौगन्धिक रसायनिक द्रव्यों के सम्बन्ध में अनुसंधान तथा विकास की चर्चा करने के लिए लेखक ने एक प्रथम राष्ट्रीय गोष्ठी की आयोजना अक्तूबर १९५५ ई० में वन-अनुसंधान-संस्था देहरादून में की थी। यह भी कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च के निर्देशानुसार और उसकी आर्थिक सहायता से ही सम्भव हो सका। इसमें देश के अनुसंधान केन्द्रों, भारतीय विश्वविद्यालयों, विभिन्न प्रदेशों और केन्द्रीय सरकारों के कृषि और उद्योग विभागों तथा इन पदार्थों के उद्योग और व्यापार में रुचि रखने वाले लोगों में से लगभग १०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस अवसर पर सौगंधिक तेलों और तत्सम्बन्धी रसायनिक पदार्थों की एक उत्तम प्रदर्शनी भी की गई थी जो देश में अपनी कोटि का प्रथम प्रयत्न कहा जाना चाहिए। गोष्ठी ने भारत सरकार से सिफारिश की कि देश भर में आर्थिक महत्व की सौगन्धिक वनस्पतियों की खेती के विकास और प्रचार के लिए एक विकासाधिकारी की नियुक्ति की जावे। उस समय देश

में दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखाएं तैयार की जा रही थीं इसलिए इस गोष्ठी से इस उद्योग के विकास के काम को महत्वपूर्ण गति मिली है।

भारतीय सौगंधिक तैलों के स्रोत

भारत में जलवायु, मौसम तथा दूसरी परिस्थितियों की विविधता के कारण यदि सभी प्रकार के नहीं, तो बहुत प्रकार के आर्थिक महत्व वाले सुगन्धवान पौदे पनपते हैं। लेखक के कई वर्षों के अनवरत अनुसंधानों के अनुसार इन पौदों की संख्या एक हज़ार से अधिक कही जा सकती है। यह संख्या भारत में उपजने वाले फूलवाले कुल पौदों की संख्या के १० प्रतिशत से कम नहीं हैं। खोजबीन के फलस्वरूप यह भी पाया गया है कि सुगन्धवान विदेशी पौदे भी बड़ी संख्या में उपजाए जा सकते हैं। देश में महत्वपूर्ण सुगन्धवान पौदे निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किए जा सकते हैं:

१—घासें: लेमन, रोशा (मोतिया), सौंफिया इत्यादि।

२—पत्तियाँ और डंठल: तुलसी, काली तुलसी, वनतुलसी, कपूरतुलसी, युकलिप्पटस ग्लोब्युलस, युकलिप्टस सिट्रियोडोरा, पानड़ी, पोदीना, पिपरमिंट, नींबू, खट्टा नींबू, नारंगी, संतरा, लाइम, नागदौना, सोवा, ककरौंदा, दालचीनी, लिनेला, स्किमिया लौरियोला इत्यादि।

३—फूल: गुलाब, चमेली, मोतिया, जूही, पारिजात, रजनीगन्धा, चम्पा, बकुल, नींबू, नारंगी, संतरा, बबूल, कैनैंगा, लौंग, फ्रांसिसिया फ्लोरीबंडा, सुंरगी, केसर, केवड़ा इत्यादि।

४—बौर: आम, मेंहदी इत्यादि।

५—फल: नींबू, संतरा, नारंगी, तेजबल, बेल, हौबेर, लिनेलो, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, गोल मिर्च, जायफल इत्यादि।

६—बीज: अजवायन, सौंफ, काला जीरा, सफेद जीरा, अजमोद, धनिया, सोवा, बडी सौंफ, मुश्कदाना इत्यादि।

७—जड़े और कन्द: खस, जटामांसी, बालछड़, बच, अदरक, तगर, हल्दी, आंबाहल्दी कुठ, बड़ा कुलिंजन, कुचुगुडूंबी इत्यादि।

८—लकड़ी: चन्दन, अगर, मयूर पंखी, देवदार, कर्पूर, लिनेलो, चम्बालिका इत्यादि।

९—छाल: दालचीनी।

१०—राल और गोंद: चीड़, गरजन, सलई, गुग्गुल, हींग, डिकमाला इत्यादि।

११—क्वाप्य (लिचन्स): छरीला, चीड़ इत्यादि।

१२—जान्तव पदार्थ: कस्तूरी और एम्बरग्रिस इत्यादि।

वर्तमान उत्पादन

देश में आजकल तारपीन का तेल, २,०००-२,४००, बैरोजा, १०,०००-१२,०००, चन्दन का तेल, ८०-१००, लेमन घास का तेल, ७५०, रोशा घास का तेल, ८५-६०, सौफिया घास का तेल,३-५, युकलिप्टस का तेल, १५-२०, खस का तेल, ८-१०, लिनेलो का तेल, ३, जिरेनियम का तेल, १, दारचीनी की पत्तियों का तेल, २, आजवाइन का तेल, २ सोवे का तेल, १, अदरक का तेल २, डिल का तेल १ और संतरे का तेल, २ टन प्रति वर्ष तैयार किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त गुलाब, चमेली, केवड़ा इत्यादि के इत्रों की प्रचुर मात्रा स्रवित की जाकर के चन्दन के तेल पर बनाई जाती है। गुलाब, सौंफ, केवड़ा, चन्दन पोदीना इत्यादि के अर्क तैयार किये जाते हैं। जौनपुर और कन्नौज में गुलाब, चमेली, केवड़ा इत्यादि के फूलों को तिल के बीजों में बसाकर पुष्पो-पासना की विधि से केश तेल तैयार किये जाते हैं। गुलाब के फूलों से गुलकन्द बनाया जाता है। इस उद्योग के सब प्रकार के उत्पादन का मूल्य प्रायः १२-१५ करोड़ रुपया वार्षिक समझा जा सकता है।

निर्यात

देश से बाहर भेजे जाने वाले उड़नशील तेलों में लेमन घास, चन्दन और रौशा घास के तेल प्रमुख हैं। १६५६-५७ के बजट-वर्ष के आंकड़ों के अनुसार २,८८,२३,६६८ रुपए की लागत के सौगंधिक तेल; ७५,६७,७५६ रुपये की लागत के सौगंधिक तेल धारी बीज; ६,८२,२६,७८२ रुपये की लागत के सौगंधिक तेल धारी मसाले और लगभग ४० लाख रुपये की लागत की चन्दन की लकड़ी देश से बाहर भेजे गए।

आयात

इसी वर्ष के आंकड़ों के अनुसार उड़नशील सौगंधिक तेलों के आयात का मूल्य ७४,३२,२७२ रुपए; कृत्रिम सुगन्धों का मूल्य ५४,४८,१०६ रुपये; कपूर का मूल्य ४३,८२, ३०१ रुपये, केसर का मूल्य ११, ५४,०२१ रुपये; पाइन और तारपीन इत्यादि के तेलों का मूल्य ४१, ६२, ७६४ रुपये; सौगंधिक तेल धारी बीज, मसाले तथा राल और गोंद इत्यादि का मूल्य २,७६,६०,७७१ रुपये, तथा सौगंधिक रसायनिक द्रव्यों का मूल्य १,२४,५३,८५४ रुपये तक आंका गया है। इस प्रकार से १६५६-५७ के वर्ष में देश में प्राप्त इन सब प्रकार के पदार्थों का मूल्य ६,२७.२४,१२२ रुपये रहा।

भारत में अभी प्राकृतिक सुगन्धें, रसायनिक द्रव्य और अन्य सौगंधिक पदार्थ न इतनी किस्म के और न इतनी मात्रा में तैयार किए जाते हैं कि उनसे देश की सभी आवश्यकताएं पूरी हो सकें। इस समय देश में आयोनोन, जिरेनियोल, यूजिनोल. सिट्राल, सीनियोल, जिरेनिल एसिटेट इत्यादि तथा विविध प्रकार के कृत्रिम सुगन्ध तथा एसेंस तैयार होने लगे हैं। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में तारकोली रसायनों के काफी मात्रा में तैयार हो जाने से सौगंधिक रसायनिक द्रव्यों का निर्माण भी अधिकाधिक मात्रा में होने लगेगा।

सौगंधिक तेल निकालने की विधियाँ

चन्दन की लकड़ी के बुरादे में से तेल निकालने के लिए आधुनिक माप-आसवन के यंत्र काम में लाए जाते हैं, पर अधिकतर उड़नशील सौगंधिक तेल और इत्र आदि देश के विविध भागों में खुली आग पर जल-आसवन की पुरानी विधि से ही निकाले जाते हैं। धीरे-धीरे पुरानी तरह के उपकरणों को उद्योगी छोड़ते जा रहे हैं और नए प्रकार के सुधरे हुए उपकरण दिनोंदिन अधिक काम में आने लगे हैं। रोशा घास, युकलिप्टस की पत्ती और खस की जड़ों में से सौगंधिक तेल निकालने की आसवन पद्धति में लेखक द्वारा जो लाभदायक सुधार किए गए हैं, उनको उद्योग ने अपनाकर आशातीत आर्थिक उन्नति की है। लिनेलो, अजमोद, खस, बच, सोया, जिरेनियम और पानड़ी इत्यादि से भी तेल प्राप्त करने के लिए आधुनिक प्रकार के माप आसवन के यंत्र काम में आ रहे हैं। चिनोपोडियम, पिपरमेंट, देवदार, कर्पूर तुलसी और अगर के सौगंधिक तेलों तथा कर्पूर की प्राप्ति के लिए लेखक ने जो विकास पूर्ण खोजबीन की है उनके आधार पर विशिष्ट प्रकार के उपकरण और आसवन की विधियों का उपयोग धीरे-धीरे देश में बढ़ता जा रहा है।

लाइम, नींबू और संतरों में से निष्पीड़न विधि से दबाकर सौगंधिक तेल निकालने में आर्थिक दृष्टि से सफलता नहीं हुई है। देश में चमेली, गुलाब, केवड़ा और मेंहदी आदि के फूलों की सुगन्ध को धोये तिलों के बीजों में बसा कर बालों के शृंगार के लिए पुष्पोपासित तेल तैयार किए जाते हैं; पर फ्रान्स में जिस आधुनिक ढंग से फूलों को बसा कर पुष्पोपासित पोमैड बनाकर उनसे कंक्रीट और एब्सोल्यूट तैयार किए जाते हैं, उस विधि का प्रचलन अभी देश में नहीं हुआ है। घोलकों की सहायता से निस्सारण-विधि का भी उपयोग अभी नहीं हो रहा। हिन्दुस्तान एरोमैटिक्स कम्पनी में लेखक ने जो भारतीय फूलों के कंक्रीट, एब्सो-ल्यूट, पोमैड इत्यादि इन वैज्ञानिक विधियों से कुछ वर्ष पूर्व बनाए थे उनकी प्रशंसा विदेशों में भी की गई थी।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में हुए विकास को देखते हुए अब यह सिद्ध हो गया है कि भारत की सौगंधिक सम्पदा के समुचित विकास और उपयोग के लिए यह परमावश्यक है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना के पूर्व ही इस उद्योग की चतुर्दिक उन्नति की निश्चित योजना बनाकर उसे कार्यान्वित किया जावे। इस क्षेत्र में भारत के ऐतिहासिक गौरव और नेतृत्व को पुनः स्थापित कर प्रत्येक स्वदेशाभिमानी का कर्त्तव्य होना चाहिये।

भास्कराचार्य तथा लीलावती

विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

उपस्थित समस्त जन समुदाय की आँखें बृहतकाय रजत-पात्र में तैरते हुए घटिका-यंत्र की ओर केंद्रित थी जिसमें शनैः शनैः पानी भरता चला जा रहा था। जल से आपूरित हो जाने पर जैसे ही यह यंत्र निमज्जित होगा, उसी क्षण वह अपनी अत्यन्त प्रतिभावती अनुपमा सुन्दरी कन्या का हाथ, शास्त्र-सम्मत योग्य वर के हाथों में, सौंप देगा। एक क्षण भी बिलम्ब का परिणाम होगा कन्या का वैधव्य।

उस महान् ज्योतिष्यी को वर्षों पूर्व से ही यह निश्चत था कि उसकी कन्या अवश्य विधवा होगी क्योंकि कन्या की जन्म पत्रिका के योग ही कुछ ऐसे थे। लेकिन वह पराजित होने वाला नहीं था। उसने अत्यंत कठिन परिश्रम, साधना एवं शोधन के पश्चात् गणनाएं करके विवाह के लिए योग्यतम वर एवं शुद्धतम मुहूर्त खोज ही निकाला। वह नियति से लड़ने एवं उसका लेख मिटाने चला था।

लेकिन……एक क्षण, दो क्षण……कई क्षण निकल गये……घाटिका यंत्र डूब ही नहीं रहा था। जन समुदाय की उत्सुकता एवं आतुरता बाँध तोड़ रही थी। आखिर उससे न रहा गया। उसने त्वरित गति से तैरते हुए घटिका यंत्र को बाहर निकाल लिया एवं कुछ ही क्षणों पश्चात् विलम्ब का रहस्य सब के समक्ष स्वयमेव उद्घाटित हो गया। यंत्र के छिद्र का मार्ग एक छोटे से कंकर ने अवरुद्ध कर दिया था। और अधिक पानी कैसे भर पाता? फलस्वरूप यंत्र कैसे निमज्जित हो पाता? इसी लिये विलम्ब हो रहा था।

चिंता एवं व्यथा की कुछ रेखाएं उस महान् गणितज्ञ के ज्ञान प्रदीप्त मुख-मंडल पर दौड़ गयीं किन्तु दूसरे ही क्षण जन कोलाहल को शांत करती हुई उसकी गम्भीर वाणी का धारा प्रवाह चल निकला। उसने घोषणा की—

"मेरी कन्या का अब पाणिग्रहण नहीं होगा क्योंकि विवाह के मुहूर्त का वास्तविक क्षण व्यतीत हो चुका। वह आजन्म कुमारी रहेगी। मैं अब स्वयं उसका अध्यापन करके उसे अन्यतमा विदुषी बना दूँगा। उसका साधनाशील कौमार्य उसे ऐतिहासिक अमरता प्रदान करेगा, इसकी मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।"

उस अद्वितीय विद्वान के निर्णय का विरोध करने की शक्ति किसमें थी? दबी-छुपी आलोचनाएँ एवं मन्तव्य प्रकट करते हुए समस्त अतिथिगण एवं बाराती लोग एक-एक कर बिदा हो गये।

और दूसरे ही दिन से अपनी धुन के पक्के उस दृढ़ मनस्वी ने अपनी कन्या को पाटी गणित का अध्यापन करना प्रारंभ कर दिया। इतनी काव्य-मयी सरस एवं सबल थी

उसकी शैली एवं इतना गहन एवं ठोस था उसका ज्ञान कि गणित जैसे अत्यंत कठिन एवं शुष्क विषय के गूढ़तम रहस्य उसने चुटकियों में अपनी कन्या को समझा दिये। अपने पारस्परिक संवादों एवं कथोपकथनों को वह लिपिवद्ध करता चला जा रहा था। इस प्रकार एक अमर ग्रन्थ की रचना हो गई। और वास्तव में उस दृढ़-प्रतिज्ञ ने इस ग्रन्थ का नाम "लीलावती" रखकर अपनी कन्या का नाम अमर करने की प्रतिज्ञा पूरी कर दी।

वह और कोई नहीं, दशवीं शताब्दि का विश्वप्रसिद्ध ज्योतिषी एवं गणितज्ञ भास्कराचार्य था। और यह है एक किंवदंती का स्वरूप जो कि भास्कराचार्य एवं उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ लीलावती के बारे में प्रचलित है। कोई-कोई यह भी कहते हैं कि जानबूझ कर भास्कराचार्य को लीलावती का विवाह करना पड़ा था। लीलावती को ग्रन्थ का कुछ हिस्सा तो विवाह के पूर्व एवं कुछ हिस्सा विधवा होने के पश्चात् उन्होंने पढ़ाया था। लेकिन विद्वानों का बहुमत तो इस किंवदन्ती को पूर्णतया कपोल-कल्पना मानने के पक्ष में है। इसी सम्बन्ध में श्री गिरिजा प्रसाद द्विवेदी कृत टीका की भूमिका में व्यक्त विचारों का उल्लेख अनुचित न होगा। उनके कथन का यह भावार्थ है: "भास्कराचार्य के अंकगणित (पाटी-गणित) के इस ग्रन्थ का नाम लीलावती इस लिये है कि आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, श्रीधर आदि विद्वानों की परम्परा को कहीं-कहीं पर तो पूर्णतया त्याग कर एवं कहीं-कहीं स्पष्ट एवं सरल संशोधन करके सर्वत्र उन्होंने अपनी कवित्व संश्लेषण की प्रतिभा के द्वारा विचित्र "लीला" की है।" आगे चल कर उक्त विचारधारा की सम्पुष्टि करते हुए श्री द्विवेदी जी लिखते हैं।...

"वस्तुतस्तु आचार्यस्य प्रतिभैव लीलावती.........न तु कश्चत् स्त्री पुन्स रूपो व्यक्ति विशेष इति स्पष्टम्।"

अर्थात् वस्तुतः भास्कराचार्य की प्रतिभा ही स्वयं "लीलावती" है। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के प्रति वे सजग थे। उन्होंने श्लोकों में तरह-तरह से अपनी प्रतिभा को ही "अयी बाले", "कोमलाङ्गी" इत्यादि कह-कह कर सम्बोधित किया है। इस प्रकार लीलावती कोई स्त्री विशेष नहीं वरन् केवल कल्पना है।

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा पाठकों को लीलावती सम्बन्धी किंवदन्ती के मूल कारण का आभास प्राप्त हो जावेगा क्योंकि ग्रन्थ में सर्वत्र इसी प्रकार के श्लोक मिलते हैं:

लीलावती का प्रारम्भ तत्कालीन परम्परा के अनुसार निम्नलिखित मंगल श्लोक से किया गया है:

"प्रीतिं भक्तजनस्य यो जनयते विघ्नं विनिघ्नन्स्मृत-
स्तं वृन्दारक वृन्द वन्दित पदं नत्वा मतङ्गाननम्।
पाटीं सद्‌गणितस्य वच्मि चतुर प्रीतिप्रदां प्रस्फुटाम्
संक्षिप्ताक्षर कोमलामल पदैर्लालित्य लीलावतीम्॥ १॥

इस मंगल श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों में भगवान गणपति की स्तुति की गई है। अन्तिम दो चरणों में ग्रन्थ का प्रशंङ्कात्मक उद्देश्य बतलाया गया है। इन पंक्तियों का दो

प्रकार से अन्वय कर सकते हैं। यदि ''लीलावतीम्'' शब्द को "पाटीम्" का विशेषण समझकर "लीलावतीम् पाटीम् वच्मि" ऐसा अन्वय किया जाय तो किंवदन्ती केवल कल्पना मात्र सिद्ध होती है। यदि "पाटीम् लीलावतीम् (प्रति) बच्मि" अर्थात् "पाटी को लीलावती के प्रति कहता हूँ" ऐसा अन्वय किया जाय तो किंवदन्ती की सम्पुष्टि होती है।

इसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ में किंवदन्तियों के पक्ष एवं विपक्ष वाले श्लोक एवं भावार्थ पाये जा सकते हैं एवं इन कल्पनाओं की सत्यता का निर्णय एक स्वतन्त्र विषय बन सकता है अतएव इस विवादास्पद विषय को यहीं छोड़ कर आइये हम आधुनिक दृष्टिकोण से भास्कराचार्य एवं लीलावती के सम्बन्ध में अत्यन्त संक्षेप में अधिकतम जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

भास्कराचार्यः

भारतीय ज्योतिष एवं गणित के इतिहास में कई भास्कराचार्य हुए हैं लेकिन प्रसिद्ध विद्वान श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित एवं डा० गोरखप्रसाद आदि के अनुसार लीलावती ग्रन्थ के रचयिता हैं भास्कराचार्य द्वितीय। प्रथम भास्कराचार्य महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट के शिष्य थे अतएव वे लीलावती के भास्कराचार्य से काफी पूर्व हुए थे। जहाँ तक उनके जन्म संवत् का सवाल है, भास्कराचार्य द्वितीय में सिद्धान्त-शिरोमणि के गोलाध्याय के उपविभाग, प्रश्नाध्याय, में स्पष्ट रूप से निम्नलिखित श्लोक लिख कर समस्या का हल कर दिया गया है:

रस गुण पूर्ण मही सम शक नृप समयेऽभवन् ममोत्पत्तिः।
रस गुण वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणि रचिता ॥ ५७ ॥

इस श्लोक के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि शके १०३६ में इनका जन्म हुआ एवं शके १०७२ अर्थात् ३६ वर्ष की आयु में इन्होंने सिद्धान्त-शिरोमणि ग्रन्थ की रचना की।

इन्होंने अपने बारे में और भी अधिक परिचय इसी श्लोक शृङ्खला में दिया है :

"आसीत् सह्याद्रि कुला चलाश्रित पुरे त्रैविध विद्वज्जने
नाना सज्जन धाम्नि विज्जड़विड़े शाण्डिल्य गोत्रो द्विजः।
श्रोतस्मार्त विचार सार चतुरो निःशेष विद्या निधिः
साधूनामवधिर्महेश्वर कृतिः दैवज्ञ चूड़ामणिः ॥ ६१ ॥

इस श्लोक से भासित होता है कि अपने समय के धुरन्धर ज्योतिषी शांडिल्य गोत्रोत्पन्न श्री महेश्वरी इनके पिता थे एवं सह्याद्रि पर्वत की तलहटी में विज्जड़विड़ नामक ग्राम में इनके पूर्वज रहते थे। यह विषय अभी भी संदेहास्पद है लेकिन पर्याप्त ऊहापोह के बाद श्री दीक्षित ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय ज्योतिष' में आत्मविश्वास पूर्वक लिखा है कि "इससे निस्संशय यह सिद्ध होता है कि भास्कराचार्य का मूल निवास स्थान पाटण (सह्याद्रि की तलहटी में दौलताबाद के समीप एवं "चांदवड़ की पहाड़ी से लगा हुआ) अथवा उसके समीप ही विजलविड़ सरीखे नाम वाला गाँव था। सम्प्रति वह प्रसिद्ध नहीं है।"

इनके मुख्यतया दो ग्रन्थ विख्यात हैं :

(१) सिद्धान्त शिरोमणि एवं (२) करण कुतूहल। कोई-कोई "विवाह पटल" नामक ग्रन्थ एवं फलित ज्योतिष पर एक मुहूर्त ग्रन्थ भी इनका बनाया हुआ मानते हैं। लेकिन यह प्रश्न विवादास्पद है एवं ये ग्रन्थ भी अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं। करण कुतूहल इन्होंने ६६ वर्ष की आयु में लिखा था। इससे यह सिद्ध होता है कि भास्कराचार्य ने काफी लम्बी आयु भोगी एवं वृद्धावस्था में भी इनका अदम्य उत्साह, अध्यवसाय एवं पर्यवेक्षण प्रशंसनीय थे।

लीलावती:

भास्कराचार्य के सुविख्यात ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि को चार स्वतन्त्र भागों में अथवा अध्यायों में बांटा जा सकता है। (१) लीलावती (२) बीजगणित (३) गणिताध्याय (४) गोलाध्याय। लेकिन कई विद्वान् लीलावती एवं बीजगणित को स्वंतत्र ग्रन्थ मानते हैं। यदि यह सही है तो भास्कराचार्य के ६ ग्रन्थ हो जाते हैं। लेकिन जहाँ तक भस्कराचार्य के स्पष्ट संकेतों के अध्ययन का प्रश्न है, लीलावती को उन्होंने पाटी-गणित कहा है एवं इसे स्वंतत्र रचना न मान कर सिद्धान्त शिरोमणि का प्रथम अध्याय मानना चाहिये क्योंकि अन्य समस्त अध्यायों का ज्ञान इसी पर आधारित हैं एवं इसमें अंकगणित के मूल सिद्धान्त एवं विशिष्ट प्रक्रियाओं के नियम उपनियम एवं प्रश्नोत्तर दिये गये हैं। श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी की टीका के अन्त में लिखा हुआ निम्न उपसंहार भी उक्त कथन की पुष्टि करता है।

"इति श्री भास्करीये सिद्धान्त शिरोमणी लीलावती संज्ञः पाट्यध्यायः समाप्तः।"

श्री दीक्षित के मतानुसार लीलावती में कुल २७८ पद्य हैं लेकिन श्री द्विवेदी जी की टीका में कुल १४० ही मुख्य पद्य दिये गये हैं। लीलावती में सर्वत्र मुख्य पद्यों के साथ उदाहरणार्थ एवं स्पष्टीकरणार्थ भास्कराचार्य ने यत्र-तत्र गद्यात्मक वाक्य भी लिखे हैं। सारे पद्य सरस एवं कवित्व के परिचायक हैं। गद्यांश भी सरस एवं स्पष्ट हैं। श्री द्विवेदीजी ने लीलावती को भास्कराचार्य के अनुसार निम्न २३ अध्यायों में विभक्त किया है। प्रत्येक अध्याय में अंकगणित का नवीन विषय है।

(१) परिभाषा (२) अभिन्न परिकर्माष्ठकम् (३) जातिचतुष्टय (४) भिन्न परिकर्माष्टकम् (५) शून्य परिकर्माष्टक (६) व्यस्तविधि (७) इष्ट कर्म (८) विषम कर्म (६) वर्ग-कर्म (१०) गुण-कर्म (११) त्रैराशिक (१२) पञ्चराशिक (१३) भाण्ड प्रतिभाण्ड (१४) मिश्र व्यवहार (१५) श्रेढ़ी व्यवहार (१६) क्षेत्र व्यवहार (१७) खात व्यवहार (१८) चितिव्यवहार (१६) क्रकच-व्यवहार (२०) राशि-व्यवहार (२१) छाया-व्यवहार (२२) कुट्टक (२३) अंकपाश एवं उपसंहार।

संक्षिप्त-विषय-विवरण:

परिभाषा के अंतर्गत, आवश्यक परिभाषाएं, माप तौल की इकाइयां द्रम्म, द्रोण, कुड़व आदि तथा इकाई से लेकर परार्द्ध ($१०^{१७}$ = १०००००००००००००००००) तक की संख्याओं का नामकरण दिया गया है। यह हिन्दुओं की तत्कालीन विशेषता थी। अभिन्न अर्थात् पूर्ण अतएव, "अभिन्न परिकर्माष्टकम्" में पूर्णांकों की आठ मौलिक प्रक्रियाएं दी गई हैं। आजकल हम चार मौलिक प्रक्रियाएं (फोर फन्डामेन्टल आपरेशन्स) जोड़, बाकी, गुणा और भाग मानते हैं किन्तु भास्कराचार्य ने सर्वत्र वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घन मूल को भी मौलिक प्रक्रिया माना है। इसके पश्चात् जाति चतुष्टय के अंतर्गत भिन्नों के प्रकारों का एवं उनकी परिभाषाओं का स्पष्ट विश्लेषण किया गया है। यह विभाग भिन्न परिकर्माष्टक की भूमिका के रूप में है। "भिन्न परिकर्माष्टक" में भिन्नों (फ्रेक्शन्स) के योग, व्याकलन, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घनमूल निकालने के सरस सूत्र एवं श्लोक हैं। शून्य परिकर्माष्टक में शून्य के गुण-धर्म एवं उसके आठ परिकर्मों का निदर्शन किया गया है यथा शून्य में किसी भी संख्या का गुणनफल शून्य ही होता है। इत्यादि।

व्यस्तविधि, गुणकर्म, इष्टकर्म, वर्ग कर्म, विषमकर्म, त्रैराशिक एवं पंचराशिक इन प्रभावों को श्री द्विवेदी जी ने प्रकीर्ण शीर्षक के अंतर्गत ले लिया है। इसमें विलोम पद्धति; बीजगणित के प्रसिद्ध सूत्र $अ^{२} - ब^{२} = (अ + ब)(अ - ब)$ इत्यादि सूत्रों का उपयोग एवं आधुनिक काल के प्रचलित त्रैराशिक, पंचराशिक आदि के नियमोपनियम विवेचित किये गये हैं। भाण्डप्रतिभाण्ड का अध्याय इन्हीं पर आधारित है। इसमें पात्रों एवं वस्तुओं की अदला-बदली पर काव्यमय, मनोरंजक प्रश्नोत्तर दिये गये हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि भास्कराचार्य के समय में वस्तु प्रथा प्रचलित थी। अर्घ का महत्व था। मिश्र व्यवहार के अध्याय में ब्याज, सुवर्ण के शुद्ध भाग का पता लगाना तथा क्रमचय—उपचय आदि पर प्रश्नोत्तर हैं। श्रेढ़ी व्यवहार एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इसमें विभिन्न प्रकार की श्रेढ़ियों (मुख्यतया अंकीय एवं ज्यामितिक) का विश्लेषण हैं। कई उपपत्ति रहित सूत्र दिये गये हैं जो आज के प्रगतिशील युग के सूत्रों के समकक्ष हैं।

क्षेत्र व्यवहार में त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त, बहुभुज आदि क्षेत्रों के क्षेत्रफल जानने के नियम हैं। कई कठिन किन्तु बुद्धि वैचित्र्य के प्रतीक आकर्षक सरस प्रश्नोत्तर दिये गये हैं।

खात व्यवहार के अन्तर्गत खाद एवं अन्न भरने के गढ़ों एवं उनकी समाई जानने के तरीकों पर नियमोपनियम एवं प्रश्नोत्तर लिखे गये हैं। यह आयतन जानने का अध्याय है। चिति व्यवहार में चबूतरे एवं चौपाल आदि पर प्रश्नोत्तर हैं। मूलतः यह खातव्यवहार के समान ही है। क्रकच व्यवहार में असमान लम्बाई, चौड़ाई की लकड़ियों को इच्छित रूप में काटने के गणितात्मक हल एवं उनसे प्राप्त होने वाले टुकड़ों का प्रमाण, क्षेत्रफल आदि जानने का विषय है। क्रकच व्यवहार आदि अध्याय वस्तुतः उस समय यज्ञ यागादिक में होमकुण्ड एवं काष्ठफलकों की रचना के उपयोगार्थ विश्लेषित किये गये होंगे। ये

भास्कराचार्य के ठोस ज्यामिति एवं कोनिक सेक्शन के ज्ञान के प्रतीक भी हैं। कुट्टक व्यवहार में विलोम पद्धति का अनुगमन कर कठिन प्रश्न दिये गये हैं। अंकपाश में क्रमचय एवं उपचय (परम्यूटेशन्स एण्ड काम्बीनेशन्स) पर अत्यन्त मनोरंजक किन्तु कठिन प्रश्न पूछे गये हैं।

अन्त में ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए एवं पाठकों एवं अध्ययन कर्ताओं के लिये शुभ कामनाएं करते हुए लीलावती का उपसंहार कर दिया गया है।

लीलावती की टीकाएं:

उपर्युक्त अध्यायों एवं विषयों से समन्वित यह ग्रन्थ दशवीं शताब्दि के दृष्टिकोण से अपने क्षेत्र में अद्वितीय कहा जा सकता है। यह न केवल भास्कराचार्य की महानता ही सिद्ध करता है वरन् उस समय के अति उन्नत भारतीय गणित का भी परिचय देता है। यह ग्रन्थ हिन्दुओं की अंकगणितात्मक उन्नति का अंतिम सोपान था क्योंकि इसके पश्चात् किसी भी व्यक्ति में इतना साहस न हुआ कि वह इस विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ में संशोधन अथवा परिवर्द्धन कर सके। लगातार ७०० वर्षों तक यह ग्रन्थ हिन्दुओं के हृदय पर एकच्छत्र शासन करता रहा एवं न केवल भारतवर्ष में वरन् सर्वत्र यह इतना महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता रहा कि विभिन्न देशों एवं भाषाओं के विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर इसकी कई टीकाएं एवं अनुवाद किये गये। भारत के ऐतिहासिक ज्योतिष ग्रन्थों में इस ग्रन्थ के अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ के इतने अनुवाद नहीं किये गये। उक्त तथ्य की परिवाचक है निम्नलिखित सूची, जो कि मैं डा० गोरखप्रसाद एवं श्री शंकर दीक्षित के ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरे विचार से यह सूची अपूर्व है क्योंकि स्वयं भारतीय उपभाषाओं में ही इसके कई अनुवाद हुए होंगे।

"प्रमुख टीकाओं में जम्बू निवासी गोवर्धन पुत्र गंगाधर (लक्ष्मीधर) की गणितामृत सागरी अथवा अंकामृत सागरी (१३४२ शके), ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ की "बुद्धि विलासिनी (१४६७), धनेश्वर दैवज्ञ की लीलावती भूषण, महोदास की टीका (१५०७) मुनीश्वर की लीलावती विवृति (१५४७) महीधर की लीलावती विवरण, रामकृष्ण की गणितामृत लहरी, नृसिंह पुत्र नारायण की पाटीगणित कौमुदी (१३३६) एवं उन्ही के भ्राता रामकृष्ण देव की मनोरंजना, रामचन्द्र कृत लीलावतीभूषण, विश्वरूप कृत निसृष्ट दूती, सूर्यदासकृत कूपिका गणितामृत इत्यादि टीकाएं एवं चन्द्रशेखर पटनायक, विश्वेवर, दामोदर आदि कृत उदाहरण हैं।

शक १५०६ में लीलावती का पर्शियन अनुवाद हुआ। बादशाह अकबर ने भी फैजी से एक अनुवाद करवाया था। १८१६ एवं १८१७ में टेलर एवं कोलब्रुक ने अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित करवाये। इसके अतिरिक्त आधुनिक टीकाओं एवं अनुवादों में श्री वापूदेव शास्त्री, श्री सुधाकर द्विवेदी एवं श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी आदि की रचनाएं प्रमुख हैं।

लीलावती के उपर्युक्त अनुवाद एवं टीकाएं इसके महत्व का आभास मात्र देते हैं। वास्तव में इस ग्रन्थ का विषयवस्तु, इसकी शैली आदि का विवेचन तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ का विषय बन सकता है।

रसायन-शास्त्र के संस्थापक—जे० जे० बर्जीलियस

नन्दलाल जैन, बालआश्रम, रायपुर, म० प्र०

जे० जे० बर्जीलियस रसायन शास्त्र के विकास में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। अपने अध्यवसाय, लगन और बौद्धिक प्रतिभा के बल पर एक दीन व्यक्ति भी किस प्रकार ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में चमत्कार दिखा सकता है, बर्जीलियस इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इनके जीवन से हम यह भी भली भांति समझ सकते हैं कि वैज्ञानिक विकास में केवल विज्ञान विशेष के ज्ञाता का ही हाथ नहीं होता, अपितु पुस्तकों की जिल्द बांधनेवाले या सामान्य डाक्टर भी उसमें महत्वपूर्ण भाग ले सकते हैं। उन्नीसवीं सदी का पूर्वार्ध रसायन-विज्ञान को व्यवस्थित रूप देने का युग माना जा सकता है। लेवोशिये के युग में जो रासायनिक क्रांति हुई थी, उसका रूप अब कुछ परिवर्धित होने लगा और इसी काल में रसायन की संकेतात्मक व परिमाणपरक भाषा का रूप स्थिर हुआ, नये पारिभाषिक शब्दों का सृजन हुआ, पदार्थों की अन्तर्रचना के परिज्ञान के यत्न आरंभ किये गये, विभिन्न प्रकार के रासायनिक भारों की प्रयोगात्मक गणना की गई, नई स्थापनायें तथा दिशायें दी गईं एवं विविध विषयों की सैद्धान्तिक विवेचना प्रस्तावित की गई। इस प्रकार रसायन-शास्त्र को व्यवस्थित, वैज्ञानिक एवं सुगठित रूप देकर उसके चतुर्मुखी विकास का राजपथ प्रशस्त कर दिया गया। इस प्रक्रिया में जिन वैज्ञानिकों ने हाथ बटाया है, उनके प्रतिनिधि के रूप में हम बर्जीलियस का नाम गौरवपूर्वक ले सकते हैं। अपने ५० वर्ष के सक्रिय जीवन काल में उन्होंने अपनी विशिष्ट प्रयोगकला एवं बुद्धिकौशल द्वारा अपना एक प्रामाणिक स्थान बना लिया था। यही कारण था कि देश-देशान्तर के वैज्ञानिकों ने उनको अपना गुरु बनाया था एवं उनका ही यह प्रभाव था कि उनके शिष्य भी कालान्तर में उनके समान ही ख्याति प्राप्त कर सके। उनके जीवन से हमें न केवल कठिन परिस्थितियों में रहकर ज्ञान-साधना की जानकारी ही करनी चाहिये, अपितु आज के युग में और भी अधिक कठोर ज्ञान-साधना का निस्वार्थ व्रत लेकर मानवता की सेवा करने की शिक्षा लेना चाहिये।

समकालीन प्रमुख वैज्ञानिक

बर्जीलियस पर लेवोशिये की रासायनिक क्रांति का पूर्ण प्रभाव पड़ा है, यही कारण है कि उन्होंने उनके द्वारा प्रस्तावित सिद्धान्तों को ही आगे बढ़ाया, उन्हें प्रयोग-पुष्ट किया और उसी के आधार पर अपने नवीन सिद्धान्तों की स्थापना की। उनके समकालीन वैज्ञानिकों में वे सभी सम्मिलित हैं जिनकी प्रयोगकला व गवेषणाओं द्वारा रसायन-शास्त्र की नींव का निर्माण हुआ है। बर्थोले, वर्गमान और जाफरी जैसे फ्रांसीसी वैज्ञानिकों ने पदार्थों के सयोग के संबंध में बन्धुता एवं मात्रानुपात की बात प्रकट कर ही दी थी, डाल्टन, रिचटर और प्राउस्ट जैसे मनीषियों ने परमाणुवाद, रासायनिक संयोग एवं भारों संबंधी नियम भी प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दिया

था। यह वर्जीलियस का ही काम था कि अपनी सुव्यवस्थित प्रयोगकला द्वारा, जो स्टास के शब्दों में अनुपम थी, वे इन नियमों का सत्यापन करते। डेवी, फैराडे, गेलुसैक, थेनार्ड जैसे तत्वान्वेषी भी इनके समकालीन थे जिनसे इनका व्यक्तिगत संपर्क भी रहा हैं। फ्रांस व जर्मनी के प्रमुख कार्बनिक रसायनवेत्ता शेवरूल, ड्यूमा, लारेंट, व लीबिग भी इनके समकालीन हैं। वर्जीलियस को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने बूलर, मौसांडर, मिशरलिश जैसी भावी प्रतिभाओं के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दिया है।

संक्षिप्त जीवनी

वर्जीलियस का जन्म स्वीडन में १७७९ के उत्तारर्द्ध में हुआ था और वे एक सामान्य शिक्षक के पुत्र थे। उनके मां-बाप बचपन में स्वर्गवासी हो गये थे, फलतः उनका पालन-पोषण उनके संबंधियों के घर ही हुआ। उन्होंने "जिमनाशियम" में प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण करते समय प्राकृतिक इतिहास में अपनी अभिरुचि जताई। उनके स्वभाव में कुछ ऐसी विशेषता थी कि वे विद्यार्थी जीवन में अपने गुरुजनों के प्रिय पात्र नहीं बन सके। यही कारण था कि प्राथमिक स्कूल छोड़ने के समय उन्हें जो प्रमाणपत्र दिया गया था, उसमें उन्हें संदिग्ध प्रतिभाशाली के रूप में चित्रित किया गया था। यद्यपि वर्जीलियस निर्धन थे फिर भी अपने उत्साह व योग्यता के बल पर वे उपसाला विश्वविद्यालय में डाक्टरी का शिक्षण लेने का प्रबन्ध कर सके। अपनी पुरानी प्रवृत्ति के कारण वे यहां भी लोकप्रिय न हो सके। एक बार तो उनके अध्यापक ने उन्हें इसी शर्त पर रसायन-शास्त्र में उत्तीर्ण करने की सिफारिश की थी कि वे अन्य विषयों में सफल हो जावें।

शिक्षा समाप्त कर उन्होंने २३ वर्ष की अवस्था में स्टाकहाम विश्वविद्यालय में औषधि एवं वनस्पतिशास्त्र का अध्यापन प्रारंभ किया और वहीं १८०७ में आचार्य बन गये। सन् १८१५ में वे एक नवीन औषध- संस्थान में रसायन के आचार्य बन गये और अपने अनुसंधान और भी सुगठित रूप में करने लगे। कुछ ही समय में इनके अनुसंधानों की धूम विज्ञान जगत् में फैल गई और उन्होंने लेवोशिये द्वारा स्थापित परम्परा को और भी सुदृढ तथा स्थायी बनाने के लिये जीवन पर्यन्त यत्न किया। मूर के अनुसार १८२० में उनकी स्थिति एक नियंता जैसी हो गई थी। उनकी सिद्धान्त स्थापना पटुता, संकेत-सूत्र-शब्दावली-निर्माण क्षमता ने उन्हें वैज्ञानिक जगत के द्वारा सन्मानयोग्य बनाया। इसके परिणामस्वरूप वे १८१८ में स्टाकहाम विज्ञान-संस्थान के मंत्री बने और १५ वर्ष तक इस पर काम किया। सन् १८३५ में चौदहवें चार्ल्स ने उन्हें 'बेरन' की उपाधि से सम्मानित किया और देश-विदेशों में उनका समादर हुआ।

अपने सक्रिय जीवन के अंतिम दिन उन्हें कुछ कठिनाई में बिताने पड़े, क्यों कि अपने जीवन के उषाकाल में अकथ परिश्रम व प्रयोग क्षमता से उन्होंने जिन नवीन तथ्यों व सिद्धान्तों की योजना की थी, उनमें कुछ त्रुटियां स्पष्ट दिखने लगीं जिन्हें वे अपने सिद्धान्त व परंपरा के पूर्वाग्रह के कारण स्वीकार न कर सके। फलतः अपने अन्तिम समय की कुछ कट्टरता के कारण उन्हें देश-विदेश के वैज्ञानिकों से काफी चखचख करनी पड़ी। उनकी मृत्यु ६९ वर्ष की अवस्था में सन् १८४८ में हुई।

वैज्ञानिक कार्य और साहित्यिक प्रतिभा

वर्जीलियस का कार्यकारी जीवन उनकी २३ वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ हुआ और निरन्तर ४६ वर्षों तक उसी रूप में चलता रहा है उन्होंने परमाणुवाद और रासायनिक संयोग के नियमों को अपने प्रयोगों द्वारा सत्यापित किया। वोल्टा और डेवी के प्रयोगों ने पदार्थों की क्रियाशीलता को विद्युत्मय बताया था, पर उसका सही व्याख्या और पुरस्थापन वर्जीलियस ने ही अपने 'विद्युत्-रासायनिक द्वैतवादी सिद्धान्त' के रूप में किया और लेवोशिये के ऑक्सीजन को अपना भी केन्द्रविन्दु मान कर एक नवीन जाल ही बिछा दिया जो बहुत ही प्रभावशील और आकर्षक था। लेवोशिये के समय (१७८६) में कुल २३ तत्वों का ज्ञान था, पर १८३० तक ५४ तत्व ज्ञात हो चुके थे और उनके अगणित यौगिकों का भी अनुसंधान किया जा चुका था। इनके सुव्यवस्थित रूप में अध्ययन करने के लिये एक वैज्ञानिक रासायनिक भाषा की आवश्यकता थी। इस ओर डाल्टन जैसे लोगों का भी ध्यान गया था, पर उसे सफलतापूर्वक वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय वर्जीलियस को ही मिला। इस भाषा को उन्होंने प्रामाणिक रूप दिया और सर्वमान्य बनाया जो आज भी प्रचलित है। भाषा के अतिरिक्त परिमाणात्मक प्रयोगकला का तो उन्हें विधाता ही कहना चाहिये। कुछ नये पारिभाषिक शब्द भी उनकी ही देन हैं।

वे केवल प्रयोग-प्रवीण ही नहीं थे, अच्छे लेखक भी थे। अपने शोध के परिणामों को तार्किक दृष्टि से अभिव्यक्त करने में भी वे सिद्धहस्त थे। उनके शोध-निबन्धों में उनकी गहन विद्वत्ता एवं अध्ययन शीलता की गहरी छाप प्रकट होती है। अपनी साहित्यिक प्रतिभा का मूर्त्तरूप हमें उनके द्वारा सम्पादित 'Jahrebriecht' नामक शोध पत्रिका में प्राप्त होता है, जो उन्होंने १८१० में प्रारम्भ की थी और जीवनपर्यन्त निकालते रहे। इस पत्रिका के लिये सभी देशों के प्रमुख वैज्ञानिकों का सहयोग उन्हें मिलता रहा है। उन्होंने १८०८ में रसायन-शास्त्र पर एक प्रामाणिक पुस्तक [Traite de chemie] भी लिखी, जो इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके कई संस्करण उनके जीवनकाल में ही निकले और उसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ। उनकी 'सिस्टम ऑव मिनरलोजी', 'थ्योरी आव केमिकल प्रपोर्शंस' आदि कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। अपने नवीन प्रयोगों-परिणामों के आधार पर उन्होंने रासायनिक विषयों पर ३० शोध-निबन्ध प्रकाशित किये। इन ग्रन्थों और शोध-निबन्धों का उनकी ख्याति पर अमोघ प्रभाव पड़ा।

अकार्बनिक रसायन-सम्बन्धी अनुसन्धान

जिस समय वर्जीलियस ने अपना अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ किया, उस समय स्टाकहोम में गाडोलिन वर्तमान इट्रियम के खनिज एवं अन्य खनिजों की छानबीन कर रहे थे। वर्जीलियस ने भी इस छानबीन में भाग लिया और १८०३ में सीराइट नामक एक नवीन खनिज से सीरियम ऑक्साइड (सिरिया) प्राप्त किया। खनिजों के अनुसन्धान के समय उन्हें उनके विश्लेषण की मौलिक विधियाँ भी काम में लेनी पड़ीं, फलस्वरूप १८१७ में उन्होंने सेलीनियम, १८२८ में थोरियम का पता लगाया और टाइटेनियम, जरकोनियम धातुओं को प्राप्त करने की विधि प्रस्तुत की। उन्होंने टेलूरियम एवं वेनेडियम जैसी अनेक दुर्लभ धातुओं के यौगिकों पर भी अपनी गवेषणायें कीं। इन गवेषणाओं के फलस्वरूप उन्होंने १८१४ में रासायनिक रचना के आधार

पर खनिजों व विभिन्न यौगिकों को वर्गीकृत किया। पहले प्रकार के सरल यौगिक तत्वों के संयोग से बनते थे, जैसे K तथा O के संयोग से पोटेश व S तथा O के संयोग से गन्धकाम्ल (उस समय क्षार और अम्ल ऑक्साइड ही माने जाते थे)। दूसरे प्रकार के यौगिक सरल यौगिकों के संयोग से बनते हैं, जैसे पोटेश सल्फेट = पोटेश + गंधकाम्ल। तीसरे प्रकार के संकुल यौगिक दूसरे प्रकार के यौगिकों के संयोग से बनते थे जैसे फिटकरी आदि। इस प्रकार उन्होंने रचना के आधार पर तीन प्रकार के यौगिक बताये।

भौतिक रसायन सम्बन्धी अनुसन्धान—विद्युत्-रासायनिक सिद्धान्त

वर्जीलियस के कार्य प्रारम्भ करने के कुछ ही समय पूर्व से वोल्टा और डेवी विद्युत् के रासायनिक प्रभावों पर अपना काम कर रहे थे और इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य भी सामने आने लगे थे। वर्जीलियस ने भी अपने सहयोगियों के साथ इस क्षेत्र में अभिरुचिपूर्वक काम किया। उन्हें यह पता था कि निकलसन ने १८०० में जल को विद्युत् द्वारा विच्छेदित किया था। अतः उन्होंने लवणों पर विद्युत् का प्रवाह देखा। सन् १८०३ में उन्होंने लवणों को विद्युद्विच्छेदित किया और अपने प्रयोगों के आधार पर निम्नलिखित परिणाम प्रकाशित किये—

(१) विद्युत् प्रवाहित करने पर पदार्थ विच्छेदित होकर विद्युदग्रों पर एकत्रित हो जाते हैं: H और धातुयें तो ऋणाग्र पर और O तथा अधातुयें या अम्ले धनाग्र पर। अतः विद्युद्विच्छेदन रासायनिक संयोग का विपर्यय है।

(२) पदार्थों का यह विच्छेदन पारस्परिक बन्धुता एवं विद्युदग्रों की सतह पर निर्भर करता है एवं यह विद्युत्-परिमाण व चालकता का अनुपाती होता है।

(३) विद्युत्-विच्छेदन के समय होने वाले रासायनिक परिवर्तन बंधुता के साथ आसक्ति पर भी निर्भर करते हैं।

ऑक्सीजन-सिद्धान्त का विस्तार और पतन के

लेवोशिये ने वायु, ज्वलन एवं पाचन-क्रियाओं में आक्सीजन की अनिवार्यता देखकर उसे ही अपनी रसायन-परम्परा का आधार बनाया था। इसके अनुसार यह सभी अम्लों में अनिवार्य था। डेवी ने बताया कि क्षारों में भी आक्सीजन होता है। अतः वर्जीलियस ने कहा कि रासायनिक संयोग अम्ल और क्षारों के योग से होता है और लवण बनते हैं। उसने बताया कि यद्यपि आक्सीजन अम्लोत्पादक है फिर भी यदि किसी पदार्थ में उसकी मात्रा कम हो, तो वह क्षारीय रूप भी ग्रहण कर सकता है। सन् १८१५ में सौ पृष्ठों का एक निबन्ध लिखकर इस ऑक्सीजन सिद्धान्त के सम-सामयिक प्रश्नों के सुलझाने का प्रयत्न किया पर इस सिद्धान्त में कुछ आपत्ति तो डेवी के विद्युद्विच्छेदत तथा अन्य विधियों से किये गये हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विश्लेषण ने उठाई ही थी, क्योंकि यह अम्ल तो अवश्य था, पर इसमें आक्सीजन किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं होता था। पहले डेवी की यह बात किसी ने नहीं सुनी, परन्तु गेलुसैक ने स्वयं ही हाइड्रोआयडिक तथा हाइड्रोसायनिक अम्ल सम्बन्धी प्रयोगों में अम्लता होने पर भी आक्सीजन की अनुपस्थिति पाई। फलतः उसने बरजीलियस को ऑक्सीजन-सिद्धान्त की न्यूनता प्रकट की और

बताया कि अम्लों में आक्सीजन का होना अनिवार्य नहीं है। वर्ज़ीलियस ने पहले तो इसे बिलकुल ही स्वीकार न किया, पर प्रयोगों की शृंखला ने उसे इस बात को मानने पर विवश कर दिया कि अम्ल दो प्रकार के होते हैं।

तुल्यांकभार और परमाणुभार

डाल्टन के परमाणुवाद और रिचटर के संयोजन भार सम्बन्धी नियमों से वर्ज़ीलियस बहुत प्रभावित हुआ था पर वे उस समय प्रामाणिक नहीं बन सके थे। उसने इन सिद्धान्तों को रसायनशास्त्र की आधार शिला के रूप में देखा और उन्हें प्रयोग सिद्ध कर सत्यापित करने में वह जीवन भर लगा रहा। इस सम्बन्ध में उन्होंने १८०७ से १८१८ तक खूब काम किया जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने तत्कालीन ४३ पदार्थों के लगभग २००० यौगिकों का निर्माण और विश्लेषण अपने हाथों किया। अपने प्रयोगों व परिणामों का प्रकाशन भी उन्होंने 'सरल और गुणक अनुपात नियमों के सत्यापन का प्रयत्न'' शीर्षक से अपनी पत्रिका में लगातार आठ वर्षों तक किया। इनके आधार पर ही उन्होंने पहले सन् १८१४ में, फिर संशोधित रूप में १८१८ में और पूर्ण संशोधित रूप में १८२६ में तत्वों के परमाणुभारों की एक सारिणी प्रकाशित की जिसका अन्तिमरूप काफी प्रामाणिक और अब भी प्रचलित कहा जा सकता है क्योंकि कुछ अपवादों को छोड़कर स्टास जैसे विश्लेषण-विशारद ने भी उन्हें बाद में सत्यापित कर दिया है।

रासायनिक संकेत

तत्वों और यौगिकों की संख्यावृद्धि के साथ उनके अभिव्यक्त करने के प्रयत्न लेवोशिये और डाल्टन ने किये थे, परन्तु वे या तो अपूर्ण थे, या संकुल थे; अतः असफल रहे। सन् १८०२ में थामस-थाम्सन ने संकेतों की अक्षरात्मक प्रणाली का प्रारम्भ किया था, पर वे संकेत मात्र, गुणात्मक थे एवं अपूर्ण थे। तत्वों के संकेतों को वर्तमान गुणात्मक और परिमाणात्मक रूपों में सफलतापूर्वक व्यक्त करने का श्रेय वर्ज़ीलियस को ही प्राप्त है। इसके अन्तर्गत उन्होंने तत्वों के लेटिन नामों के प्रारम्भिक तथा अन्य विशिष्ट अक्षरों का संकेत के रूप में प्रयोग किया तथा उसे परमाणुगत सभी परिमाणों का व्यंजक बताया। यह प्रणाली उन्होंने १८२६-३३ के बीच पूर्ण की यद्यपि इसका आभास सन् १८११ में ही मिल चुका था, जब वे परमाणुओं की संख्या को संकेत के दायें ऊपर की ओर लिखते थे; इसी प्रकार O तथा S गन्धक को विन्दु और रेखा से व्यक्त करते थे: H_2O उस समय H^2O के रूप में था। एक बार जब लीबिग ने उनके एक शोध-निबन्ध को प्रकाशित करते समय इन अंकों को आजकल की तरह नीचे की ओर लिखा, तो उन्होंने अपना विरोध व्यक्त किया था। इसके बावजूद भी जब परमाणु-संख्या दाहिनी तरफ नीचे की ओर लिखी जाती है एवं अणु-संख्या बायीं ओर साथ ही। इस प्रणाली के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि वे थाम्सन के आधार पर ही आगे बढ़ रहे हैं। परन्तु जब थाम्सन ने प्राउस्ट के मत के आधार पर तत्वों के परमाणुभार प्रसारित किये, तो अपनी सारिणी से भिन्न होने के कारण वर्ज़ीलियस ने उसे अपना कोपभाजन भी बनाया था। यह प्रणाली अपने विकसित रूप में १८२६ के बाद ही पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त होती दिखती है। लीबिग ने तो अपनी पुस्तक में १८४० में समीकरणों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

रासायनिक सूत्र

तत्वों की संकेत प्रणाली के साथ ही उन्होंने विभिन्न कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों के रचनाबोधक सूत्र भी प्राप्त किये। सूत्रों के निर्माण में उन्होंने अपने ही शिष्य के समावृतित्व नियम (१८१६) का पूरा उपयोग किया।

रासायनिक शब्दावली

वर्ज़ीलियस के युग में कार्बनिक रसायन का विकास प्रारम्भ हो गया था और उसके सम्बन्ध में काफी तथ्य सामने आ गये थे। कूलर व लीबिग के सायनेट व फुल्मिनेट के समान सूत्रों तथा स्वयं के टार्टरिक अम्ल के विभिन्न रूपों की एक सूत्रता तथा भिन्न गुणकता के कारण कार्बनिक पदार्थों में एक नये गुण की बात आई, जिसे उन्होंने 'आयसोमरिज्म' (समावयवता) नाम दिया। इसकी अच्छी छान-बीन करने पर इसी गुण के 'मेटामेरिज्म, पोलीमेरिज्म आदि रूपों का भी नामकरण किया। श्री बुन्सन के मूलक को 'काकोडिल' नाम भी इन्होंने ही दिया था। प्रेरणा द्वारा होने वाली क्रियाओं के लिये 'कैटलिसिस' नाम भी उनका ही है। उनकी यह शब्दावली आज भी प्रचलित है। यह शब्दावली १८२७-१८३५ के बीच प्रस्तावित हुई।

कार्बनिक रसायन सम्बन्धी अनुसन्धानः

रसायन की इस शाखा के प्रारम्भिक काल में इसके विकास के लिये जो कार्य किया है, वह अब मात्र ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण रह गया है। फिर भी हमें यह जान लेना चाहिये कि अपने विद्युत् रासायनिक सिद्धान्त एवं रासायनिक संयोग के नियमों को कार्बनिक पदार्थों के लिये भी लागू करने के लिये उन्होंने कार्बनिक पदार्थों की विश्लेषण-पद्धति का पूर्णतः संशोधन किया जो लेवोशिये ने चलाई थी। उन्होंने दहन-क्रिया से प्राप्त CO_2 तथा H_2O के शोषण के लिये $CaCl_2$ नामी व पोटेश घुंडियों के उपयोग का सुझाव दिया, तथा मात्र वायु दहन के बदले ओक्सीकारकों के साथ दहन करने की बात बताई। उनकी पद्धति में $KClO_3$ के बदले CuO लेकर कुछ परिवर्धन करके लीबिग ने वर्तमान विश्लेषण-विधि विकसित की। अपने विश्लेषणों के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध किया कि कार्बनिक पदार्थों का निर्माण भी अकार्बनिक पदार्थों के समान ही होता है, जैसी लेवोशिये की धारणा थी। इसी के फलस्वरूप उन्होंने विभिन्न पदार्थों साइट्रिक,टार्टरिक, ऑक्जेलिक, सक्सिनिक, चीनी के सूत्र प्राप्त किये जिनसे ज्ञात होता है कि कार्बनिक अम्ल भी ऑक्साइड या अनुद माने जाते थे। यदि सूत्रों में जलाणु जोड़ा जावे, तो वे प्रचलित सूत्रों के समान हो जाते हैं।

उन्होंने अपनी पुस्तक में उस समय ज्ञात प्रायः सभी कार्बनिक पदार्थों का विवरण दिया है और उनके निर्माण के विषय में 'मूलक-सिद्धान्त' का स्वरूप भी दिया है। उन्होंने १८१७ में लिखा था, "अकार्बनिक पदार्थ सरल मूलकों के आक्साइड होते हैं, और कार्बनिक पदार्थ संयुक्त मूलकों के ऑक्साइड हैं। वनस्पति पदार्थों के मूलकों में C और H होता है, और जान्तव पदार्थ के मूलक C, H और N से युक्त होते हैं।" सन् १८३७ में ड्यूमा व लीबिग ने भी एक संयुक्त स्मरणपत्र में यही बात सिद्ध की थी कि कार्बनिक पदार्थों में 'मूलक ऑक्सीजन' होता

है। अतः वर्जीलियस ने द्वैतवाद तो यहाँ प्रमाणित कर दिया, साथ ही उसमें विद्युत्-रासायनिकता भी स्पष्ट की।

मूलक-सिद्धान्त पर प्रहारः

प्रारम्भ में वर्जीलियस ने कार्बनिक पदार्थों के निर्माण और रचना पर मौन ग्रहण कर रखा था, और वे मानते थे कि ये पदार्थ ईश्वरीय शक्ति से ही बनते हैं। पर जब १८२८ में वूलर ने अमोनियम सायनेट से यूरिया प्राप्त कर कार्बनिक पदार्थ को प्रयोगशाला में बना लिया, तो फिर उन्होंने भी कार्बनिक पदार्थों के अन्वेषण व विश्लेषण की ओर ध्यान दिया। उन्होंने सरकोलेक्टिक, पिरुविक अम्ल आदि कई कार्बनिक पदार्थों की खोज की और विश्लेषण-पद्धति विकसित कर मूलक सिद्धान्त की प्रतिस्थापना की। उन्होंने बताया कि सभी मूलक विद्युत् धनी होते हैं और उनमें विस्थापन नहीं हो सकता। ये मूलक विद्युत् ऋणी O के साथ संयुक्त होकर कार्बनिक पदार्थ बनाते हैं। कार्बनिक पदार्थों में पाये जाने वाले विभिन्न मूलकों का पता गेलूसक, डेवी आदि ने १८१५ में ही लगाया था, पर उसके बाद १८३२-४३ के बीच इथिलीन (C_2H_4), इथिल (C_2H_5), मिथिल (CH_3), ऐसीटिल (C_4H_6), बेंजोइल (C_7H_5O) एवं काकोडिल मूलकों का पता चला और बुसन ने तो यहाँ तक बताया कि काकोडिल मूलक स्वतन्त्र अवस्था में भी प्राप्त किया जा सकता है। इन मूलकों की पुष्टि से वर्जीलियस का सिद्धान्त सत्यापित-सा होता दिखाई दिया। इन मूलकों की उपस्थिति ने 'मूलक सिद्धान्त' की बाहरी पुष्टि-मात्र की और वह भी कुछ ही समय के लिये थी।

एक जलती हुई मोमबत्ती के धुवें की गलाघोंट गंध के विश्लेषण के आधार पर ड्यूमा ने अपना 'विस्थापन-सिद्धान्त' प्रस्तुत किया जिसमें हैलोजन तत्व H को विस्थापित कर सकते थे। उसने विभिन्न कार्बनिक पदार्थों में विस्थापन के प्रयोग किये और बताया कि H का हैलोजन तत्वों से विस्थापन हो जाने पर भी ट्राइक्लोरो-एसीटिक अम्ल और क्लोरल जैसे यौगिक अपने जातीय गुणों को नहीं छोड़ते हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर श्री लारेंट ने १८३८-४० में कार्बनिक पदार्थों को द्वैतरूप से भिन्न एकरूपी बताया और केन्द्रक मत की प्रस्तावना की। यह मत पदार्थों को न तो वैद्युत ही मानता था, और न विभिन्न आवेश ही। विभिन्न कार्बनिक पदार्थ विस्थापन प्रक्रिया के आधार पर बनाये जा सकते हैं और प्रत्येक पदार्थ स्वयं अपनी इकाई है।

वर्जीलियस को तो कार्बनिक मूलकों के सम्बन्ध में पहले से ही आपत्ति थी, क्योंकि कुछ मूलकों में प्रकृत्या O था, जो वर्जीलियस के मत के विरुद्ध था। यद्यपि उन्होंने 'कोप्युला' के आधार पर एसीटिक अम्ल को बचा लिया पर जब १८४२ में ट्राइक्लोरो-एसीटिक अम्ल को पुनः एसीटिक अम्ल में परिणत करने का प्रयोग सफल हो गया, तब यह बचाव काम न कर सका। फलतः वर्जीलियस ने अपने ही सामने देख लिया कि उनका द्वैतवाद और मूलकवाद कार्बनिक क्षेत्र में लागू नहीं हो सकता। आगे चलकर कोब ने एसीटिक अम्ल के विद्युत्-विच्छेदन के द्वारा 'कोप्युला' मत को परिवर्धित किया है, पर उसका आशय वर्जीलियस से बिलकुल ही भिन्न है।

इस मूलक सिद्धान्त पर प्रहार करने वाले वैज्ञानिकों में ड्यूमा, कूलर, लीबिग जैसे प्रयोग प्रवीण व्यक्ति हैं, जो प्रायोगिक परिणामों पर अधिक विश्वास करते थे। उनके सिद्धान्तों के निर्माण का आधार प्रयोगमात्र था। यह देखकर सचमुच आश्चर्य होता है कि वर्जीलियस अपने अन्वेषण और शोध कार्य के प्रारम्भिक काल में जैसे प्रयोगवादी एवं उदार मनोवृत्ति के थे, अपने अन्तिम समय में वे कैसे इतने पूर्वाग्रही और अनुदार बन गये, जहाँ उन्होंने न अपने शिष्यों पर विश्वास ही कर पाया और न प्रयोगों की प्रामाणिकता ही मानी। प्रारम्भ में उनका चरित्र बहुत ही अनुकरणीय रहा है, यह बात हमें कूलर के संस्मरणों में स्पष्ट दिखती है, जो उसने १८२४ में उनसे भेंट करने पर लिखे थे। उनके अनुसार वे बड़े मनोरंजक और प्रसन्न मुद्रावाले व्यक्ति थे और तत्कालीन सभी वैज्ञानिकों से उनका व्यक्तिगत परिचय रहा है। कार्बनिक पदार्थों के मूलकों का पता लगाने पर उन्होंने लीबिग को 'नये युग के प्रारम्भ' के साथ बधाई भेजी थी। अन्त में अपने पूर्वाग्रह के कारण वे सबसे अपने निबन्धों द्वारा विलग से हो गये।

(शेष पृष्ठ ६५ का)

रही है, वह श्लाध्य है। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों से ऐसे ही और प्रयास हों, तो हिन्दी में प्रचुर वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित होने लगे जिसकी माँग सर्वत्र हो।

भारतीय वैज्ञानिकों के समक्ष समस्या :

भारतीय सरकार द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली के अंग्रेजी रूपों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य कई वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया गया था। किन्तु यह कार्य इतनी मन्थर गति से आगे बढ़ रहा है कि अभी दस वर्षों में भी सन्तोषजनक पूर्ण कार्य की सम्भावना नहीं। अभी तक केवल हाईस्कूल तथा इण्टर की पुस्तकों में आने वाले अंग्रेजी शब्दों के लिये हिन्दी शब्द निर्मित हुये हैं। फिर बी० एस-सी तथा एम० एस-सी कक्षाओं के लिये यत्न होंगे। पता नहीं इसमें कितने वर्ष लग जायँ। परन्तु शब्दावली के निर्माण से अधिक महत्वशाली एक और समस्या है जिसका हल शब्दशास्त्री नहीं वरन् सम्बन्धित वैज्ञानिकों को ही ढूँढ़ना होगा। यह है रसायन शास्त्र के लिये संकेतों तथा सूत्रों का हिन्दी में रूपान्तरण। यह बड़े ही दुख की बात होगी यदि हम संकेतों अथवा सूत्रों को अंग्रेजी में उसी प्रकार लिखते-पढ़ते रहें। असली आत्मा तो इन्हीं में है। अतः जब तक हिन्दी में ही उनके प्रस्तुतीकरण की योजना नहीं बन जाती, वैज्ञानिक कार्यों में हम हिन्दी को वास्तविक मान्यता नहीं प्रदान कर सकते। अंकों अथा संकेतों का अँग्रेजी में होना अन्तर्राष्ट्रीयता का परिचायक न होकर हमारी भाषागत आन्तरिक अक्षमता का निर्णायक होगा।

सार संकलन

भूगर्भ और सागर के अन्तराल की खोज

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष का एक लक्ष्य उन शक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना था, जो दिसम्बर, १९५८ में मंगोलिया में आये भूचाल जैसी विनाशकारी घटनाओं को जन्म देती हैं। भू-भौतिक वर्ष के दौरान ५५ राष्ट्रों द्वारा ३३४ भूचाल-अनुसन्धान केन्द्र संचालित किये गये थे। इनके अतिरिक्त १३७ ऐसे केन्द्र भी थे, जहाँ सूक्ष्म-भूकम्पों को अंकित किया गया था। ये अत्यन्त साधारण कोटि के भूकम्प तूफानों द्वारा उत्पन्न होते हैं। भूकम्प अनुसन्धान-केन्द्रो ने इन भूकम्पों की सहायता से दूर समुद्र में आने वाले तूफानों के स्थान का ठीक-ठीक पता लगाया। भूचाल सम्बन्धी अध्ययनों के अन्तर्गत जिन प्रमुख समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया, उन में से एक कोलोराडो और अफ्रीकी पठारों के सम्बन्ध में थी। ऐसा प्रतीत होता था कि इन पठारों पर सम-स्थिरता (आइसोस्टेसी) का सिद्धान्त लागू नहीं होता। इस सिद्धान्त के अनुसार, पृथ्वी के धरातल पर बड़ी-बड़ी भूशिलाएँ नीचे के प्लास्टिक के पदार्थों पर तैरती रहती हैं। जिस प्रकार कोई हिमखण्ड जितना ही अधिक बड़ा होता है, उतनी ही अधिक गहराई तक वह समुद्र के नीचे डूबा होता है, उसी प्रकार कोई भूशिला जितनी ही अधिक ऊँची होगी, उसका मूलाधार पृथ्वी की पपड़ी के अन्दर उतनी ही कम दूरी तक प्रविष्ट होगा।

कृत्रिम और प्राकृतिक भूकम्पों के अध्ययन से पता चला कि यह बात पृथ्वी की पपड़ी के महासागरीय और अधिकांश महाद्वीपीय भाग पर लागू होती है। पृथ्वी की गुरुत्वा-कर्षण शक्ति के अधिक सही निरीक्षणों से भी इस बात की पुष्टि हुई। अस्तु, महासागरों के नीचे यह सामान्यतः लगभग २० मील मोटी है। ऊँचे-ऊँचे पठारों के नीचे तो यह और भी अधिक मोटी-लगभग ३० मील-होगी।

ऊता विश्वविद्यालय में साल्टलेक सिटी के निकट बड़े-बड़े झंझावातों से उत्पन्न भू-प्रकम्पनों का अध्ययन करने से पहले के इस सन्देह की पुष्टि होती प्रतीत हुई कि वहाँ पर पृथ्वी की पपड़ी सागरतटीय मैदान के नीचे वाली पपड़ी से अधिक मोटी नहीं, यद्यपि गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी आंकड़ों से यह निर्दिष्ट था कि वह पपड़ी कहीं अधिक मोटी है। भू-भौतिक वर्ष के काल में अनुसंधानकर्ताओं की अनेक टोलियों ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। वाशिंगटन के कार्नेगी इन्स्टिट्यूट ने इस अवसर का लाभ उठाया कि पेरू और चिली की बड़ी-बड़ी खुली खन्दकों वाली ताँबे की खानों में नित्य ही ४० से ८० टन तक के डाइनामाइटों का विस्फोट होता है। इस के कारण प्रकम्पन-

लहरियों का अध्ययन उस अवस्था में करना सम्भव हो गया, जब वे समुद्र की सतह से ६४,००० फुट ऊँचे ऐण्डियन पठार को पार करतीं और पुनः टकरा कर वापस लौटती थीं।

पश्चिमी प्रशान्त महासागर की उमड़ती हुई लहरों के लगभग ७ मील नीचे, मेरियाना द्वीप समूह के पूर्व में, पृथ्वी के धरातल का सब से अन्धकारमय, काला और प्राणि-मात्र के निवास की दृष्टि से सबसे निकृष्ट स्थान स्थित है। भू-भौतिक वर्ष के काल में महा-सागरों के तलों में निर्मित जिन २३ खाइयों की विस्तृत जांच-पड़ताल की गयी, उन में से यह भी एक थी। इस खोज के फलस्वरूप पता चला कि यह सब से गहरी खाई थी। इस के लम्बे और संकरे पेंदे में किसी प्राणधारी जीव-जन्तु का अस्तित्व नहीं मिला। किन्तु, अन्य सभी समुद्री खाइयों में, अतीव दबाव और निरन्तर अन्धकार के होते हुए जीव-जन्तुओं का अस्तित्व मिला। आश्चर्य की बात यह थी, कि विकासवादी सिद्धान्त की दृष्टि से सभी वहां पाये गये प्राणधारी 'आधुनिक' श्रेणी के मिले।

कहा जाता है कि हमें अपनी ओर पड़ने वाले चन्द्रमा की सतह के विषय में जितनी जानकारी है, उस से कहीं कम जानकारी पृथ्वी के धरातल की है। इस का कारण मुख्यतः यह है कि पृथ्वी के धरातल का दो-तिहाई भाग पानी के नीचे छिपा हुआ है। इस कमी को पूरा करने के लिये, और समुद्र के नीचे दबे धरातल के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए, भू-भौतिक वर्ष में एक विशाल अभियान प्रारम्भ हुआ, जिस में २१ राष्ट्रों के ८० जहाजों ने भाग लिया। इस में से कुछ जहाजों ने कई मील गहरे समुद्र जल में लंगर डाल कर जल-धाराओं की नाप करने और समुद्र के पेंदे में छिपी स्थिति का पता लगाने का प्रयत्न किया। एक ब्रिटिश-अमेरिकी अनुसन्धानकर्त्ता दल ने उत्तरी ध्रुव से लेकर सीधे दक्षिणी ध्रुव तक अतलान्तक महासागर के प्रत्येक गहरे भाग का सर्वेक्षण किया और उस के तल तक के ताप, खारेपन और ऑक्सीजन-तत्वों के आंकड़े एकत्र किये।

किन्तु इस दिशा में सब से व्यापक प्रयास अमेरिका और रूस द्वारा किये गये। सोवियत दल की रुचि विशेष रूप से सागर तल की खाइयों में थी, और सचमुच पृथ्वी के महासागरों में सब से गहरे स्थान की खोज का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने महासागरीय अनुसन्धान के लिए जिस जहाजी बेड़े का उपयोग किया, उसमें ३० जलयान सम्मिलित थे, जिन में से १२ महासागरों की यात्रा में प्रयुक्त होने वाले बड़े जहाज थे। उनका केतुवाहक पोत 'वित्याज' था जिसका भार ६ हजार टन था। उस में ७० अनुसन्धानकर्त्ताओं की टोली थी। इस ने भू-भौतिक वर्ष की अपनी पहली सागर-यात्रा की अवधि में समुद्र के सबसे गहरे स्थान का पता लगा लिया था।

यह सच है कि सागर तल की इस सबसे गहरी खाई के अस्तित्व की जानकारी पहले से थी। इसे मानचित्रों में 'नीरो-सागर' या 'मेरियाना खाई' के नाम से अंकित किया जाता था। १९५७ के अगस्त में सोवियत जहाज ने इस खाई के तल की खोज करने के लिये उसमें से जल फेंकने का प्रयत्न किया। उस का उद्देश्य यह पता लगाना था कि वहां कौन से जीव-जन्तु निवास करते हैं। जांच से पता चला कि इस की अधिकतम गहराई

३६,०५६ फुट थी। आश्चर्य की बात यह थी कि खाई का पेंदा समतल था और कहीं-कहीं एक मील से कम चौड़ा था। विपरीत दिशाओं से उठने वाले झंझावातों के कारण जलयान को एक जगह खड़ा कर पाना कठिन था। फल यह हुआ कि गहराई नापने के लिए पहली बार जो जाल डाल गया, वह पेंदे में न गिर कर खाई के किनारे पर पड़ा। इसमें फंस कर जो कुछ ऊपर आ सका, वह सीमेण्ट जैसी मिट्टी की एक पट्टी थी, जिस में किसी भी जीवधारी का अस्तित्व नहीं था। दूसरी बार के प्रयत्न में भी कुछ फल न निकला, क्योंकि जाल खाई के पेंदे तक नहीं पहुँच सका था। तीसरी बार फिर जाल डाला जया। इस बार वह ६.८ मील की गहराई तक गया। इस जाल को पेंदे तक पहुंचाने और ऊपर खींच कर लाने में १२ घण्टे से अधिक समय लगा। जब यह समुद्र की सतह के ऊपर खींच कर ला दिया गया, तो रूसियों ने देखा कि जाल के थैले में बहुत कुछ पड़ा हुआ है। किन्तु दुर्भाग्य वश, उसी समय एक लहर आ जाने से थैले का सारा कीचड़ बह गया। जो कुछ बच गया था, उस में चिकनी मिट्टी के बंधे हुए पिण्ड थे। अतः इस बार भी यह निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था कि इस खाई के तल में किसी प्रकार के प्राणधारी का अस्तित्व नहीं। कर्माडेक सागर-तल में सोवियत अनुसन्धानकर्त्ताओं को १५ प्रकार के प्राणधारी पदार्थ मिले, जिन में से कितने ही सर्वथा नवीन थे। पश्चिमी प्रशान्त की इसी प्रकार की अनेक खाइयों का सर्वेक्षण करने के बाद, उनकी यह धारणा हो गयी कि प्रायः सभी समुद्री खाइयों में जीव-जन्तुओं का अस्तित्व है, यद्यपि उनमें इन जीवधारियों की संख्या बहुत ही कम है। उदाहरण के लिए, महासागरीय अनुसन्धान करने वाले लेव अलेवजैण्ड्रिविच जैन्केविच नामक सोवियत प्राणिशास्त्री ने यह अनुमान लगाया कि जहां तटों के निकट महासागरीय तल के प्रत्येक वर्ग गज क्षेत्र में पाये जाने वाले जलचरों की मात्रा कई पौण्ड है, वहीं कुल महासागरीय तले के ८० प्रतिशत क्षेत्र में उनकी मात्रा एक औंस के १०-हजारवें अंश से कम है।

अमेरिका और रूस, दोनों देशों के महासागरीय अनुसन्धानकर्त्ताओं ने यह देखा कि समुद्री खाइयों में जीवन का अस्तित्व विकास की अर्वाचीन अवस्थाओं तक ही सीमित है। इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए एक तर्क यह दिया गया है कि समुद्री खाइयां बहुत पुरानी नहीं हैं। उनका उद्भव अभी थोड़े ही समय की बात है। वे उन दरारयुक्त सन्धि-रेखाओं पर बन गयी हैं, जहां पृथ्वी की पपड़ी का महासागरों के नीचे पड़ने वाला भाग परिवर्तनशील महाद्वीपीय भू-खण्डों से मिलता है।

अनुमान है कि पुरानी समुद्री खाइयां तले की कीचड़ से पट गयी हैं। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के लेमौण्ट भूगर्भ-प्रयोगशाला के जहाज 'वेमा' ने सागर तल की विस्फोटक प्रतिध्वनियों का अध्ययन करके इस प्रकार की पटी हुई एक खाई का पता दक्षिण अतलान्तक में लगाया था। यह खाई 'साउथ सैण्डविच' खाई का ही एक अंश थी, जोकि ६॥ मील गहरी थी। अमेरिका ने भूगर्भ एवं सागर-तल के अनुसन्धान के लिए जो कार्य-क्रम तैयार किया, उसे वहां की महासागरीय सर्वेक्षण करने वाली अनेक संस्थाओं ने कार्यान्वित किया। उड्स होल, मैसाचूसेट्स की संस्था, ने ब्रिटेन के 'नेशनल इन्स्टिट्यूट

आफ औशनोग्रैफी' के सहयोग से अतलान्तक के आरपार दस सर्वेक्षण-यात्राओं का आयोजन किया था।

इस सम्बन्ध में डूबने वाले पीपे के ऐसे लंगरों का प्रयोग किया गया जो कि एक विशेष गहराई तक जा कर रुके रहें। उनकी सहायता से 'गल्फ स्ट्रीम' नामक समुद्री धारा के नीचे विपरीत दिशा में प्रवाहित धारा के अस्तित्व की पुष्टि की जा सकी। इन पीपे के लंगरों को विपरीत दिशाओं में डाल दिया गया था। उन्हें जहाज से समुद्र में फेंका गया, और फिर शब्द-सकेतों द्वारा बहाव के समय उनका पीछा किया। प्रशान्त महासागर की समुद्री धाराओं की गतिविधियों का अध्ययन करते समय कई मील की गहराई में लंगर डालने के सिलसिले में एक अन्य विधि का भी प्रयोग किया गया। इसका प्रयोग लाजोला, कैलिफोर्निया, में 'स्क्रिप्स इन्स्टिट्यूशन आफ ओशनोग्रैफी' ने प्रशान्त महासागरीय मत्स्य अनुसन्धान संस्थान की ओर से प्रदान किये गये एक जलपोत की सहायता से किया। इन अनुसन्धानों के फलस्वरूप महासागरों के तले के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की गयी। यह पता लगाया गया कि अल्यूशियन द्वीप से हवाई के दक्षिणी भाग तक फैली हुई एक पर्वत-शृंखला प्रशांत महासागर को उसी प्रकार दो भागों में विभाजित करती है, जिस प्रकार मध्य-अतलांतक पर्वत-शृंखला अतलांतक को विभाजित करती है। सोवियत अनुसन्धान-कर्ताओं के दल ने दक्षिणी ध्रुवसागर के मिर्नी और अडूलाई लैण्ड और दक्षिण अफ्रीका के बीच सागर तट के निकट होती हुई एक ४,६०० फुट गहरी समुद्री खाई के अस्तित्व का पता लगाया, जो कि ज्वालामुखी पर्वतों और अन्य चट्टानी भूखण्डों के कारण कहीं-कहीं विशृंखल हो गयी है।

(शेष पृष्ठ ६४ का)

आवश्यकता होती है, जो ३-४ औंस हरी तरकारी से भली भाँति मिल सकता है। जिन बच्चों को माँ के पेट में विटामिन 'ए' पूरा नहीं मिलता और पैदा होने के बाद भी इसकी कमी बनी रहती है, उनकी आँखें खराब हो जाती हैं और वे कुछ दिन बाद अंधे हो जाते हैं।

इस समस्या को हल करने का उपाय यह है कि उन गर्भवती स्त्रियों को जो मक्खन, अंडे या दूध नहीं खा-पी सकतीं, प्रतिदिन ३ औंस हरी तरकारियाँ अवश्य खानी चाहिये। बच्चे को भी ६ महीने के बाद अच्छी प्रकार पकायी हुई तरकारियाँ खिलानी चाहिये। शिशु केन्द्रों में माताओं को सिखलाना चाहिये कि वे बच्चों की आँखों से शरीर में विटामिन 'ए' की कमी का कैसे पता लगा सकती हैं।

विज्ञान वार्ता

नयी किस्म की राल से चुपड़े हुए वस्त्रः

शिकागो की मिन्नेसोटा माइनिंग ऐण्ड मेन्यूफैक्चरिंग कम्पनी ने एक ऐसा राल तैयार किया है जिसे धागों पर पोत देने से नाइलोन, डैकरोन, ग्लास क्लाथ और दूसरे प्रकार के वस्त्रों पर गैसलीन तथा अन्य गला देने वाले पदार्थों का कोई भी प्रभाव नही पड़ सकता और साथ ही विभिन्न अंशों तक ताप के भीतर उनकी दृढ़ता और लोचशीलता बनी रहेगी। इस राल को पोत देने से बागों में पौधों में गेरुई नहीं लग सकती, न ही उन पर हवा या खारे पानी का कोई प्रभाव पड़ सकता है। धूप के निरोध करने में भी वह अधिक अच्छे सिद्ध होंगे।

रक्त को जमा कर सुरक्षित रखने की विधिः

अमेरिकी नौसेना विभाग के एक सर्जन ने अटलाण्टिक सिटी स्थित अमेरिकन कालेज ऑफ सर्जन में भाषण करते हुए बताया कि रक्त को ठण्डा कर के जमा देने से उसे कई वर्ष तक उपयोग में लाया जा सकता है। ऐसा करने से एक लाभ यह भी होगा कि रक्त का निर्माण करने वाले तत्वों को पृथक कर के भावी उपयोग के लिए पृथक-पृथक जमाया जा सकता है। प्रायः इन तत्वों की पृथक-पृथक आवश्यकता भी पड़ती है, जिसे इस विधि द्वारा आसानी से पूरा किया जा सकता है। नौसेना विभाग के सर्जन ने बताया कि इस सम्बन्ध में यदि कोई कमी है, तो केवल यह कि इन तत्वों को पृथक करके संग्रह करने की विधि बहुत खर्चीली है। अतः इसमें लागत बहुत अधिक पड़ेगी।

कीटाणु नाशक विषैले तत्व की खोजः

अमेरिकी चिकित्सकों के एक सम्मेलन में प्रस्तुत रिपोर्ट के अनुसार पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा हानिरहित विषैला तत्व पृथक किया है जो औषधि-निरोधक कीटाणुओं पर आक्रमण करता है। इस तत्व का नाम 'फेग' है। वह शरीर के भीतर ऐसे प्राणघातक कीटाणुओं (स्टेफाइलोआयोकस) पर भी आक्रमण करता है, जिन पर इधर कुछ समय से कोई भी औषधि कारगर नहीं सिद्ध हो रही थी। इन कीटाणुओं की विशेषता यह है कि इनके विरुद्ध जो भी औषधि प्रयुक्त की जाती हैं, उसके अनुरूप वे अपने स्वभाव को बदल कर जीवित बने रहते हैं। नवीन विषौषधि इन कीटाणुओं पर भी आकमण करती है; यह सही है कि इसका प्रभाव अनिवार्यतः इतना

नहीं होता कि कीटाणु निष्क्रिय हो जायें। किन्तु इसके फलस्वरूप कीटाणु इतने निर्बल हो जाते हैं कि मनुष्य के शरीर की सामान्य प्रक्रियाओं के अन्तर्गत वे नष्ट हो सकते हैं।

विश्व का सबसे बड़ा रडार ऐण्टेन्नाः

अमेरिकी सुरक्षा विभाग ने अभी हाल में घोषणा की है कि पृथ्वी के ऊपरी वायु-मण्डल और सौरमण्डल की शोध करने के लिए अमेरिका प्योटोरिको में एक राडर प्रेषक-ग्राहक यन्त्र (ऐण्टेन्ना) निर्मित करने का आयोजन कर रहा है, जो विश्व में अपने प्रकार का सबसे बड़ा यन्त्र होगा। घोषणा में बताया गया है कि इस राडर ऐण्टेन्ना को ४५ लाख डालर के व्यय से २ वर्ष में तैयार किया जायेगा। योजना करने वाले अधिकारियों ने बताया कि इस रडार प्रेषक-ग्राहक यन्त्र का आकार तश्तरी जैसा होगा। इस का व्यास १००० फुट होगा। यह यन्त्र इतना शक्तिशाली होगा कि इस के द्वारा चन्द्रमा और सूर्य के विभिन्न भागों का मानचित्र खींचा जा सकेगा। यह यन्त्र २० हजार मील की दूरी पर स्थित १ वर्ग गज आकार वाले पदार्थ का भी पता लगा सकने में समर्थ होगा। वह सीधे सिर के ऊपर लगभग ४०० मेगासाइकिल्स के न्यूनतर चक्र पर रेडियो संकेतों की रुक-रुक कर निकलने वाली किरणें फेंकेगा।

अनुमान है कि अन्तरिक्ष में जिन पदार्थों पर रेडियो-संकेत वाली किरणें फेंकी जायेंगी, उनसे ऐण्टेन्न पर वापस आने वाले प्रतिबिम्बों से अनेक प्रकार के वैज्ञानिक आंकड़े प्राप्त होंगे। इसके अतिरिक्त यह रडार ऐण्टेन्ना पृथ्वी के ऊपर ४,००० मील से भी अधिक दूरी पर वायुमण्डल के विद्युदणुओं के घनत्व और शक्ति की ऊँचाई और दिन के समय के सन्दर्भ में नापेगा। साथ ही, ऊपरी वायुमण्डल की अयनीयता की नाप करना, पृथ्वी को चारों ओर से घेर रखने वाले विद्युतीय चक्र की खोज करना, मंगल और बुध ग्रहों से प्राप्त रडार प्रतिध्वनियों को ग्रहण करना तथा सूर्य और चन्द्र के विभिन्न क्षेत्रों का मानचित्र तैयार करना भी इसका कार्य होगा।

पोषक भोजन का अभावः

पिछली जनगणना से पता चलता है कि भारत में शिशुओं की मृत्यु संख्या बहुत से पश्चिमी देशों से ५-६ गुनी अधिक है। हमारे देश में १००० बच्चो में से ११५ से १२० पहले साल में ही मर जाते हैं। इनमें से २५ प्रतिशत पहले सप्ताह में ही कालकवलित हो जाते हैं और ४० प्रतिशत पहले महीने में।

यह भयानक मृत्यु संख्या यह बताती है कि गर्भावस्था में माताओं को पोषक भोजन न मिलने से उनके बच्चे बहुत दुर्बल होते हैं, जो अधिक नहीं जी पाते। यही कारण है कि गरीबों के बच्चे बहुत मरते हैं। दुर्बल बच्चों को बहुत सी यकृत की बीमारियां भी सताती हैं।

गरीब परिवारों के बच्चों के लिये पहले ६ महीने बहुत सुखद रहते हैं, क्योंकि इस अवस्था में बच्चे को जो भी पोषक तत्व चाहिये, वे सब मां के दूध से मिल जाते हैं। उल्टे समृद्ध वर्ग की स्त्रियों के दूध मे पोषक पदार्थ कम होते हैं और वे बच्चों का पेट भी नहीं भर सकतीं। ऐसा ज्ञात होता है कि दूध पिलाने की क्रिया में पोषक तत्वों की अपेक्षा मातृत्व भावना का अधिक हाथ रहता है। मां का दूध चाहे जितना अच्छा हो पर ६ महीने के बाद बच्चे का केवल इसी से काम नहीं चलता। ६ मास के बाद उसके लिये प्रोटीन आवश्यक हो जाता है। पर गरीबों के बच्चों को प्रोटीनयुक्त भोजन नहीं मिलता। इस कारण उनके १ साल से ५ साल तक के बच्चे तरह-तरह की बीमारियो के शिकार हो जाते हैं। इसी अवस्था में पोषक पदार्थों की बहुत अधिक आवश्यकता होती है।

बच्चों की अकाल मृत्यु ही दुखदायी नहीं, इससे कहीं बढ़ कर दुर्भाग्य की बात है इनके किसी अंग या इन्द्रियों का सदा के लिए बेकार या अशक्त हो जाना। इन सबसे भी बुरा है आँखों का जाते रहना। भारत में अंधों की संख्या लाखों में हैं। इनमें से अधिकांश को यदि विटामिन 'ए' युक्त खाना मिलता तो इनकी आँखे न जातीं। बच्चों को बढ़ते समय विटामिन 'ए' की और भी अधिक आवश्यकता होती है। विटामिन 'ए' की साधारण कमी से बच्चों की आँखों का सफेद भाग गीला, सफेद, चमकदार न होकर मैला और सूखा पड़ जाता है। इसके बाद बच्चे को रतौंधी आने लगती है और यदि मां समझदार है तो वह सावधान हो जाएगी। रतौंधी असाध्य रोग नहीं। लेकिन यही रोग बढ़ कर पुतल को खराब करने लगता है। पहले इसकी पारदर्शकता नष्ट होती है और यह ऊपर उभरी आती है। रोग के और बढ़ने से पुतली फट जाती है और इसके भीतर का देखने वाला लैंस भी नष्ट हो सकता है। दक्षिण भारत और बंगाल में विटामिन 'ए' की कमी के कारण अधिक लोग आँखें खो देते हैं। इसलिए बच्चों की रक्षा एक सार्वजनिक समस्या है।

धनवानों के लिए विटामिन 'ए' का साधन है—मक्खन, अंडे और कलेजी इत्यादि और गरीबों के लिए ऐसी बहुत सी हरी तरकारियाँ हैं और फल जिनमें कैरोटीन होता है। कैरोटीन से शरीर में विटामिन 'ए' बन जाता है। २ से ३ वर्ष तक के बच्चों को लगभग २००० इण्टरनेशनल यूनिट विटामिन 'ए' की आवश्यकता होती है। भिन्न-भिन्न तरकारियों में कैरोटीन की मात्रा भी भिन्न होती है। फिर भी प्रतिदिन १ से २ औंस हरी तरकारियाँ खाने से पर्याप्त विटामिन 'ए' शरीर को मिल जाता है। बच्चे को आवश्यक विटामिन 'ए' देने वाली तरकारियों का दाम शहरों में दो नये पैसे होगा और गाँवों में और भी कम। दूसरे, विटामिन 'ए' तरकारी के पकाने में आसानी से नष्ट नहीं होता। इसलिये बच्चे को उसके स्वाद के अनुसार तरकारी खिलाई जा सकती है। विटामिन 'ए' की एक विशेषता है कि यह यकृत में जाकर एकत्र हो जाता है। इस प्रकार यदि हरी तरकारियों के मौसम में इन्हें खूब खाया जाये तो उस मौसम में भी शरीर को विटामिन 'ए' की कमी नहीं पड़ेगी जिसमें ये नहीं मिलतीं। गर्भवती स्त्रियों को प्रतिदिन ४००० इन्टर० यू० विटामिन 'ए' की

(शेष ६१ पृष्ठ पर)

वैज्ञानिक जगत में हिन्दी की प्रतिष्ठा

एक वर्ष पूर्व वैज्ञानिक पत्रिका 'एनडेवर' में सम्पादकीय टिप्पणी के रूप में यह आशा प्रकट की गई थी कि निकट भविष्य में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में हिन्दी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। उस टिप्पणी में वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं में प्रयुक्त महत्वपूर्ण भाषाओं का उल्लेख करते हुये सम्पादक ने अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच तथा इटैलियन के पश्चात् रूसी भाषा का भी उल्लेख भी किया है क्योंकि रूस की वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही रूसी भाषा का वैज्ञानिक जगत में उत्थान एवं सम्मान अवश्यम्भावी है। अंग्रेजी की एक दूसरी मासिक पत्रिका, "केमिल एजुकेशन" के अक्टूबर १९५९ के अंक में एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें रासायनिक संक्षिप्तियाँ प्रस्तुत करने में प्रयुक्त पचास भाषाओं की चर्चा है। इस लेख में एशिया की कुछ भाषाओं के नाम आये हैं जिनमें फारसी, अरबी, श्यामी तथा हिन्दी प्रमुख हैं। रूसी भाषा के साथ ही चीनी भाषा को भी महत्व प्रदान किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक क्षेत्र में हिन्दी के प्रति इस सहिष्णुता के कई कारण हो सकते हैं। आज भारत में विज्ञान के विविध अंगों पर जो महत्वपूर्ण शोध कार्य हो रहे हैं, वे अंग्रेजी या अन्य माध्यमों से सबों को ज्ञात होते रहते हैं किन्तु यह सर्वविदित है कि भारत जैसे विशाल राष्ट्र में अंग्रेजी बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगी। जब हिन्दी यहाँ की राष्ट्रभाषा घोषित हो चुकी है तो अवश्य ही निकट भविष्य में यहाँ की वैज्ञानिक शोधें भी हिन्दी में प्रकाशित हो देश के कार्यकर्त्ताओं के लिये सुलभ की जावेंगी! उनके समक्ष रूस, चीन,इटली या अन्य राष्ट्रों के उदाहरण हैं जहाँ सम्पूर्ण साहित्य वहीं की भाषा में प्रकाशित हो प्रसारित किया जाता है। इन समस्त भाषाओं के अंग्रेजी रूपान्तरण की व्यवस्था एक भारी समस्या प्रतीत होती है किन्तु बहुत पहले से ही उसको सम्पादित किया जा चुका है। "केमिकल एबस्ट्रैक्ट" ने सन् १९५८ से ही हिन्दी की सर्वप्रथम अनुसन्धान पत्रिका, "विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" की सामग्री को संक्षिप्तीकरण के लिये अपनी सूची में सम्मिलित कर लिया है। उसी के उपरान्त समस्त वैज्ञानिकों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक अनुसन्धानों को हिन्दी में प्रकाशित करके, हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गौरव प्रदान किया जा सकता है किन्तु खेद है कि हमारी केन्द्रीय सरकार ऐसे प्रकाशनों के प्रति उदासीन है। "विज्ञान परिषद्" एक सार्वजनिक संस्था होते हुये भी हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिये जो सत्प्रयास कर

(शेष पृष्ठ ८७ पर देखिये)

साइको की आयताकार गर्म प्लेटें

माडल एच० पी० आर०
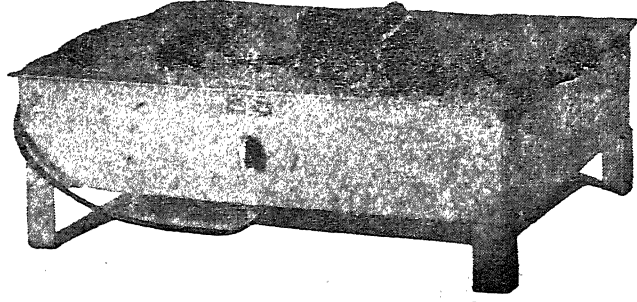
भट्टी पर सुखाये गये भूरे क्रिकल वाली ताप-पट्टिका अत्यन्त कार्यकुशल एवं टिकाऊ है। यह २३० वोल्ट विद्युद्भार पर ए० सी, डी० सी० विद्युत् द्वारा सञ्चालित की जाती है। ऐंगिल-लौह के चौखट्टे पर स्थित इस यंत्र का ऊपरी भाग मोटे इस्पात का बना है जिससे इसकी ताप-क्षमता अधिक है। दीर्घ काल तक काम देने वाले तापक एक घूमने वाली व्यवस्था से संलग्न हैं जिससे तीन बार में विद्युत् शक्ति को शून्य से अधिकतम क्षमता तक परिवर्तित किया जा सकता है। यंत्र से संलग्न उपयुक्त विद्युत तार और प्लग भी हैं।

विशेष विवरण

माडल	आकार	अधिकतम क्षमता (वाट में)
एच० पी० आर०—१	३०० मि० मी० × २२५ मि० मी० (१२" × ९")	७५०
एच० पी० आर०—२	४५० मि० मी० × ३०० मि० मी० (१८" × १२")	१५००
एच० पी० आर०—३	६०० मि० मी० × ४५० मि० मी० (२४" × १८")	२२५०

'विज्ञान' में विज्ञापन

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रत वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	४०० रु०
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	५०० ,,
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०० ,,
,, आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२० ,,
,, चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये १५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिये।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक कमीशन जोड़ कर भेजा जाय।

साथ भेजे हुये ब्लाकों को परिषद स्वीकार करेगा।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

(त्रैमासिक)

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है।

विश्व के सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थानों पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समाहृत है।

सामान्य सदस्यों के लिये वार्षिक शुल्क ८) । 'विज्ञान' के सभ्य ४) अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक या मासिक होने की सम्भावना है।

प्रधान सम्पादक—डा० सत्य प्रकाश
प्रबन्ध सम्पादक—डा० शिव गोपाल मिश्र

मगाने का पता

विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका,
विज्ञान परिषद्,
थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२

प्रकाशक—डा० आर० सी० कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९०	२०१६ विक्र०; पौष १८८१ शाकाब्द; जनवरी १९६०	संख्या ४

रुद्रयामल तन्त्र और रसायन

डा० सत्यप्रकाश

नागार्जुन की परम्परा में रसायन का इस देश में विकास हुआ और समय-समय पर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। रस रत्नाकर, रसार्णव, रस प्रदीप, रस चिन्तामणि और रस रत्न समुच्चय ग्रन्थों ने अच्छी ख्याति प्राप्ति की। इस साहित्य की रचना नागार्जुन के समय से लेकर १७ वीं शती ईसवी तक बराबर होती रही। दो सहस्र वर्षों के इस साहित्य में पूर्ववर्त्ती साहित्य की बहुत कुछ पुनरावृत्ति ही हुई, पर फिर भी कुछ आचार्यों ने सर्वदा ही अपने अनुभूत नये प्रयोगों को भी अपने ग्रन्थों में समाविष्ट किया। हम इस निबन्ध में "रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत सप्तधातु निरूपणम्" नामक ग्रन्थ का कुछ परिचय देंगे। आचार्य्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने रुद्रयामल तन्त्र का उल्लेख कई स्थलों पर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "हिन्दू-केमिस्ट्री" में किया है। कहा जाता है कि ईसा की सोलहवीं शती में भैरवानन्द नामक कोई तान्त्रिक योगी था जिसने उमा महेश्वर संवाद के रूप में रुद्रयामल नामक एक वृहद्-ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ की बौद्धभिक्षुओं में रस-ग्रन्थ के रूप में अच्छी प्रतिष्ठा थी। रसायन-वाद का यह प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता रहा है। कुछ विचारकों की दृष्टि में रुद्रयामल तन्त्र प्रचीन रसायन-वाद का अन्तिम ग्रन्थ है।

सम्पूर्ण रुद्रयामल तन्त्र तो हमें देखने को नहीं मिला। उस ग्रन्थ के अन्तर्गत "सप्तधातु निरूपणम्" नामक एक ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन जनता के लाभार्थ हमारे मित्र और पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष श्री हरिशरणानन्द स्वामी ने अभी हाल में किया है। इसकी एक हस्त-लिखित प्रति महाराष्ट्र राज्यान्तर्गत संखेड़ा ग्राम के निवासी विनायक राव सदाशिव जी दस्तूर के पास थी, जिसकी नकल यादव जी त्रिक्रम जी महोदय ने की (१९५५ संवत्सर, १८३१ शाके,

ज्येष्ठ १०)। जो हस्तलिपि प्राप्त हुई, उसका पाठ अनेक स्थलों पर भ्रष्ट था और उस लेख से यह भी प्रकट होता था कि प्रतिलिपिकार को संस्कृत का अधिक ज्ञान नहीं है। यह हस्तलिखित प्रति अपूर्ण भी थी। सौभाग्यवश स्वामी हरिशरणानन्द जी को इस ग्रन्थ की एक अन्य प्रति पं० कृष्णगोपाल महोदय के पास मिली जो काशीवास्तव्य पं० हरिदास लिखित थी। इन दोनों प्रतियों और उन उद्धरणों की सहायता से जो आ .ार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपने ग्रन्थ के अन्त में दिये हैं, स्वामी हरिशरणानन्द जी ने इस "रुद्रयामल तन्त्रसप्तधातु निरूपणम्" का संपादन किया है। इस १२६ पृष्ठ के ग्रन्थ में १७६५ के लगभग श्लोक हैं (प्रस्तुत ग्रन्थ में श्लोकों की जो क्रम संख्या दी गयी है, वह कई स्थलों पर त्रुटिपूर्ण हो गयी है।)

प्रस्तुत ग्रन्थ अध्याय अथवा प्रकरणों में विभाजित नहीं है। पर बीच-बीच में कुछ इति-वाक्य पाये जाते हैं—

(क) पृ० ४३ पर श्लोक सं० ६०४ के बाद —"...इति श्री रुद्रयामले उमा-महेश्वर संवादे लोह विधान सम्पूर्णम्"

(ख) पृ० ५४ पर श्लोक सं० ७५१ के याद— "...जासत्व विधानं समाप्तम्"

(ग) पृ० ५६ पर श्लोक सं० ८१७ के बाद— "...नाग विधानं समाप्तम्"

(घ) पृ० ६२ पर श्लोक सं० ८६५ के बाद— "...वंग विधानं समाप्तम्"

(ङ) पृ० ६८ पर श्लोक सं० ९४१ के बाद— "...हरिताल विधानं समाप्तम्"

इसके बाद "अथ स्वर्ण विधानम्"

(च) पृ० ६१ पर ३१६ श्लोकों के बाद— "इति श्री रुद्रयामले उमामहेश्वर संवादे अष्टविंशतितम् पटले पीत शुल्व विधानम्" ॥६॥

(छ) पृ० १२३ पर—"इति श्री रुद्रयामले उमा-महेश्वर संवादे धातुकल्पे ताम्र विधानं समाप्तम्"

(ज) पृ० १२८ पर—"इति श्री रुद्रयामले उमा-महेश्वर संवादे रजतक्रिया समाप्तम"

(झ) ग्रन्थ के अन्त में पृ० १२६ पर "इति श्री रुद्रयामले उमामहेश्वर संवादे स्वर्णादिविधि समाप्तम्। इति शिव पार्वती सम्वादे सप्तधातु निरूपणम्"

इस प्रकार विभिन्न प्रकरणों में इस ग्रन्थ में लोह, जासत्व (जस्ता या यशद), नाग (सीसा), वंग (टिन या रांगा), हरिताल, पीत शुल्व (सोना), ताम्र (ताँबा) और रजत (चाँदी) का विवरण है। इनमें वस्तुतः सात धातुयें तो लोहा, जस्ता, सीसा, वंग, सोना, ताँबा और चाँदी है। हरिताल कोई धातु नहीं है। पारे को रसराज अवश्य माना गया है, पर रसायन शास्त्र की आधुनिक भावनाओं के अनुसार धातु नहीं माना गया।

ग्रन्थारम्भ—प्रस्तुत ग्रन्थ का आरम्भ "पार्वत्युवाच" से होता है, जिसमें पार्वती शिवजी से धातु-शोधन सम्बन्धी ज्ञानोपदेश का आग्रह करती हैं। प्रश्न के उत्तर में महादेव धातुओं के चार वर्गों का वर्णन करते हैं—सात्विक धातु, राजसी धातु, तामसी धातु, और निरामय धातु। शिव जी आगे कहते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में तो अनेक धातुयें हैं, जिनके विविध गुण लक्षण हैं, जो मुझे इस समय याद भी नहीं हैं, तो हे पार्वती, ये सब तुझे मैं कैसे कहूँ।

*पृथिव्या गर्भे मध्येतु अनेक धातुस्तिष्ठति । त्रिस्तृतः कियत्कालेन धातुर्नानाविधोरितः, गुरुलक्षण संयुक्तां साम्प्रतं न स्मरामिह । कथं ते कथयिष्यामि वद ब्रह्माण्ड वासिनि !"

आगे आग्रह करने पर महादेव कहते हैं, कि यों तो धातुयें अनेक हैं, पर मुख्य ये हैं—सारंग (सुवर्ण), लोह,ताम्रक, रजत, इनके अतिरिक्त सत्वज धातु (जो सत्व से उत्पन्न हुई हैं) मध्यम हैं, एवं त्रपु (वंग) और सीस ये दो नीच धातु हैं । धातुओं के संयोग से उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की मिश्रधातुयें प्राप्त होती हैं । ताम्र और सत्वज के योग से एक नारी-धातु (पीतल) उत्पन्न होती है । वह अपने गुण धर्मानुसार मध्यमोत्तमा कहलाती है । त्रपु और ताम्र के योग से काँसा बनता है । प्रत्येक धातु की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं । धातुओं की विशिष्ठतायें उनके मारण, जारण, सारण, चारण, जोटन, पातन, द्रावण, गोपन, लेखन, मेलन आदि की दृष्टि से भी हैं ।

इसके अनन्तर ग्रन्थकार ने सोना, चाँदी (रूप्य), ताम्र, जस्ता, त्रपु (कथिल), सीस, अयस् (लोहा), पित्तल, कांस्य, रसक, हरिताल, मनःशिला, अभ्रक, मल्ल (सोमल या विष), मौक्तिक, प्रवाल, कच्छ् पृष्ठ (कूर्मक), शंख शिपी (सीपी, शुक्तिका), हस्ती दन्त (हाथी दाँत), मयूर पिच्छ (मोर पंख), नख और केश के पर्य्यावाची एवं गुणवाची नाम दिये हैं ।

इस विवरण के अनन्तर महादेव कहते हैं कि सोना आदि कल्प में केवल मेरु में ही पाया जाता था, मर्त्य लोक में नहीं । फिर जम्बूद्वीप में भी मिलने लगा । बाद को लंका में भी पहुंचा । पर भय के कारण मनुष्य लंका से सोना प्राप्त नहीं कर पाते थे । इसी प्रसंग में महादेव जी कहते हैं, कि कलियुग में मनुष्यों में बुद्धि और चतुरता का उदय होगा, और वे पारे और गन्धक के योग से अन्य धातुओं से भी सोना बनाने में समर्थ हो जायंगे ।

महादेव ने ताम्र प्राप्ति के स्थल ये बताये—नेपाल, कामरूप, बंगाल, मदनेश्वर, गंगाद्वार, मलाद्रि, म्लेच्छ देश, पावकाद्रि, दुर्ग, रूम, फिरंगी देश आदि । जस्ता (यशद) प्राप्ति के स्थान ये हैं—कुंभकाद्रि, कंबोज, रूम । नेपाल में जस्ता, वंग और सीस तीनों ही मिलते हैं । लोहा लोहाद्रि, गयाद्रि, गोतमाद्रि, विंध्य प्रदेश और समुद्र तट के प्रदेश में पाया जाता है ।

इस विवरण के अनन्तर लेखक ने रजत, ताम्र, लोह आदि धातुओं की उत्पत्ति बतायी है । प्रकरणानुसार आगे चल कर सोनामाखी (सुवर्ण माक्षिक) का विवरण प्रारम्भ होता है ।

धातु-विधान—रुद्रयामल तन्त्र के अन्तर्गत जो स्वर्ण-विधान दिया है, वह उल्लेखनीय है । स्वर्ण-साधन में पारद और गन्धक की महिमा बहुत है । जो प्रयोग स्थान-स्थान पर इस नकली सोने के बनाने के सम्बन्ध में, अथवा असली सोने के शोधन के सम्बन्ध में दिए हैं, वे अनेक स्थलों पर दूरूह और अस्पष्ट अवश्य हैं । उत्तम शुल्व बनाने की एक क्रिया नीचे ही जाती है जिससे इस बात का अनुमान हो जायगा कि किस प्रकार की आयोजनायें इस सम्बन्ध में की जाती थीं—

स्थान-स्थान मृदांदिव्यामा नयेद्यत्नतः सुधीः ॥
कोष्ठं भूखातजं दिव्यं स्कंध मात्रं पुत्रांस्य च ।
तत्तले भस्तया युग्मं त्वग्रे नीच मुखं शुभम् ।

तत्कोष्ठं पूरयेद दिव्यं वह्न्युच्छिष्ठेन सांप्रतम् ।
त्रिभागं पूरयेद् दिव्यं स्थानस्थे मृदशोभनम् ॥
सार्द्धभागं परं पूर्यं कठिनांगार कोत्तमैः ।
वह्निस्थापनकं कृत्वा भस्त्रा मुख मुखेन वा ॥
धम्यते प्रबला तच्च याभयुग्मम खंडितः ।
जायते वह्निवत्सत्वं कोष्ठ स्थानं च जायते ॥
अंगारैस्तु पुनः पूर्यं मुख मुद्धांतु मुद्धरेत् ।
पुनर्द्धमनकं घोरं यामसार्द्धमखंडितः ॥
पश्चात्तच्चरसं दिव्यं जायते रवि सन्निभम् ।
लोहदण्ड मुखे वक्त्र तन्मुखोद्घाटयेद् ध्रुवम् ॥
आलबालं कृतं पूर्वं तदते रस निःसृतिः ।
कांजिकैः सेचनं कृत्वा जायते निर्मल शुभम् ॥
अनेनैव प्रकारेण जायते शुल्बमुत्तमम्" । (पृष्ठ ७०)

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि उत्तम शुल्ब बनाने के लिए अनेक स्थानों की दिव्य मिट्टी का संग्रह करे। एक गहरा गड्ढा या कोष्ठ खोदे (आदमी के कन्धे बराबर गहरा)। उसमें नीचे कोयला भर दे और तिहाई भाग दिव्य मिट्टी भरे, और कठिनांगार या दृढ़ कोयला भरे। नीचे एक भस्त्रा या धौंकनी लगा दे, जिससे जोरों से आग धौंके। ऐसा करने पर आग के समान जाज्वल्यमान सत्व प्राप्त होगा। इसके ऊपर फिर कोयला पूर दे, और जोरों से धौंके। अब सूर्य की आभा वाला रस मिलेगा। लोहे के दण्डे से मुख को खोल दे, और चारों ओर आलबाल (पानी से भरी खायी) बना दे। इस प्रकार जो रसस्राव प्राप्त हो, उसे कांजी (खटाई) से अभिषिक्त करे। ऐसा करने से उत्तम शुल्ब प्राप्त होता है।

शुल्ब बनाने के इसी प्रकार के कई विस्तार दिये हुए है। तरह-तरह से कोष्ठों को बनाना, उन पर मिट्टी लेपना, उसमें उपयुक्त काष्ठ (जैसे खदिर काष्ठ, आदि) रखना, फिर खदिर का प्रयोग, आलवाल का उचित रूप से बनाना आदि विस्तारों द्वारा नाग और ताम्र दोनों का शोधन बताया है। इन विधियों से यदि अशुद्ध धातु मिले तो उसे फिर नरमूत्र, दूध, औषधियों के रस आदि में अभिसिञ्चित करने की विधियों का उल्लेख है। कुक्कुट के अंडे का रस, और नीबू के रस, आदि का उल्लेख भी किया गया है। इस सम्बन्ध में बालुका यंत्र, धूप में सुखाना, छाया में सुखाना, और नीले कांच की बनी शीशी का भी प्रयोग बताया है—

कुक्कुटांड रसे भाव्यं दिनत्रयम खंडितः ।
पश्चान्निम्बु रसे भाव्यं त्रियामं छायाशोषितम् ।
नील काचोद्भवे शीश्यां दापयेद्यत्नपूर्वकम् ।
बालुका यंत्र मध्ये तु दापयेत् शीशिका शुभा ।
मंदाग्निना हठ पर्यन्तां यामयुग्मं प्रतापयेत् ।
स्वांगशीतेन सोत्तार्य उर्ध्वगं संग्रहेच्छुभम् ।

पुनः खल्वे प्रदातव्यं अष्टांशे मल्लं दापयेत् ।
पुनरंड रसैर्भाव्यं याममात्तम खंडितः ।
छाया शुष्कं च तत्सर्व काचकुप्यां विनिक्षिपेत् ।

इस प्रकार का विस्तार रजत आदि के सम्बन्ध में दिया गया है। पारा, मनः शिला, अभ्रक, सर्जिका क्षार, खुर, तिल की लकड़ी का भस्म, कुम्हड़े का रस, कुमारी रस, सिंहिका-रस, गुड़, खदिर, चूर्ण, खड़िया, गोमय (गोबर), अरना-कंडों की भस्म, फिटकरी (स्फटिका) का चूर्ण, सोमल, आदि अनेक का प्रयोग धातुओं के शोधन में किया जाता था। रूप्यशिद्धि या राजतसिद्धि (चाँदी का शोधन) का यह विवरण इस ग्रन्थ में पठनीय है (पृ० ७६-७७)।

आगे चल कर स्वर्ण शोधन का विस्तृत विधान है। इस सम्बन्ध में भी पारे, गन्धक, वालुकायंत्र, कांच की शीशी, खल्व, घी-कुआर का रस, अंडे का रस, खर्पर आदि का उपयोग यथा-स्थान बताया गया है। सुहागे के साथ गलाना, पारे, शंख, मनःशिला, ताल, फिटकरी का सत्व, और इस सम्बन्ध की कोष्ठिका का भी विवरण है (पृ० ८८)। कोष्ठी के अतिरिक्त चुल्ली (चूल्हा) का वर्णन भी उल्लेखनीय है। चंद्रोदय रस बनाने का विस्तार भी इस ग्रन्थ में है (पृ० ८३-८४)। जस्ता और ताँबे के मिश्रण से पीली धातु तैयार कर लेने के कई योग भी दिए गये हैं। स्पष्टतः उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार से सोने के समान कान्ति की कोई धातु तैयार हो जावे। यह धातु वस्तुतः पीतल प्रतीत होता है (पीतल का एक पर्याय नारी या नारीक का भी इस ग्रन्थ में प्रयोग हुआ है)।

अनेका स्वर्णजा सिद्धिर्नार्यि मध्ये च जायते ।
... ...
गलिते जायते नारी क्रियाकर्म शुभप्रदा ।
शृणु देवि ! प्रयत्नेन नारी निर्मलगा क्रिया ।
... .
एता दशी शुभानारी गालयेन्मृद् भांडके ।
... ...
अक्षया जायते नारी तदोत्थान् पत्रं कारयेत् ॥
आनयेच्च शुभा नारी शुद्ध जासत्व शुल्वजा ।
स एव काञ्चनं दिव्यं जायते नात्र संशयः ॥ (पृ० ८४-८५)

इस पीतल या नारी को शुद्ध करने का भी विवरण है, जिसके उपयोग से सोने के तुल्य नारी प्राप्त हो जाती है।

आगे चल कर एक स्थल पर अच्छी मिट्टी और उपयोगी खर्पर का उल्लेखनीय वर्णन है (पृ० १००), वाफाग्नि का प्रयोग ताम्र के संबंध में बताया गया है। ताम्र तीन प्रकार के बताये हैं—(१) तुत्थोत्थ ताम्र (तूतिये से बना), (२)गन्धोद्भव ताम्र, (३) दोनों ताम्रों का मिश्री। आयुर्वेद की दृष्टि से गन्धकोद्भव ताम्र ही सर्वोत्तम है। गान्ध-ताम्रकरी क्रिया (अर्थात् ताम्र और गन्धक के विविध प्रयोगों का ज्ञान) को विशेष महत्व दिया गया है :

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि गन्धताम्रकरी क्रिया।
येन विज्ञान मात्रेण साधयेत्सकला गतिः ॥

इसी प्रकार रस-ताम्रकरी क्रिया (पारद और ताम्र के योग का ज्ञान) भी महत्वपूर्ण है (पृ० ११२-११३)।

रुद्रयामल तंत्र में रत्न-बंध का भी उल्लेख है। बिल्लौरी पत्थर का विशेष विवरण है—

हीनानेककरं रत्नं हीन मौल्येकरं कलौ।
यत्नेन कारयेच्चूर्णं विल्लौराख्यो महामणिः।
गालयेद्यत्न पूर्वेण पुराप्रोक्ता विशारदा
पाषाणद्राविणीविद्या कथिता लोहकृत् क्रिया ॥ (पृ० ११४)

रुद्रयामल तंत्र के अन्तिम भाग में पारे और चाँदी से सम्बन्ध रखने वाले प्रयोगों का भी उल्लेख है। इस सम्बन्ध में क्षार, कांजिक-रस, गन्ध तैल, अन्धमूषा, टंकण, सूची वेध, खल्व, तालज रस, काचपात्र, वालुका यंत्र, डमरुक यंत्र, काचकूपी, दूर्वारस आदि का व्यवहार बताया गया है (पृ० १२४-१२६)।

रजत क्रिया के अनन्तर सुवर्ण का विवरण है। सुवर्ण के बिना तो कोई भी धातु गुणकारी नहीं होती। सुवर्ण की तुलना तो ब्रह्म से की गयी है—

सौवर्णस्य विना धातोः कार्यं कर्तुं न शक्यते।
यथा ब्रह्म प्रकृत्येन विलीने कर्म साधयेत् ॥
ब्रह्मे नैव विनाकृत्या कर्म नैवान, साधयेत्।
तस्मात्ते च सुवर्णं हि ब्रह्म कैवल्य शोभनम् ॥ (पृ० १२८)

इस प्रकार संक्षेप से हमने इस लेख में पाठकों को "रुद्रयामल तन्त्रान्तर्गत सप्तधातु निरूपणम्" का परिचय कराया है। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय की "हिन्दू केमिस्ट्री" में कहा गया है कि "रुद्रयामल तन्त्र" का एक भाग रस-कल्प भी है। पुस्तक परिशिष्ट में "धातु क्रिया" या "धातु-मञ्जरी" के जो श्लोक उद्धृत हैं, वे ही "सप्त-धातु- निरूपणम्" के हैं। इस ग्रन्थ में फिरंगी, रूम, आदि शब्दों का प्रयोग है, अतः यह १६ वीं शती से पूर्व का तो हो ही नहीं सकता, ऐसा अनुमान है। इसमें दाह-जल (सलफ्यूरिक अम्ल) का उल्लेख है जिससे अभिक्रिया करके ताँबा तूतिया बन जाता है—

ताम्रदाहजलैर्योगे जायते तुत्थकं शुभम्
(प्रफुल्ल चन्द्र राय)।

यदि रुद्रयामल तंत्र पूर्ण प्राप्त होकर प्रकाशित हो सके, तो अच्छा होगा।

———

पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति की रासायनिक विवेचना

डा० कृष्ण बहादुर, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

अनुमान है कि हमारी पृथ्वी की सतह की आयु ५०० या ५५० करोड़ वर्ष है। वैज्ञानिकों की धारणा है कि पृथ्वी की सतह उस समय ठंढी हो गई थी और स्थान-स्थान पर जल के एकत्र हो जाने के कारण बड़े-बड़े जलाशयों अर्थात् समुद्रों का भी निर्माण हो गया था। यह तो हुई ५००-५५० वर्ष पूर्व की स्थिति, परन्तु इस पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति वास्तविक रूप में १००--१५० करोड़ वर्ष पूर्व ही हुई। पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति किसी आकस्मिक घटना से नहीं हुई वरन् इसके निर्माण की प्रक्रिया पृथ्वी की सतह के ठंढी होने तथा उस पर समुद्रों के निर्माण हो जाने के साथ ही प्रारम्भ हो गई थी। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर ४०० करोड़ वर्षों तक होने वाली विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जीव की उत्पत्ति हुई। ४०० करोड़ वर्ष की इस दीर्घ अवधि में रासायनिक प्रतिक्रियाएं हुई और उन प्रतिक्रियाओं में ही लक्ष-लक्ष करोड़ों वर्षों तक अणुओं का विकास होता रहा और इससे उत्पत्ति हुई एक ऐसे संयुक्त पदार्थ की जो प्रोटोप्लाज्म की भाँति था। इसमें जीव के सभी गुण विद्यमान थे।

४०० करोड़ वर्षों में होने वाली विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं एवं आणविक विकास के विषय में आजकल विशेष रूप से खोज कार्य हो रहा है। इन विभिन्न क्रियाओं एवं विकसनशीलता के रहस्य की जानकारी से न केवल जीव की उत्पत्ति के विषय में सही अनुमान लगाया जा सकेगा बल्कि उन प्रतिक्रियाओं का ज्ञान हो जाने पर उन्हें कृत्रिम रूप देकर संभवतः जीवन के संश्लेषित करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया जा सकेगा।

यह सर्वमान्य है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण आरंभ हुआ। निस्सन्देह ५०० करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी के वायुमण्डल का संयोजन आज की भाँति नहीं था। उस समय के वायुमण्डल में मीथेन, कार्बन मोनाक्साइड, कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन गैसें वर्त्तमान थीं। पृथ्वी पर जल होने के कारण वायुमण्डल में पानी की वाष्प भी थी। १९५५ ई० में अमेरीका के वैज्ञानिक मीलर ने उक्त गैसों को एक फ्लास्क में लेकर इस मिश्रण से विद्युत विसर्जन द्वारा कई अम्लों का संश्लेषण किया। पानी और कार्बन डाइआक्साइड के मिश्रण में पारबैंगनी किरणों द्वारा फार्मलडिहाइड और शर्करा का संश्लेषण किया जा सकता है। ५०० करोड़ वर्ष पूर्व सूर्य से पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाले पारबैंगनी प्रकाश का परिमाण अधिक था क्योंकि उस समय वायु का घनत्व और आवरण उतना नहीं था जितना कि आज है। अतः यह स्वाभाविक है कि पृथ्वी पर उस समय अनेक कार्बनिक यौगिकों का निर्माण हुआ होगा और उन पर प्रकाश तथा पारबैंगनी किरणों के प्रभाव से अनेक नये कार्बनिक यौगिक बने होंगे। इन संश्लेषित यौगिकों में एमिनो अम्लें भी थीं।

प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग में किये गये प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि एमिनो अम्लों का संश्लेषण उस काल में भी संभव था जब पृथ्वी के वायुमण्डल का संयोजन प्राय: आज की भाँति हो गया था और इस संश्लेषण के लिये केवल प्रकाश द्वारा प्राप्त ऊर्जा पर्याप्त है। प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ है कि यदि पैरा फार्मेल्डीहाइड, पोटैशियम नाइट्रेट, फेरिक क्लोराइड और पानी के निर्बीजित मिश्रण पर साधारण प्रकाश डाला जाय तो कुछ समय उपरान्त इसमें कुछ एमिनो अम्ल संश्लेषित हो जाते हैं। इस प्रकार एमिनो अम्लों की प्रकृति मिश्रण के संयोजन, हाइड्रोजन आयन सान्द्रण, उत्प्रेरक और प्रकाश डालने के काल और प्रकाश के तरंग-दैर्ध्य पर निर्भर है। यह एक महत्वपूर्ण खोज है क्योंकि इसमें एमिनो अम्लों के संश्लेषण के लिये वायुमण्डल में होने वाले विद्युत-विसर्जन की आवश्यकता नहीं पड़ती और समस्त पृथ्वी के सतह पर जहाँ पानी और अन्य पदार्थ उपस्थित हैं, इन एमिनो अलो के संश्लेषण की कल्पना की जा सकती है।

उक्त प्रतिक्रिया के अनुसार जो एमिनो अम्ल संश्लेषित होते हैं, जीवाणुओं द्वारा शीघ्र विघटित हो जाते हैं परन्तु पूर्वजीव-काल में जब पृथ्वी पर एक भी जीव नहीं था, पृथ्वी पर संश्लिष्ट एमिनो और अन्य कार्बनिक-यौगिक परस्पर क्रियावान रहे और फलस्वरूप नये नये नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक यौगिक बने। इनमें से जो पृथ्वी की भौतिक-रासायनिक प्रतिक्रियाओं के समक्ष स्थायी थे वे तो रहे और आगे की प्रतिक्रियाएं कीं परन्तु जो अस्थायी थे वे विघटित हो गये और उनके विघटन से बने पदार्थों ने पृथ्वी के अन्य कार्बनिक यौगिकों से पुन: प्रतिक्रिया की। इस प्रकार असंख्य कार्बनिक यौगिकों का निर्माण और विघटन होने लगा। इन प्रतिक्रियाओं में प्रकाश और पारबैंगनी किरणों ने विशेष प्रभाव डाला।

पृथ्वी के पूर्वजीव-काल के इन असंख्य संश्लेषित कार्बनिक यौगिकों में एमिनो अम्लों ने जीव-उत्पत्ति में विशेष भाग लिया। अमरीका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक फाक्स ने ज्ञात किया है कि एमिनो अम्लों को एक विशेष ताप पर (२०० से ३०० से०) गरम करने पर बहुत से पेपटाइड बन जाते हैं। उनका मत है कि ज्वालामुखी पर्वतों के पास जहाँ ताप अधिक था ऐसी ही क्रिया हुई। निर्मित पेपटाइड से बड़े-बड़े पेपटाइड और प्रोटीन संश्लेषित हुये। पेपटाइड संश्लेषण में ऊर्जा लगती है इसलिए इनका पानी की उपस्थिति में संश्लेषण करना कठिन है। प्रयाग विश्वविद्यालय में किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि यदि एमिनो अम्लों के जल विलयन में अन्य कार्बनिक यौगिक मिला हो तो उचित उत्प्रेरक की उपस्थित में पारबैंगनी किरणों द्वारा इस विलयन में पेपटाइड संश्लेषित होते हैं। पूर्वजीव काल में पृथ्वी पर अधिक पारबैंगनी किरणें आती थीं, उस समय के पानी में मिश्रित एमिनो अम्ल, कार्बनिक यौगिक और अकार्बनिक उत्प्रेरकों के मिश्रण में पेपटाइड और प्रोटीन का संश्लेषण हुआ।

जीवित कोष (सेल), प्रोटीन और प्रोटोप्लाज्म-संश्लेषण में पानी के अणुओं का विशेष महत्व है। आकार्बनिक आयन इस प्रतिक्रिया में विशेष प्रभाव डालते हैं। प्रोटोप्लाज्म में, विरल-तत्वों को छोड कर कैसियम, मैगनीसियम, पोटैशियम, सोडियम, फासफोरस, कार्बन और नाइट्रोजन प्रमुख तत्व वर्तमान हैं। यहाँ की प्रयोगशाला में किये गये प्रयोगों से यह प्रगट हुआ है कि जब

कल्चर-माध्यम में इनका सान्द्रण इस प्रकार संतुलित किया जाता है कि सर्वश्रेष्ट कोष वृद्धि हो तो इस स्थिति में बने प्रोटोप्लाज्म में इन तत्वों के नहीं वरन् हाइड्रोजन और आक्सीजन के अणु अधिक होते हैं ,अर्थात् प्रोटोप्लाज्म का अधिकतम संश्लेषण उस अवस्था में होता है जिसमें प्रोटोप्लाज्म पदार्थ का अत्यधिक जलीकरण सम्भव हो।

ऊपर वर्णित विधि द्वारा न केवल एमिनो अम्लों और पेपटाइडों का ही संश्लेषण हुआ वरन् एडिनोसिन फासफेटों और न्यूक्लिक अम्लों के आकार के यौगिक भी बने। एडिनोसिन फासफेटों में फासफेट आयनों के मुक्त होने पर ऊर्जा मुक्त होती और न्यूकलिक अम्लों में अनुकूल दशा में प्रतिलिपिता (Duplication) का गुण था। परन्तु जब तक ये अणु अलग-अलग रहे न तो एडिनोसिन फासफेटों से मुक्त ऊर्जा का कोई विशेष लाभ था न अलग रह कर न्यूकलिक अम्ल ही प्रतिलिपि कर पाता था। पृथ्वी पर बने इन प्रोटीन, एडिनोसिन फासफेट और न्यूकलिक अम्ल के अणु कभी-कभी पास-पास आकर संयोग भी करने लगे। इस मिलन से प्रो-प्रोटोप्लाज्म बना जिससे आगे चल कर वर्तमान प्रोटोप्लाज्म विकसित हुआ। यह प्रो-प्रोटोप्लाज्म एक वृहत अणु था जिसमें एडिनोसिन फासफेट होने के कारण आसपास की रासायनिक क्रिया द्वारा प्रकट होने वाली ऊर्जा को संचित करने का गुण था। इस क्रिया में एडिनोसिन मोनोफासफेट, फासफेट-मूलक से संयोग कर द्वि- और त्रि-फासफेट बन जाता था। वृहत अणु में न्यूकलिक अम्ल उपस्थित होने के कारण प्रतिलिपिता का भी गुण था। स्वयं ऊर्जा प्रगट कर सकने का गुण होने के कारण ये वृहत अणु अन्य अणुओं से कुछ अधिक अच्छी स्थिति में थे और इनका अनुकूल वातावरण में जब आसपास इन अणुओं को बनाने वाले पदार्थ उपस्थित हुये तो इनकी प्रतिलिपिता भी हुई। इस प्रकार के असंख्य वृहत अणुओं का जन्म हुआ। इनमें से कुछ अणु इस प्रकार रहे जो वाह्य भौतिक-रासायनिक स्थिति के मन्द परिवर्तन के प्रभाव में अपने कुछ बन्धनों को बदल कर संतुलित कर लेने योग्य थे। इन वृहत अणुओं के प्रतिलिपन से ऐसे अणु बने जो वाह्य स्थिति के मन्द परिवर्तन से नष्ट नहीं होते थे वरन् इससे उनके आन्तरिक बंधनों में ही परिवर्तन होता था।

उक्त वर्णित वृहत अणु पृथ्वी का सर्वप्रथम प्रो-प्रोटोप्लाज्म था जो प्रारम्भ में कोष में न होकर स्वतन्त्र रूप से था। इन वृहत् अणुओं ने कोजर्वेट का रूप धारण किया। इन कोजर्वेट में विशिष्ट शोषण का गुण होता है। पदार्थ के कोजर्वेट अवस्था का विशेष अध्ययन रूस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ओपिरिन कर रहे हैं। इन कोजर्वेट स्थित में उपस्थित वृहत अणुओं ने उचित अकार्बनिक आयनों की विशेष सान्द्रता पर तीव्र गति से प्रतिलिपन किया और शीघ्रता से प्रो-प्रोटोप्लाज्म संश्लेषित होने लगा।

प्रो-प्रोटोप्लाज्म ने आगे विकास करके प्रोटोप्लाज्म का रूप ग्रहण किया। इसमें प्रो-प्रोटोप्लज्म के सभी गुण थे, साथ ही साथ यह अधिक सुसंगठित था और बिना कोजर्वेट-स्थिति के भी स्वतन्त्र रूप से रह सकता था।

इस तरह लगभग १०० से १५० करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन के गुणों से परिपूर्ण प्रथम पदार्थ संश्लेषित हुआ। इस पदार्थ के विकास से वर्तमान काल के बैक्टीरिया, एमीबा तथा

यीस्ट की तरह के एक सेल वाले जीव बने। ५० करोड़ वर्ष पूर्व तक ये जीव केवल पानी में ही रहे और इनसे बहुकोषीय जीव, जैसे एल्गी, स्पंज, एनेलिड, सीनोडरमेटा, ट्रीलोबिट तथा अन्य अपृष्ट वंशी जीव विकसित हुये। सर्वप्रथम पृष्ठवंशीय जीव, मछली, (४० करोड़ वर्ष पूर्व) बनी, इससे लगभग १५ करोड़ वर्ष बाद, कार्बोनिफेरस काल में पृथ्वी पर विशाल फर्न, हॉर्सटेल और लाइकोपोड वृक्षों की उत्पत्ति हुई और पृथ्वी इनके बड़े-बड़े जंगलों से ढक गई। इसी काल में एम्फीबियन की उत्पत्ति हुई। लगभग ६ से ७ करोड़ वर्ष पूर्व रेप्टाइल (सरीसृप) प्रगट हुये। जुरेसिक और क्रिटेशियस काल में इन्होंने विशेष प्रगति की।

पृथ्वी पर मेमल (स्तनपेयों) की उत्पत्ति लगभग साढ़े तीन करोड़ वर्ष पूर्व हुई। ये आदि मेमल, वर्तमान काल के मेमल से बहुत भिन्न थे। इन्हें आजकल के मेमल का रूप ग्रहण किये केवल ४०-५० लाख वर्ष हुये हैं। केवल १० लाख वर्ष पूर्व ही पिथेकैन्थोपस नामक बन्दर की जाति बनी जिसके विकास से मनुष्य बना। पिथेकैन्थोपस से मनुष्य बनने में कई लाख वर्ष लगे। लगभग ३-४ लाख वर्ष पूर्व आदि-मानव भी वर्तमान काल के मनुष्य की भाँति बहुत प्रगतिशील नहीं था परन्तु एक बार मनुष्य का शरीर प्राप्त करने के बाद फिर उसकी प्रगति तीव्र गति से हुई।

मनुष्य का इतिहास बतलाता है कि मनुष्य लगभग १०,००० वर्ष पूर्व सभ्य हो चुका था। पिछले २००० वर्षों में और विशेषकर पिछले २०० वर्षों में मनुष्य ने भौतिक जगत में विज्ञान द्वारा विशेष प्रगति की और पिछले २० वर्षों में प्रगति के विभिन्न साधनों पर विशेष अधिकार प्राप्त किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि अणु-विकास में लगभग ४०० करोड़ वर्ष लगे, जिससे निर्जीव अणुओं से जीवित प्रोटोप्लाज्म बना, इस प्रथम बने एक-कोषीय जीवों से पिथेकैन्थोपस बन्दर बनने में केवल ५-६-७ लाख वर्ष ही लगे। निर्जीव अणु से मनुष्य बनने के इस इतिहास देखने पर विदित होता है कि इस विकास की गति पहिले बहुत मन्द थी परन्तु अब यह विकास बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। मनुष्य की विशेष प्रगति उसके सामाजिक सहयोग से हुई। मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ही प्रकृति से सङ्घर्ष नहीं करता वरन् वह इस सङ्घर्ष में एक दूसरे की समझ और सहयोग का भी उपयोग करता है।

उक्त वर्णित आणविक विकास के सिद्धान्त से यह प्रगट होता है कि न केवल जीव-निर्माण के उपरान्त ही विकास क्रिया में जीव वातावरण की भौतिक-रासयनिक स्थितियों से सङ्घर्ष करते रहे और जो जीव उन स्थितियों में अच्छी तरह रह सके उन्होंने विकास पथ पर आगे को कदम रक्खा, वरन् पूर्वजीव काल में भी जब पृथ्वी पर प्रोटोप्लाज्म नहीं बना था, अणु भी इसी प्रकार के सङ्घर्ष में भाग लेते रहे और पृथ्वी के उस समय की भौतिक-रासायनिक स्थिति में जो वृहत अणु अधिक स्थायी रह सके उन्होंने आगे विकास किया एवं इसी अणु-विकास से प्रोटोप्लाज्म नामक द्रव्य संश्लेषित हुआ। अतः प्रोटोप्लाज्म ग्रह के निरन्तर भौतिक-रासायनिक स्थितिओं के परिवर्तन में सतत संतुलित एक ऐसा द्रव्य है जिसमें स्वयं शक्ति प्रगट करने का, प्रति-

(शेष ११२ वें पृष्ठ पर)

मूलभूत कण

डा० रमेश चन्द्र कपूर, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

उन्नीसवीं शताब्दि में वैज्ञानिकों का विचार था कि तत्व अविनाशी हैं और एक दूसरे में परिणत नहीं किये जा सकते। परन्तु इस शताब्दि के अंत में एक बड़ी महत्वपूर्ण खोज हुई जिससे तत्वों के तत्वांतरण (transmutation) का सर्वप्रथम पता लगा। यह खोज रेडियो-धर्मिता की थी जिसमें कुछ भारी तत्वों के परमाणुओं का विखण्डन होता था।

इन खोजों के पश्चात परमाणु रचना पर बड़ी सरगर्मी से कार्य हुआ। इस कार्य में थामसन (Thompson), रदरफोर्ड (Rutherford) एवं बोर (Bohr) ने सराहनीय कार्य किया। इस कार्य के बीच कुछ मूलभूत कणों की भी खोज हुई। इनमें से कुछ कण परमाणु के अंदर विद्यमान हैं, इन्हें हम स्थायी कह सकते हैं। दूसरे ऐसे कण हैं जो अस्थायी हैं और थोड़े समय के लिये कुछ क्रियाओं के बीच उत्पन्न होते हैं।

अब यह ज्ञात है कोई भी कण पूर्णतया स्थायी नहीं वरन् विशेष क्रियाओं द्वारा एक दूसरे में बदला जा सकता है।

निम्नलिखित सारिणी में ऐसे कणों का वर्णन है जिनकी अब तक खोज हो चुकी है। इनमें कुछ साधारण तथा स्थायी हैं और कुछ अस्थायी। कुछ कणों पर विद्युत का आवेश है (धन या ऋण) और कुछ आवेश-रहित हैं। इन कणों को हम परमाणु रचना और समस्त द्रव्यों की ईंटें कह सकते हैं।

धन आवेश युक्त	ऋण आवेश युक्त	आवेश रहित
१. प्रोटान भार १·००७५८ स्थिर खोज लगभग १९०० ई०	१. प्रति-प्रोटान भार १ अस्थिर खोज १९५५ ई०	(१) न्यूट्रान भार १·००८९७ अर्ध जीवनकाल १५ मिनट. प्रोटान में परिणत खोज १९३२ ई०
		(२) प्रति-लैम्बड़ा अथवा प्रति-द्रव्य भार अनिश्चित अस्थिर, शीघ्र प्रति-प्रोटान में परिणत, खोज १९५८ ई०

२ .पाजीट्रान

भार = $\frac{१}{१८३७}$

स्थिर

खोज १९३२ ई०

३. धन म्यू (μ) मेसान

भार = $\frac{१}{६.७७}$

अर्ध जीवनकाल २ × $१०^{-६}$ से०

खोज १९३६ ई०

४. धन आवेश युक्त धन पाई (π) मेसान

भार = $\frac{१}{६.६८}$

अर्ध जीवनकाल $१०^{-८}$ से०

खोज १९४७ ई०

५. धन V कण

भार लगभग १·२

अर्ध जीवनकाल $१०^{-१०}$ से०

खोज १९४७ ई०

२. इलेक्ट्रान

भार = $\frac{१}{१८३६}$

स्थिर

खोज १८९६ ई०

३. ऋण म्यू (μ) मेसान

भार = $\frac{१}{६.७७}$

अर्ध जीवनकाल २ × $१०^{-६}$ से.

खोज १९३६ ई०

४. ऋण पाई (π) मेसान

भार = $\frac{१}{६·६८}$

अर्ध जीवनकाल $१०^{-८}$ से०

खोज १९४७ ई०

५. ऋण V कण

भार लगभग १·२

अर्ध जीवनकाल $१०^{-१०}$ से०

खोज १९४७ ई०

३. उदासीन पाई मेसान

भार = $\frac{१}{६·६८}$

अर्ध जीवन काल $१०^{-१४}$ से०

खोज १९५० ई०

४. उदासीन V कण

भार १·१९

अर्ध जीवनकाल २ × $१०^{-१०}$ से०

खोज १९४७ ई०

५. न्यूट्रिनो

भार शून्य

स्थिर

खोंज १९५५ ई०

इलेक्ट्रान (Electron):

सर्व प्रथम जे० जे० थामसन ने विद्युत-विसर्जन से प्रयोगों द्वारा दिखाया कि ऋण विद्युदग्र (negative electrode) से सीधी रेखा में कुछ किरणें निकलती हैं। इन किरणों पर विद्युत का ऋण-आवेश रहता है। वास्तव में यह किरणें ऋण-विद्युत के कणों से बनी हैं और इनमें प्रतिदीप्ति का गुण होता है। इस कण को इलेक्ट्रान कहते हैं।

थामसन ने इन किरणों का वेग तथा इनके आवेश और संमात्रा का अनुपात ($\frac{e}{m}$) प्रयोगों द्वारा निकाला। $\frac{e}{m}$ अनुपात सर्वदा स्थिर निकला। अमेरिकन वैज्ञानिक मलिकन (Mullikan) ने शिकागो विश्वविद्यालय में इस कण का परम आवेश (absolute charge) ज्ञात किया जो

४.८×१० − १० स्थि० वै० मा० (स्थिर वैद्युत मात्रक) निकला। इस कण का द्रव्यमान (mass) ८.१×१०$^{-२८}$ ग्राम है। इस प्रकार इलेक्ट्रान का भार हाइड्रोजन परमाणु का १/१८३६ भागहै।

हर परमाणु में इलेक्ट्रान विभिन्न संख्या में रहते हैं। परन्तु सारे इलेक्ट्रान एक से होते हैं चाहे वह हाइड्रोजन ऐसे हल्के तत्व के हों अथवा युरेनियम जैसे भारी तत्व के। तुलना के हेतु इलेक्ट्रान का आवेश १ माना गया है। हाइड्रोजन परमाणु में कक्षा में एक इलेक्ट्रान परिक्रमा करता है। युरेनियम में ९२ इलेक्ट्रान परिक्रमा करते हैं।

इलेक्ट्रान परमाणु के वह अंग हैं जो रासायनिक क्रियाएं एवं परिवर्तन करते हैं। मनुष्य की सारी दैनिक क्रियाएं इलेक्ट्रान द्वारा संचालित होती हैं। विद्युत रूपी ऊर्जा का प्रवाह इलेक्ट्रानों के घूमने से होता है। बिजली के लैम्प के अन्दर तन्तु (filament) में इलेक्ट्रान का प्रवाह होने से वह दहकता है और हमें प्रकाश देता है। हमारे नित्य प्रति जीवन में इलेक्ट्रान बड़े उपयोगी हैं।

इलेक्ट्रान स्थिर कण है, वह किसी दूसरे कण से क्रिया द्वारा ही नष्ट हो सकता है।

प्रोट्रान (Proton):

प्रोटान हाइड्रोजन परमाणु का नाभिक है। सन् १८८६ में जर्मन वैज्ञानिक गोल्डन्सटीन ने विसर्गनली में धन-विद्युत की किरणें देखी थीं। सन् १८९८ में जर्मन भौतिक शास्त्री वियन (Wien) ने इसकी भली प्रकार जाँच की। इस कार्य को और सूक्ष्मता से एस्टन (Aston) ने किया। इन अनुसंधानों से मालूम हुआ कि हाइड्रोजन का आवेशयुक्त परमाणु धन आवेश का सबसे छोटा कण है। इसके पश्चात रदरफोर्ड को कृत्रिम तत्वांतरण-प्रयोगों के समय हाइड्रोजन का धनावेश युक्त परमाणु ज्ञात हुआ।

इन क्रियाओं के बाद रदरफोर्ड ने १९२० में बताया कि धनावेशयुक्त हाइड्रोजन परमाणु एक मूलभूत कण है जो हर परमाणु में उपस्थित है। उन्होंने इसका नाम प्रोटान (Proton) प्रस्तावित किया जिसे विज्ञान-संसार ने शीघ्र स्वीकार किया। प्रोटान, परमाणु की रचना की एक आवश्यक ईंट है। प्रोटान एक स्थायी कण है।

न्यूट्रान (Neutron):

न्यूट्रान की खोज अंग्रेजी भौतिक शास्त्री जेम्स चेदविक ने १९३२ में की। यह आश्चर्य का विषय है कि न्यूट्रान की खोज के बहुत पहले तीन वैज्ञानिकों ने उसकी विद्यमानता के विषय में भविष्यवाणी की थी। अमेरिका में हारकिंस, आस्ट्रेलिया में मेसन और इंगलैंड में रदरफोर्ड ने यह सुझाव रखा कि एक ऐसा मूलभूत कण होना आवश्यक है जिस पर कोई विद्युत-आवेश न हो और भार में लगभग हाइड्रोजन परमाणु के समान हो। हारकिंस ने इस कण का नामकरण उसकी खोज से पहले ही कर दिया था।

न्यूट्रान की खोज को सफलीभूत करने में दो प्रयोगों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक प्रयोग जर्मनी में बोथे एवं बेकर (Bothe and Becker) ने १९३० में किया। दूसरा प्रयोग १९३२ में

फ्रांस में जोलियट-क्यूरी द्वारा किया गया। उस समय इन दोनों निरीक्षणों का सही उत्तर न मिला। उसी समय रदरफोर्ड के शिष्य चेदविक ने दोनों प्रयोगों के बारे में अपना विचार प्रकट किया। उनके अनुसार इन प्रयोगों में ऐसा कण निकलता है जिसका भार हाइड्रोजन के बराबर है परन्तु वह आवेशहीन है।

न्यूट्रान की खोज होते ही उसको एक मूलभूत कण मान लिया गया। खोज के पश्चात बहुतेरी अनुसंधानशालाओं में पहचाना जा चुका है। न्यूट्रान अनेक नाभिकों के साथ क्रिया करता है। यह स्वतंत्र अवस्था में अस्थायी कण है और स्वत: निम्नलिखित रीति से नष्ट हो जाता है :

$$n \rightarrow p^{+} + e^{-}$$

न्यूट्रान प्रोटान इलेक्ट्रान
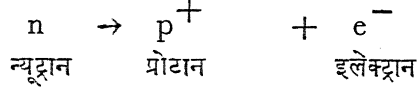
पाजीट्रान (Positron):

पाजीट्रान की खोज अमेरिका के कार्ल अंडरसन (Carl Anderson) ने १९३२ में की। इसकी खोज के पूर्व इंगलैंड में डिरेक (Dirac) ने १९३० में तर्क रखा कि इलेक्ट्रान की भाँति एक धन-आवेश वाला कण प्राप्त होना चाहिये। इसका भार इलेक्ट्रान के समान होना चाहिये और आवेश समान किन्तु विलोम (अर्थात धन) होना चाहिये।

बहुतेरे प्रयोगों के पश्चात पाजीट्रान बड़ी कठिनाई से मिला। अंतरिक्ष किरणों (Cosmic-rays) के द्रव्य पर क्रिया करने से कुछ कणों का जन्म होता है। इन कणों में पाजीट्रान भी पाये गये। इलेक्ट्रान के विपरीत यह द्रव्य में विद्यमान नहीं रहता है। प्रयोगशालाओं में निरीक्षण काल के समय पाजीट्रान की जीवन-अवधि बहुत क्षणिक होती है। कारण यह है कि हमारी पृथ्वी पर इलेक्ट्रान बड़ी मात्रा में उपस्थित रहते हैं। ज्योंही इसका उद्भव होता है अल्प समय पश्चात यह इलेक्ट्रान से मिल कर नष्ट हो जाता है और इस क्रिया द्वारा ऊर्जा या फोटान की उत्पत्ति होती है। इस कारण पाजीट्रान अधिक समय तक स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकता। फिर भी पाजीट्रान एक स्थायी कण माना जाता है क्योंकि यह स्वयं नष्ट नहीं होता।

मेसान (Mesons) **परिवार :**

मेसान वह कण है जिनका भार इलेक्ट्रान व प्रोटान के मध्य होता है। अभी तक ५ प्रकार के मेसान की खोज हो चुकी है परन्तु हो सकता है कि भविष्य में और मेसान की भी खोज हो।

धन म्यू (μ) मेसान तथा ऋण म्यू मेसानः

अंतरिक्ष किरणों के द्रव्य पर क्रिया से ये उत्पन्न होते हैं। इन पर आवेश की मात्रा पाजीट्रान व इलेक्ट्रान के बराबर होती है यद्यपि इलेक्ट्रान या पाजीट्रान से २१० गुना भारी होते हैं। ये अस्थिर कण है जिनका अर्ध जीवन काल २×१०^{-६} से० है। धन (μ) मेसान इस क्रिया द्वारा एक पाजीट्रान तथा दो न्यूट्रिनों देता है। इसी प्रकार ऋण म्यू मेसान एक इलेक्ट्रान एवं दो न्यूट्रिनो उत्पन्न करता है।

इनकी खोज १६३६ में एंडरसन तथा नेदर मेयर ने की थी।

धन पाई (π) मेसान एवं ऋण पाई (π) मेसानः

यह मेसान भी अंतरिक्ष किरणों द्वारा द्रव्य पर क्रिया स्वरूप उत्पन्न होते हैं। इनकी खोज १६४७ में इंगलैंड के पौवेल (Powell) ने की थी। इन पर आवेश की मात्रा म्यू (μ) मेसान के समान होती है परन्तु यह उनसे कुछ भारी होते हैं। पाई मेसान इलेक्ट्रान से २७१ गुना भारी होते हैं।

पाई (π) मेसान भी अस्थिर कण है और शीघ्र ही म्यू (μ) मेसान में परिणित हो जाते हैं। इसका अर्ध जीवन काल $१०^{-८}$ से० है।

$$\pi^{+} \rightarrow \mu^{+} + \text{न्यूट्रिनो}$$
$$\pi^{-} \rightarrow \mu^{-} + \text{न्यूट्रिनो}$$
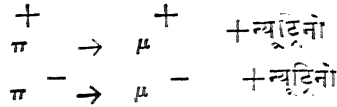
सर्वप्रथम पाई मेसान की कल्पना जापानी भौतिक शास्त्री युकावा (Yukawa) ने की थी। उन्होंने नाभिक की स्थिरता को समझाने के लिए इस कण की उपस्थिति का सुझाव रखा।

उदासीन पाई (π) मेसानः

इसकी खोज १६४० में हुई। यह इलेक्ट्रान से २६३ गुना भारी है। इस प्रकार यह धन एवं ऋण पाई (π) मेसानों से थोड़ा हल्का है। इसका अर्ध जीवनकाल अत्यन्त सूक्ष्म है ($१०^{-१४}$से०)। यह स्वतः दो फोटान में परिणित हो जाता है।

$$\mu^{\circ} \rightarrow \text{फोटान} + \text{फोटान}$$
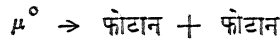
वी (V) कणः

यह अंतरिक्ष किरणों के निरीक्षण द्वारा देखे गये। ये प्रोटान से अधिक भारी होते हैं। इनका भार इलेक्ट्रान से २,२०० गुना होता है। वी (V) कण धन आवेश युक्त, ऋण आवेश युक्त एवं उदासीन अवस्था में पाये गये हैं। यह अत्यन्त अस्थिर कण है। यह संभव है कि अभी कुछ और वी (V) कणों की खोज हो।

न्यूट्रिनो (Neutrino):

इस कण की कल्पना स्वीटजरलैंड के वैज्ञानिक पाउली (Pauli) ने की। इस कण को आवेश रहित और इसका भार इलेक्ट्रान से भी बहुत न्यून समझा गया। प्रायः रेडिय-धर्मी तत्वों के रूपान्तर द्वारा इलेक्ट्रान एवं पाजीट्रान उत्पन्न होते हैं। इस क्रिया को समझाने के हेतु न्यूट्रिनों की कल्पना की गई थी। सन् १६५५ में केलीफोर्निया, अमेरिका में इस खोज की पुष्टि निरीक्षण द्वारा सम्भव हो सकी।

प्रति-प्रोटान (Anti-Proton):

पाजीट्रान अथवा धन इलेक्ट्रान की खोज के पश्चात् वैज्ञानिक ऐसा कण ढूढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे जो प्रोटान का संभारी हो परन्तु उसमें समान ऋण आवेश हो। १६५५ में केलीफोर्निया में

सेग्रे (Segre) एवं चेम्बरलेन (Chamberlıne) इस कण की खोज में सफल हुए। इसका नाम ऐंटी प्रोटान (Anti Proton) या प्रति प्रोटान रखा गया। इन दोनो वैज्ञानिकों को १६५६ का भौतिकी नोबेल पुरस्कार इसी खोज पर प्रदान किया गया है।

प्रति लेम्बडा (Anti Lambda) अथवा प्रति-द्रव्य (Anti-matter):

सन् १६५८ में इस कण की खोज की गई। सर्वप्रथम यह कण केलीफोर्निया विश्वविद्यालय लारेंस विकिरण अनुसंधान शाला (Lawrence Radiation Laboratory) में लिये गये निरीक्षण चित्र में देखा गया। इसके गुण न्यूट्रान के विपरीत हैं। इसी कारण इसका नाम प्रति-द्रव्य या प्रति-लैम्बडा रखा गया। १६५६ में फिर यह दूसरी बार देखा गया।

प्रति-लैम्बड़ा अस्थिर कण है और शीघ्र ही प्रति-प्रोटान में परिणित हो जाता है। ॥

उपरोक्त कणों की खोज हमारें समक्ष है। परन्तु अभी क्या मालूम कितने कण और खोजे जायँ। न जाने भविष्य में और क्या क्या शोधें हों।

(१०६ वें पेज का शेष)

लिपिता का और बाह्य वातावरण में मन्द गति से होने वाले भौतिक-रासायनिक परिवर्तन से संमंजित होने का गुण है। इन गुणों से परिपूर्ण द्रव्य के संश्लेषण की कल्पना ऐसे सब ग्रहों की सतह पर की जा सकती है जिन पर पानी की भांति का कोई द्रव हो जिसके माध्यम से विभिन्न अणुओं को पास-पास आने का अवसर मिले, पास में सूर्य की भाँति का ऊर्जा-स्रोत हो जहां से पारबैंगनी विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के रूप में ऊर्जा प्राप्त हो, जिसके वातावरण की भौतिक-रासायनिक स्थितिओं में परिवर्तन मन्द गति से होता हो और अणु-विकास के लिये लगभग ४००—५०० करोड़ वर्ष मिलें। हाँ, इन विभिन्न ग्रहों पर संश्लेषित प्रोटोप्लाज्म का रासायनिक संयोजन और उससे विकसित जीवों की आकृति पृथ्वी के प्रोटोप्लाज्म और यहाँ के जीवों के अवश्य भिन्न होगी।

कृषि-रसायन—एक झाँकी

डा० शिवगोपाल मिश्र

सभ्यता के आदिकाल से कृषि कर्म होता आया है और अनेक ऐसे सिद्धान्त एवं कारण ढूँढ निकाले गये हैं जिनके द्वारा अधिकाधिक उपयोगी अन्नों का उत्पादन होता रहा है। सम्भवतः मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना कृषि है। उसके न करने पर सम्पूर्ण विश्व क्षुधा की अग्नि से स्वयमेव भस्म हो सकता है।

प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में कृषि का बड़ा ही मनोहारी उल्लेख मिलता है। रोम में ईसा की तीसरी शती से ईसा की प्रथम शती तक पाँच प्रसिद्ध कृषि-वैज्ञानिक, कैटो, वैरो, वर्जिल, कालुमेला तथा प्लिनी हुये जिन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं जो यूरप के विभिन्न देशों में सोलहवीं शती तक अनूदित हो-होकर कृषि क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन करती रहीं। भारत में कृषि का विकास ईसा की कई शताब्दियों पूर्व से हर्ष के काल तक होता रहा। फिर मुगलकाल में उसे वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की गई। प्राचीन कृतियों में पराशर मुनि द्वारा रचित कृषि-पाराशर हमारे देश का प्रमुख कृषि-ग्रन्थ है। किन्तु अन्य पाश्चात्य देशों की ही भाँति भारत में भी वास्तविक वैज्ञानिक कृषि का विकास नहीं हो पाया था। जिस प्रकार देश-विदेशों के कीमियगार लोहे को सोने में परिवर्तित करने के प्रयासों में शतियों उलझे रहे उसी प्रकार कृषि-क्षेत्र में भी विचारकों का अधिकांश ध्यान भूमि उर्वरता के लिये विभिन्न खादों के प्रयोग तक ही सीमित रहा।

किन्तु दोनों ही श्रेणियों के वैज्ञानिकों को "रसायन शास्त्र" के माध्यम से सफलता मिली। कृषि, जिसका विस्तार अनन्त है, सर्वप्रथम रासायनिक दृष्टिकोण से कृषि-विज्ञान के रूप में पल्लवित हुई। आज तो कृषि-विज्ञान की अनेक प्रशाखायें हो गई हैं और कृषि-रसायन अंगमात्र बन गया है किन्तु फिर भी वह अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठित एवं मान्य है। रसायन वेत्ताओं के ही अथक प्रयासों से कृषि में उर्वरकों को प्राथमिकता प्राप्त हुई है और विश्व में उर्वरकों के स्रोतों की खोजें हुई हैं। आज विश्व के अग्रणी राष्ट्र इन्हीं उर्वरकों का उत्पादन करना गौरव की बात समझते हैं। रसायन शास्त्रियों ने ही सूक्ष्म तत्वों की महत्ता को कृषि-पद्धति में स्वीकृत दिलाई। उन्होंने ही फार्म पर पैदा होने वाली कृषि सामाग्रियों के उचित उपयोग के लिये "फार्म केमर्जी" या "फार्म-विज्ञान" की नींव डाली। भूमि-सुधार के कार्य में भी वे अग्रणी रहे हैं और जीव-रसायन शास्त्रियों ने तो मानों कृषि को नई दिशा ही प्रदान की हो। अब सम्पूर्ण विश्व में विज्ञान की नवीन खोजों को कृषि में सर्वप्रथम प्रयुक्त करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार जहाँ पहले रसायन शास्त्र ही कृषि का पोषण करता, अब विज्ञान के सभी अंग उसे लाभ पहुँचाने लगे हैं। कृषि में "परमाणु शक्ति" का प्रयोग प्रायः इसी दिशा में प्रथम एवं सफल प्रयास कहा जा सकता है। सारांश यह कि कृषि शास्त्र का अध्ययन अत्यन्त विस्तृत हो चुका है।

कृषि-रसायन का प्रारम्भ बेकन (१५६१-१६२६ ई०) के सूक्ष्म निरीक्षण एवं तथ्यों के विवेचन पर जोर देने की प्रक्रिया से होता है। सन् १६५६ के लगभग दो विचार धारायें थीं—

(१) नवीन कृषि का विकास तथा (२) पौदों के भोजन की व्यवस्थित खोज। ये दोनों धारायें सन् १८४० तक पृथक-पृथक बहती रहीं। लीबिग ने अन्ततः वैज्ञानिक कृषि की नींव डाली।

नवीन कृषि के अन्तर्गत पाश्चात्य देशों में पर्ती-प्रथा का अन्त करके तिसाली खेती में हरी फसलों को स्थान दिया गया। पैलिसी ने १५६३ ई० में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त—लवण सिद्धान्त, की स्थापना की जिसके अनुसार फसलें मिट्टी से लवण ग्रहीत करती हैं और डंठलों को मिट्टी में जोत देने से 'लवण' की पुनर्स्थापना होती है। इसके विपरीत फ्रांसिस बेकन का विश्वास था कि पानी ही पौदों का प्रमुख खाद्य पदार्थ है। मिट्टी तो उन्हें शीत या ताप से बचाती भर है। वान हेलमाण्ट (१५७७-१६४४ ई०) ने भी पानी को पौदों का एकमात्र खाद्यपदार्थ स्वीकृत किया। इसके कुछ वर्षों बाद ग्लाबर ने एक नवीन सिद्धान्त निकाला जिसके अनुसार "शोरा" ही वनस्पतियों के लिये आवश्यक तत्व था। उसने तर्क प्रस्तुत किया कि यह शोरा पशुओं के मल तथा मूत्र में पाया जाता है अतः यह पौदों में अवश्य वर्तमान रहा होगा क्योंकि पशु चारे पर निर्भर रहते हैं। उसने घोषणा की कि शोरे के प्रयोग से अन्नोत्पादन में वृद्धि आती है। सन् १६९९ में जान वुडवर्ड ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि तरकारियाँ पानी से नहीं वरन् पृथ्वी से उत्पन्न हैं। सन् १७५५ ई० में इंगलैंड में स्थापित "एडिनबरा सोसाइटी" ने फ्रांसिस होम को इस हेतु नियुक्त किया कि वह यह देखें कि रसायन शास्त्र के माध्यम से कृषि सिद्धान्त कहां तक प्रतिपादित होते हैं। सचमुच कृषि-रसायन की यह प्रथम नींव थी। अपने अन्वेषणों से होम ने उर्वर मिट्टियों में "तैल" की कल्पना की और पौदों के लिये छः उपयोगी कारण बताये – वायु, जल पृथ्वी, लवण, तैल तथा अग्नि। सन् १७६१ में स्वीडेन के प्राध्यापक वैलेरियस ने पौदों का रासायनिक विश्लेषण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पौदों का खाद्य स्रोत "ह्यूमस" है। इसके पश्चात पौदों में "क्षार" की उपस्थिति सर्वमान्य हुई। इसके निराकरण के लिये सन् १८०४ ई० में जेनेवा के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थेयोडोर सासरे ने यह सिद्ध किया कि ह्यूमस में भी वही क्षार होते हैं जो पौदों में वर्तमान हैं परन्तु प्राप्त राख का भार मिट्टी तथा पौदे की उम्र पर निर्भर करता है।

सन् १८३४ ई० में जे० बी० बोसिंगाल्ट ने, जो दक्षिणी अमेरिका का एक साहसिक पर्यटक था, अपने खेतों में प्रयोग प्रारम्भ किये। उसने सर्वप्रथम वैज्ञानिक विधियों को क्षेत्रीय प्रयोगों में व्यवहृत किया और महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किये। परन्तु इस शताब्दी की सबसे आश्चर्यजनक एवं क्रान्तिकारी घटना थी जर्मनी के सुप्रसिद्ध कार्बनिक रसायनज्ञ लीबिग की घोषणा, जिसमें उसने बड़े ही मार्मिक शब्दों में समकालीन वनस्पति शास्त्रियों की आलोचना करते हुये 'ह्यूमस सिद्धान्त' पर वज्रपात किया। उसने कहा, "रसायन शास्त्रियों के समस्त विवेचन निष्फल तथा वृथा हैं क्योंकि बड़े से बड़े वनस्पति शास्त्रियों को भी कार्बोनिक अम्ल, अमोनिया, अम्ल तथा क्षार शब्द ऐसी ध्वनियाँ प्रतीत होती हैं जैसे उनके कोई अर्थ ही न हों और ऐसी भाषाओं के शब्द लगते हैं जिनके कोई भाव न हों।" उसने दलील रखी कि पौदों के पास कार्बोनिक अम्ल का अक्षय भण्डार है किन्तु यदि पौदों के उगते समय मिट्टी में ही वह उत्पन्न होती रहे तो समय की बचत होती है। ह्यूमस का वास्तविक कार्य है कार्बन डाइआक्साइड पैदा करना जो मिट्टी के अविलेय पदार्थों को विलेय करती है। अमोनिया के रूप में पौदे नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं जो खादों से अथवा वायुमण्डल से ग्रहीत है। पृथ्वी को उर्वर रखने के लिये यह आवश्यक है कि नाइट्रोजन तथा अन्य

खनिज पदार्थ जो पृथ्वी से अपहरित हो चुके हैं, खाद के रूप में मिट्टी में मिला दिये जायं। यही "लीबिग का खनिज-सिद्धान्त" है जिसके अनुसार खेतों की फसलों में वृद्धि या कमी खाद के रूप में डाले गये खनिजों की प्रचुरता या न्यूनता पर निर्भर है।

लीबिग की इस घोषणा से कृषि में उर्वरकों एवं खादों को अत्यधिक प्रश्रय मिला। परन्तु इस घोषणा में कुछ त्रुटियाँ थीं जिनकी ओर लाज तथा गिलबर्ट ने संकेत किये। सन् १८५० ई० में 'वे' महोदय ने खनिजों की विलेयता को आवश्यक बताया। बाद में 'नाप' ने जलीय प्रयोगों से यह निश्चित किया कि पौदों के जीवन के लिये नाइट्रोजन, फासफोरस तथा पोटैशियम के अतिरिक्त कैलशियम, मैगनीशियम, लौह, गंधक, कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन की आवश्यकता होती है। फिर माजे, वारिंगटन, राउलिन, सामर-लिपमान तथा आर्नन ने अनेक सूक्ष्म तत्वों को पौदों के उचित विकास के लिये आवश्यक बताया।

यह भली-भाँति ज्ञात हो चुका है कि पौदों के लिये आवश्यक तत्व तीन स्रोतों से प्राप्य हैं। प्रथम वायुमण्डल से, द्वितीय जल तथा तृतीय मिट्टी से। पौदों का ९०% प्रकाश संश्लेषण से निर्मित पदार्थ से बना होता है। १०% मिट्टी के तत्वों से निर्मित होता है। परन्तु मिट्टी के तत्व बड़े ही प्रभावकारी होते हैं और उनमें तनिक भी अन्तर आने पर उपज में भारी कमी आती है। यही कारण है कि वर्तमान काल में मिट्टी में वर्तमान तत्वों पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

मिट्टी में तत्वों की परीक्षा के लिये रसायन शास्त्र की विश्लेषणात्मक पद्धति का अनुसरण किया जाता है। ऐसे विश्लेषणों से भूमि में वर्तमान समस्त तत्वों की मात्रायें ज्ञात की जाती हैं। फिर उपलब्ध तत्वों की जाँच होती है। भूमि से पैदावार की प्राप्ति इन्हीं उपलब्ध तत्वों पर निर्भर करती है। विशेषतः उन तत्वों को जिन्हें सूक्ष्म-तत्वों की संज्ञा प्रदान की जाती है बड़े महत्व के हैं। उनकी अधिकता, न्यूनता अथवा उपलब्धि के फलस्वरूप फसलों में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं जिनसे अन्नोत्पादन में भारी कमी आ जाती है। बोरन, मैंगनीज, मालिब्डनम, लौह तथा ताम्र कुछ ऐसे ही तत्व हैं। इन तत्वों की पूर्ति के लिये या तो इनके खनिज या लवणों की अत्यल्प मात्रा अन्य उर्वरकों के साथ डाली जाती है अथवा घोल के रूप में पत्तियों में इनका छिड़काव किया जाता है।

कृषि-रसायन ने आवश्यक तत्वों की खोज के ही सिलसिले में उर्वरक-उद्योग को अत्यन्त प्रशस्त किया है। प्रायः सभी राष्ट्रों के पास संश्लिष्ट नाइट्रोजन निर्मित करने के बड़े-बड़े कारखाने हैं। हमारे देश में सिंदरी के अतिरिक्त अन्य कारखाने भी बन रहे हैं। फासफेट उर्वरकों के लिये चट्टानीय फासफेटों को प्रयुक्त किया जाता है। हड्डी के चूरे की ओर भी सबों की दृष्टि गई है। इन उर्वरकों के उत्पादन से कृषि-रसायन उतना सम्बद्ध नहीं जितना उनके भूमि में डाले जाने की विधियों तथा मिट्टियों और फसलों में उनकी प्रतिक्रिया से सम्बद्ध है। कृषि-रसायन का यह प्रमुख कार्य है कि वह प्रति एकड़ में डाली जानी वाली उर्वरक-मात्रा का निश्चय करे, भूमि तथा जलवायु के अनुसार उर्वरक निर्धारित करे और अन्ततः विभिन्न उर्वरकों की उपयोगिता का परीक्षण करे। इसी सम्बन्ध में सूक्ष्म तत्वों को उर्वरकों के रूप में डाले जाने की सम्भाव्यताओं पर भी खोज की जाती है।

भूमि-निर्माण या मिट्टियों के विकास की प्रक्रिया भी कृषि-रसायन का महत्वपूर्ण अङ्ग है। इस दिशा में रूस, अमेरिका तथा इङ्गलैंड में प्रचुर कार्य हुआ है। भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण इसी प्रकार की विकास-प्रक्रिया के अध्ययन द्वारा किया जा रहा है। भूमि-वर्गीकरण तथा मानचित्र निर्माण भी इसी दिशा के अंग हैं। भारत भर में अनेक भूमि-परीक्षण प्रयोग-शलायें स्थापित की गई हैं जहाँ मिट्टियों की रासायनिक, भौतिक तथा जीव-रासायनिक परीक्षायें की जाती हैं।

जीव-रसायन कृषि रसायन की ही एक शाखा है। मिट्टियों में नाइट्रेट का निर्माण विविध जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है। इन जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन विविध संवर्धाशों के माध्यम से किया जाता है। हरी फसलों में द्विदलीय फसलों की जड़ों में ग्रंथियाँ होती हैं जिनमें वायुमण्डल का नाट्रोजन स्थिर होता रहता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण अन्य जीवाणुओं यथा एजोटोबैक्टर एवं पैस्टोरियमम द्वारा भी स्वतः सम्पादित होता है। कृषि-रसायन में इस प्रकार की प्रक्रिया का अध्ययन होता है।

फसलों के रोगों तथा हानिकारक कीट-पतंगों को नष्ट करने के लिये कृषि-रसायन नवीन रासायनिक उपकरण प्रदान करता है। अनेक कीटमारक रासायनिक यौगिकों का निर्माण किया जा चुका है जिसके उपयोग से फसलों की रक्षा की जा सकती है। शस्यों के अनेक रोगों का पता लगाकर उनका रासायनिक उपचार किया जाने लगा है। हानिकारक घासों का विनास भी इसी प्रकार से किया जाता है।

कृषि-रसायन के द्वारा भूमि-संरक्षण एवं सुधार का अनुपम कार्य किया जाता है। ऊसरों के उर्वरीकरण में जिप्सम, गंधक तथा अन्य प्रकार के रासायनिक पदार्थों का प्रयोग होता है। भूमि-संरक्षण में ह्यूमस की वृद्धि के लिये नवीन साधन ढूँढ़े गये हैं। रेगिस्तानों एवं रेतीली मिट्टियों के सुधार तथा ऊसरों के लिये भी बहुसंश्लिष्ट प्रभावक (सिन्थेटिक पॉलीएलेक्ट्रोइलाइट या सॉइल कण्डीशनरों) की नवीन खोज की गई है। भूमि के कणों के परस्पर बद्ध रखने वाले और अनेक पदार्थ खोजे गये हैं।

कृषि से प्राप्त विभिन्न पदार्थ विशेषतया सेल्यूलोस, तेल अथवा स्टार्च का वृहद् मात्रा में निर्माण एवं उद्योगों में उनकी प्रयुक्ति के लिये "फार्म केमर्जी" अथवा फार्म-रसायन का विकास किया गया है।

कृषि रसायन की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर हमारे देश में १६०० ई० के आसपास वैज्ञानिक कृषि का सूत्रपात हुआ। सर्व प्रथम जानवोयेल्कर, फिर लेदर तथा रायल कमीशन और अन्त में अपनी राष्ट्रीय सरकार के सुझावों से कृषि प्रारम्भ की गई। पहले पूसा (बिहार) में कृषि प्रायोगिक क्षेत्र की स्थापना की गई। बाद में भूचाल से प्रभावित होने पर दिल्ली स्थित पूसा में वही कार्य आगे बढ़ा। अब तो भारतीय कृषि अनुसन्धान विद्यालय के रूप में वह अत्यन्त विस्तृत हो चुका है और न केवल कृषि-रसायन वरन् कृषि-विज्ञान के अन्य अंगों पर उच्चस्तरीय अनुसन्धान कार्य होता है।

उच्च बहुलक या हाई पालीमर

डा० रामदास तिवारी

ऐतिहासिक

वायरस ऐसे पदार्थ हैं जो जड़ पदार्थों के समान व्यवहार करते हैं और चेतन पदार्थों की भाँति जीवित प्राणियों के समान भी क्रियायें करते हैं। इन्हें वास्तव में जड़ और चेतन के बीच की कड़ी समझा जा सकता है। अब यह सम्भव हो गया है कि इन पदार्थों को केलासित रूप में प्राप्त कर लिया जाय या फिर इच्छानुसार जीवित अवस्था में निर्मित कर लिया जाय। इस वैज्ञानिक सफलता के परिणामस्वरूप जीवन प्रक्रम के सम्बन्ध की उलझी हुई गुत्थी कुछ सुलझती दृष्टि-गोचर होती है। अभी तक जीवित वस्तुओं के सृजन के हेतु एक ऐसी शक्ति की कल्पना की जाती थी जो मानव सामर्थ्य से परे की वस्तु थी किन्तु इस क्षेत्र में जो शोधकार्य हुआ है उससे यह आशा बंध गई है कि मानव जीवन के भेद के रहस्य का उद्घाटन कर सकेगा। इस प्रकार बहुलक-विज्ञान का महत्व बढ़ गया है।

जर्मनी के ईमिल फिशर आधुनिक बहुलक-रसायन के जनक कहे जाते हैं।। सन् १९१४-ई० में उन्होंने पालीपेप्टाइड का निर्माण किया। इसी क्षेत्र में लगभग इसी समय रूस के लेबदेव ने ब्यूटाडाइन का निर्माण किया और उसे संयोजन विधि से रबर में परिवर्तित किया। हाल ही में विगनीन ने संयोजन-विधि से एक अष्टसदस्यीय वलय के पालीपेप्टाइड का निर्माण किया जिसका नाम आक्सीटोसीन है। यह जीवन की प्रक्रियाओं पर माइक्रोग्राम सान्द्रण में भी प्रभावी सिद्ध हुई है। इस खोज के लिये इन्हें सन् १९५५ ई० में इन्हें नोबिल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। सन् १९५३ में बहुलक सम्बन्धी गवेषणाओं पर स्टैनडिंगर को सन् १९५७ ई० में न्यूक्लिइक अम्लों की संरचना पर प्रकाश डालने के लिये सर अलेक्जेण्डर टाड को और इनसुलीन के अणु की पूर्ण संरचना ज्ञात करने के लिये सैंगर को नोबिल पुरस्कार मिले। सैंगर का कार्य कठिन था क्योंकि इनसुलीन के एक अणु में ७७७ परमाणु होते हैं और उन परमाणुओं की स्थिति का औचित्य ज्ञात करना एक दुरूह कार्य था।

औद्योगिक क्षेत्र में अनेकों महत्वपूर्ण बहुलकों पर कार्य हुआ है। इनमें से प्लास्टिक, रेजिन, रबर, बेकलाइट, यूरिया, मेलामीनें, एल्कालाइडें, एपोक्सी रेजिनें, पोलीस्टाइरीनें, पोली-मीथिल मीथाक्रिलेटें इत्यादि हैं। इन सब सफल प्रयोगों के बाद भी सन् १९३० तक बहुलकों के सम्बन्ध में प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य अज्ञात ही रहे। प्रारम्भिक कलिल-वैज्ञानिकों ने बहुलकों का संयोजन-कलिलों के वर्ग में रखा किन्तु स्टैनडिंगर ने बताया कि ये यौगिक सहयोजनीय हैं जिनका अणुभार अत्यधिक है। मायर और मार्क ने एक्स-रे सबंधी अध्ययन से स्टैनडिंगर के कथन की पुष्टि की। परिणामस्वरूप कलिल-वैज्ञानिकों की धारणा निर्मूल सिद्ध हुई और कार्बनिक

विज्ञान में संरचना सम्बन्धी खोजों की सहायता से बहुलकों की रासायनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा हुई।

बहुलकों का निर्माण:

बहुलक निर्माण क्रिया दो विधियों से होती है, पहली क्रिया में कई अणु परस्पर के संयोग से एक बृहत अणु का निर्माण करते हैं जिसे **बहुसंघनन** (Polymerisation) कहते हैं। दूसरी क्रिया में एक अणु में दूसरा अणु मिलता है फिर इन दो से तीसरा और इन तीन से चौथा और इसी प्रकार क्रिया चलती रहती है और एक बृहत अणु का निर्माण हो जाता है। इस क्रिया को योगशील बहुलकीकरण कहते हैं। पहली क्रिया से निर्मित बहुलकों में नाइलोन एक पॉली एमाइड और टेरिलीन (एक पॉली एस्टर) है और दूसरी क्रिया से पॉलीस्टिरीन और पॉली वीनाइल क्लोराइड-एसीटेट के बहुलक हैं।

बहुसंघनन की क्रिया से बहुलकों के निर्माण की क्रिया सरलता से समझी जा सकती है। विशेष रूप से निम्नलिखित तीन विषयों के सम्बन्ध में प्रयोगों से सारा पता लग जाता है। ये तीन विषय हैं

(१) **बहुसंघनन** गतिज विज्ञान (२) **आयाम वाले बहुलकों का शिलषीकरण और** (३) अणुभार का विभाजन, जिसमें में यह मान लिया जाता है कि **बहुसंघनन** की क्रिया क्रमबद्ध प्रक्रिया है और दिये गये भाग लेने वाले समूहों में होने वाली आन्तरिक रासायनिक प्रक्रिया अणु के आकार पर निर्भर नहीं है। इन तीनों विषयों पर सन्तोषजनक कार्य किया गया है। प्रयोगों से सभी सैद्धान्तिक परिणामों की पुष्टि होती है।

योगशील बहुलकीकरण क्रिया के विषय में जानने के लिये विनाइल बहुलक क्रिया पर अधिक काम हुआ है। सन् १९३० के लगभग यह निश्चित हो गया कि यह श्रंखलबद्ध प्रक्रिया है। यह बहुलक क्रिया निम्न तीन क्रमों में सम्पन्न होती है।

(१) प्रारम्भिक $M \rightarrow M^{*}$

(२) प्रसरित $M_n^{*} + M \rightarrow M_{n+1}^{*}$

(३) अन्तिम $M_m^{*} + M_n^{*} \rightarrow M_{m+n}$ अथवा $M_m + M_n$

प्रारम्भिक :

प्रारम्भ ऊष्मा, प्रकाश रसायन या मुक्त मूलक विधि में से किसी से भी हो सकता है। उत्प्रेरक के बिना ऊष्मा द्वारा अथवा प्रकाश द्वारा प्रारम्भ की गई क्रियाओं के द्वारा प्रायोगिक तथ्य प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। इस कारण से सिद्धान्त स्थापन में भी बाधा पड़ जाती है।

वीनाइल बहुलक क्रिया में अनेकों ऐसे पदार्थों का पता लगा है जो ऐसे मुक्त मूलकों के सृजन में समर्थ है जो शक्तिशाली उत्प्रेरक सिद्ध हुये हैं। इनमें बेंजॉयल परऑक्साइड और एजो-

क्सि आइसो ब्यूटिरोनाइट्राइल प्रमुख हैं। यदि अनुनादन (रेज़ोरेन्स) द्वारा मुक्त मूलकों को प्रतिस्थापित कर दिया जाय तो वे उत्प्रेरण में सफल नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ ट्राइफीनाइल मीथिल मूलकों द्वारा वीनाइल या एलाइल एसीटेटों के बहुलक नहीं बन पाते। बेंजाइल परआक्साइड में O—O बंधन टूट जाता है और $C_6 H_5 COO$ के दो मूलक बनते हैं जो बाद में दो फीनाइल मूलकों को जन्म देते हैं। इन दोनों मूलकों से बहुलक बनने में सहायता मिलती है। एज़ो बिस-आइसो ब्यूटिरोनाइट्राइल में दोनों C—N के बन्धन टूट जाते हैं और दो

$$\begin{matrix} H_3C \\ H_3C \end{matrix} > \underset{\underset{CN}{|}}{C}+$$

मूलक बन जाते हैं जो बहुलक बनाने में सहायक होते हैं।
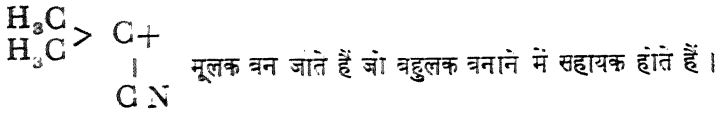
प्रसरित :

सक्रिय केन्द्र के विकास की क्रिया पर प्रयोग किये गये हैं। प्रकाश-रसायन की विधि से चरम प्रसरण गति ज्ञात कर ली जाती है। साधारण मोनोमरों के लिये आवृति मूलक १०⁶ और सक्रियकरण ऊर्जा लगभग ५ किलो केलरी होती है।

ताप के सिद्धान्त के अनुसार मोनोमरों के बहुलक में परिवर्तित होने पर मुक्त ऊर्जा का ह्रास होता है। $\triangle H$ का मान ऋणात्मक होता है अर्थात् बहुलकीकरण की क्रिया में ताप उत्पन्न होता है। मोनोमर में सभी प्रकार की स्वतन्त्र्य संख्या रहती है किन्तु बहुलकों में सब प्रकार के स्वातन्त्र्य नष्ट हो जाते हैं, केवल कुछ शिथिल रूप में दोनों प्रकार के आन्तरिक घूर्णन स्वातन्त्र्य संख्या और कम्पन संख्या स्वातन्त्र्य ही रह जाते हैं। इस प्रकार बहुलकीकरण से एनट्रापी का ह्रास हो जाता है और मुक्त ऊर्जा समीकरण $\triangle F = \triangle H - T \triangle S$ में एनट्रापी और एनथेलपी विपरीत दिशाओं में होते हैं। सम्भव हो सकता है कि किसी ताप पर एक इनमें से एक दूसरे से सबल सिद्ध हो। ऐसे ताप पर बहुलक मोनोमर से निर्बल होगा और बहुलक फिर से मोनोमरों में विभाजित हो जावेगा। इस ताप के समीप के क्षेत्र में प्रयोग करके बहुलकीकरण का ताप और एनट्रापी ज्ञात की सकती है।

अन्तिम :

आयनों द्वारा किये गये बहुलकीकरण में अन्तिम क्रम एक-आणुक होता है। मुक्त मूलकों द्वारा उत्प्रेरित बहुलकीकरण द्वि-आणुक होता है जहाँ उत्प्रेरक निर्भरता गति उत्प्रेरक के सान्द्रण के वर्गमूल के अनुपात में होती है। अन्तिम क्रिया संयोजन से होती है या असमानुपातिक से, इस विषय में मतभेद है।

शृंखलाबद्ध स्थानान्तरण:

विकसमान मुक्त मूलक कभी-कभी और बढ़ने की अपेक्षा अपने समीप के किसी अणु से प्रतिकृत होता है और एक "मृत बहुलक" और एक नवीन मुक्त मूलक को जन्म देता है। यह मुक्त मूलक बहुलक के विकास के लिये नवीन सक्रिय केन्द्र बन जाता है यथा :—

$Mn + CCl_4 > Mn\ Cl + CCl_3*$

इस समीकरण में Mn विकास क्रम में मुक्त मूलक है, MnCl मृत बहुलक है और $C\ Cl_3$ एक नवीन सक्रिय मुक्त मूलक है। जब ऐसी स्थित उत्पन्न होती है तब बहुलकीकरण की गति और गत्यात्मक श्रंखला-दूरी तो अपरिवर्तित रहती हैं किन्तु आणविक भार घट जाता है।

बहुलक निर्माण में नवीन प्रगति

हाल ही में बहुलक विज्ञान के कुछ विभिन्न क्षेत्रों मे विशेष प्रगति हुई है। इनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है :

(१) शिल्प बहुलक (ग्रैफ्ट पालीमर) तथा रुद्ध बहुलक (ब्लाक पालीमर)

शिल्प बहुलक निर्माण के लिये एक बहुलक श्रंखला समूह को लेकर उसे किसी दूसरे प्रकार के एकलक पर विकसित किया जाता है। ऐसी स्थिति में एक बहुलक से दूसरे बहुलक का इस प्रकार से मिलन होता है कि पहला दूरे से शाखा के रूप में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार अलग-अलग शाखायें अलग-अलग एकलकों की होती हैं। इस विधि से पॉलीस्टाइरीन की श्रंखला पर मेथिल मीथाक्रिलेट की शाखाओं वाले एक शिल्प बहुलक का निर्माण किया जा सकता है।

रुद्ध-बहुलक के निर्माण के लिये किसी केश नलिका से होकर एकलक दूसरे एकलक में तीव्र गति से प्रविष्ट किया जाता है। केश नलिका के किसी उपयुक्त स्थान पर बहुलकीकरण प्रारम्भ होता है। इस कार्य के हेतु एक अन्य विधि को साधारणतः काम में लाते हैं। इसके लिये पूर्वनिर्मित सीमावर्ती समूह रासायनिक क्रिया से एक दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं और एक नियंत्रित बहुलक बना देते हैं। इस विधि से टेरीलीन और पॉलीइथिलीन आक्साइड के संयोग से बहुलक बनाये गये हैं। इस प्रकार निर्मित बहुलक लगभग टेरीलीन के समान ही केलासित होता है किन्तु उसमें लचीलापन, आर्द्रता की पुनर्प्राप्ति और रंगों के साथ व्यवहार का गुण अधिक होता है।

(२) रेडियो-समावयवों का प्रयोग

उच्च बहुलक रसायन को समस्याओं पर प्रकाश डालने के लिये $C^{१४}$ और $S^{३५}$ का विशेष प्रयोग किया गया है। इन प्रयोगों से प्रारम्भ की चरम गति और क्षमता, अम्ल की प्रक्रिया की प्रकृति और मृत बहुलक के साथ श्रंखला के स्थानान्तरण की प्रकृति आदि का मापन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ बेंजोइल पर ऑक्साइड से उत्प्रेरित पॉलीस्टियरीन उत्प्रेरण के स्थान से असम्बद्ध है, उत्प्रेरण चाहे बेंजीन वलय पर हो चाहे कार्बोनिल कार्बन पर। इससे सिद्ध होता है कि $C_6\ H_5\ COO$ और $C_6\ H_5$ दोनों ही बहुलकीकरण उत्प्रेरण करते हैं।

(३) बद्ध (टैप्ड) मुक्त-मूलक

जब रासायनिक क्रिया से दीर्घजीवी मुक्त मूलकों का सृजन होता है तब अन्तिम गति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार बंधन में पड़े मुक्त मूलकों का अस्तित्व भौतिक और रासायनिक विधियों

से ज्ञात किया जा सकता है। बन्धक मुक्त मूलकों के प्राप्त करने के लिये किसी एकलक पॉयस पर उच्च शक्ति विकीर्ण करते हैं। इस विधि से प्राप्त मुक्त मूलकों का सदुपयोग, स्थानान्तरण ऐसे प्रयोगों के लिये विशेष सुविधाजनक है। और उसके पायस में जिसमें मुक्त मूलक हों, दूसरे एकलक के उपयोग से रुद्ध बहुलक का निर्माण किया जा सकता है।

(४) विशिष्ट विन्यासमय बहुलक

सन् १९५५ ई० में बहुलक रसायन के क्षेत्र में विशेष कार्य विन्यास के बहुलकों पर हुआ। इटैली के बान नाटा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के जीगलर ने विशिष्ट विन्यासमय बहुलकों का संश्लेषण किया। सभी प्राकृतिक उच्च बहुलकों के अणुओं का विन्यास अद्भुत प्रकार का होता है। लगभग एक शताब्दी तक संश्लेषण में रत रसायनज्ञों के सामने यह एक समस्या के रूप में रहा। प्राकृतिक रबर में केवल 'सिस' और प्रोटीन में केवल 'लीवो' रूप ही हैं किन्तु संश्लेषण विधि से प्राप्त पॉली आइसोप्रीन अणु में 'सिस' और 'ट्रान्स' दोनों रूप बिना किसी क्रम के होते हैं और यही अवस्था साधारण पॉलीस्टियरीन में 'डेक्स्ट्रो' और 'लेवो' रूपों की है। समूहों के विन्यास की इस क्रमहीनता के कारण केलासन जाल में यह बहुलक श्रंखलायें ठीक नहीं बैठतीं और फलस्वरूप इन पदार्थों के केलासन और यांत्रिक गुणों पर बुरा प्रभाव डालतीं हैं।

सन् १९५५ में जीगलर ने एल्यूमीनियम ट्राईएल्काइल और टाइटेनियम हैलाइड की प्रक्रिया द्वारा उत्प्रेरक का सृजन किया जिसकी सहायता से साधारण ताप और कम दाब पर इथिलीन के बहुलक निर्मित किये गये। इस पोली इथिलीन में विशेष गुण पाये गये यथा उच्च केलासन, उच्च घनत्व, उच्च गलनांक आदि। इसी प्रकार के उत्प्रेरकों की सहायता से पॉली स्टाइरीन आदि प्राप्त की गई। विषमावयवीय उत्प्रेरकों की सहायता से प्राकृतिक रबर का संश्लेषण किया गया जो पॉली आइसोप्रीन है। जीगलर के उत्प्रेरकों पर अधिक कार्य किया गया है क्यों कि यह औद्योगिक महत्व का है।

प्रोटीन सादृश्य यौगिकों का संश्लेषण

पॉलीन्यूक्लियोटाइटो और प्रोटीन सदृश्य यौगिकों के संश्लेषण में आजकल विशेष रुचि ली जा रही है। इन बहुलकों में एक विशेषता यह है कि अन्य विशाल अणुओं की भाँति ये सर्पिल रूप धारण करने की प्रवृत्ति दिखाते हैं और क्रमहीन रूप धारण नहीं करते बहुलकों के गुणों को समझने के लिये ये सर्पित संरचनायें विशेष महत्व की हैं।

कुछ विलक्षण बहुलक

आजकल कुछ विचित्र बहुलकों का निर्माण किया जा रहा है। पॉली विनाइल फ्लोराइड की फिल्म पर बाहरी प्रकाश का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। पॉली कार्बोनेटों का निर्माण किया जा रहा है जिसकी रेखासूची को लकड़ी के मोटे तख्ते में जड़ा जा सकता है। संश्लेषित ऊन का सल्फर क्लोराइड से निर्माण किया जा रहा है। यह भौतिक गुणों में प्राकृतिक ऊन के समान है। अत्यन्त उच्च गलनांक के कार्बनिक यौगिक निर्मित हो रहे हैं। पॉली स्टियरीन के एक समजातीय का गलनांक २६०° सेण्टीग्रेड है।

(शेष १२५ वें पृष्ठ पर)

एशिया में परमाणु अनुसंधान

दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया के बहुत से देश परमाणु के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए प्रयोग कर रहे हैं। इन देशों में भारत, बर्मा, लंका, पाकिस्तान और फिलिपाइन प्रमुख हैं। इन देशों में परमाणु शक्ति के विकास के लिए समितियाँ नियुक्त की गयी हैं। कोलम्बो योजना के उन्नत सदस्य देश, इन देशों के वैज्ञानिकों और शिल्पिको को ट्रेनिंग देने के अतिरिक्त अनुसंधान के लिए आवश्यक सामान की भी सहायता देते हैं।

बर्मा का परमाणु शक्ति केन्द्र :

तीन साल पहले बर्मा सरकार ने अपने यहाँ परमाणु शक्ति केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया था। बर्मा अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु शक्ति संस्था का सदस्य है। बर्मा का परमाणुशक्ति केन्द्र १०० एकड़ जमीन पर बनाया जाएगा। इस समय केन्द्र और प्रयोगशाला की इमारतें बनायी जा रही हैं। इस केन्द्र की प्रयोगशाला बर्मा में रेडियो आइसोटोप अनुसंधान करने वाली प्रमुख प्रयोग-शाला होगी। यहाँ पर खेती, चिकित्सा और उद्योगों में उपयोग के लिए आइसोटोपों पर अनुसंधान किए जाएंगे। प्रयोगशाला में ट्रेनिंग की भी व्यवस्था रहेगी। इसके अतिरिक्त यहाँ परमाणु भट्टी सम्बन्धी अध्ययन भी होगा।

केन्द्र में बहुत से भूगर्भ-वैज्ञानिकों को भी रखा गया है और बर्मा में खनिज यूरेनियम की खोज का काम शुरू किया गया है। हवाई जहाज से विशेष यंत्रों द्वारा चुने हुए क्षेत्रों की पड़ताल की गयी है। बर्मी वैज्ञानिकों ने यूरेनियम के विश्लेषण का काम शुरू कर दिया है। यूरेनियम की परीक्षा के लिए एक बड़ी प्रयोगशाला खोलने के लिए भी योजना है।

पाकिस्तान :

पाकिस्तान सरकार ने भी परमाणु शक्ति संस्था की स्थापना और परमाणुशक्ति के विकास की योजना बनाने के लिए परमाणुशक्ति समिति नियुक्त की है।

भारत :

कनाडा इस समय भारत में ७॥ करोड़ रु० की लागत की एक परमाणु-भट्टी लगा रहा है। यह वैज्ञानिक और शिल्पिक सहयोग का बहुत बड़ा उदाहरण है। यह भट्टी चालू हो जाने पर संसार की आइसोटोप तैयार करने वाली सर्वोत्तम भट्टियों में होगी। भट्टी अगले वर्ष चालू हो जाएगी इस भट्टी में हर प्रकार के आइसोटोप तैयार किए जा सकेंगे। यह भट्टी कनाडा की चाक-रिवर, आनटेरिओ में बनी एन० आर० एक्स० परमाणु-भट्टी के नमूने पर बनायी जा रही है। पर इसमें कुछ परिवर्तन और सुधार भी किए गए हैं। इस परमाणभट्टी पर कोलम्बो योजना के अन्तर्गत कनाड़ा

७५ लाख डालर खर्च करेगा। परमाणुभट्टी के लिए लगभग २० टन भारी पानी (हैवी वाटर) की आवश्यकता पड़ेगी, जिसे भारत ने अमरीका के परमाणुशक्ति आयोग से खरीद लिया है। इस परमाणुभट्टी का बनाना प्रारम्भ होने से अब तक भारत के परमाणुशक्ति विभाग के २७ इंजीनियर और शिल्पिक चाक-रिवर, आनटेरिओ की ४० हजार किलोवाट की परमाणुभट्टी में ट्रेनिंग पा चुके हैं।

आइसोटोपों की उपयोगिता :

इस परमाणुभट्टी के बन जाने पर उच्च अनुसंधान की सुविधा बहुत बढ़ जाएगी। यह भट्टी परमाणुशक्ति से सम्बन्धित भौतिक, रासायनिक, जीवविज्ञान और धातुकर्म के मौलिक अनुसंधानों के लिए बनायी जा रही है। इस भट्टी में चिकित्सा, खेती और उद्योग में उपयोग के लिए तथा रेडियो-सक्रियता की विधि से रासायनिक, जीव-विज्ञान और चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान करने के लिए आइसोटोप तैयार किए जाएंगे।

परमाणुशक्ति संस्थान :

ट्राम्बे (बम्बई के पास) का परमाणुशक्ति संस्थान भारत का परमाणुशक्ति अनुसंधान और विकास केन्द्र है। दो वर्ष पहले इसका उद्घाटन हुआ था। यह संस्थान २, ४०० एकड़ जमीन पर बना है और यहीं पर भारतीय परमाणुशक्ति आयोग के कार्यक्रमों के अनुसार नए-नए अनुसंधान होते हैं, जिनका बाद में उद्योगों में उपयोग किया जा सकता है।

इस समय संस्थान में ८०० भारतीय वैज्ञानिक और शिल्पिक कार्य कर रहे हैं। भारत में प्रशिक्षित परमाणु वैज्ञानिक तैयार करने के लिए इस संस्थान ने दो वर्ष पूर्व प्रशिक्षण प्रारम्भ किया। इसमें प्रति वर्ष २५० युवक इंजीनियरों और विज्ञान स्नातकों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

पारमाणविक अनुसंधान के लिए जिन यंत्रों और उपकरणों की आवश्यकता होती है, वे सब यहीं पर बनाए जा रहे हैं, जिससे देश विज्ञान के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया है। साथ ही बहुत सी विदेशी मुद्रा की बचत हुई है। ट्राम्बे में भारत की पहली परमाणुभट्टी अप्सरा, रेडियों-रसायन प्रयोगशाला और थोरियम साफ करने का यंत्र है। इनके अतिरिक्त कनाडा-भारतीय परमाणुभट्टी-जरलीना, यूरेनियम धातु यंत्र और फुएल-एलिमेंट बनाने के यंत्र शीघ्र ही बनकर तैयार हो जाएँगे।

अप्सरा :

भारत की पहली परमाणुभट्टी अप्सरा अगस्त १९५६ में चालू हो गयी थी। रूस के बाद एशिया में चालू होने वाली यह पहली भट्टी है। ईंधन के काम आने वाले फुएल एलिमेंटों के अतिरिक्त इस भट्टी को पूरा भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने ही बनाया है। इसका मानचित्र भी इन्होंने ही तैयार किया और आवश्यक मशीनें और उपकरण भारतीय कारखानों में बनाए गए। भारत को फुएल एलिमेंट (अलुमिनियम के डिब्बों में बन्द यूरेनियम और एल्युमिनियम की

मिश्र धातु की उन्नतोदर प्लेट) इंग्लैंड के परमाणुशक्ति विभाग ने कोलम्बो योजना के अन्तर्गत दिए। नकशा तैयार होने के एक साल बाद ही यह परमाणुभट्टी बनकर तैयार हो गयी थी।

इस भट्टी पर ३५ लाख रु० लागत आयी। यहाँ पर तैयार होने वाले आइसोटोप कृषि, चिकित्सा और उद्योगों में काम आ रहे हैं। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों के अनुसंधान कार्यों में भी इनका उपयोग हो रहा है। यहाँ पर परमाणुभट्टी-शिल्प भी सिखाया जाता है। भौतिकी, इंजीनियरी और जीवविज्ञान के उन अनुसंधानों की भी सुविधा है, जिनमें न्यूटोनों की तेज धारा की आवश्यकता होती है।

जरलीना :

इस समय दूसरी परमाणुभट्टी-जरलीना बनायी जा रही है। यह भट्टी नयी परमाणुभट्टियों की प्रणालियों के अध्ययन और मानचित्र तैयार करने में सहायक होगी।

रेडियो-रसायन प्रयोगशाला :

रेडियो-रसायन प्रयोगशाला में रसायनज्ञों को अत्यन्त रेडियो सक्रिय पदार्थों के प्रयोग की ट्रेनिंग दी जाती है। परमाणुशक्ति संस्था की सब शाखाओं में अनुसंधान के लिए रेडियो सक्रिय पदार्थों के प्रयोग में भी प्रयोगशाला मदद करती है। इंग्लैंड के वैज्ञानिक डा० वेल्श इस प्रयोग-शाला के संगठन और संचालन में सहायता कर रहे हैं। डा० वेल्श की सेवायें कोलम्बो योजना के अन्तर्गत प्राप्त हुई हैं। प्रयोगशाला की स्थापना इंग्लैंड के एक और वैज्ञानिक श्री जी० आर० हाल की देखरेख में हुई। हारवेल के परमाणुशक्ति अनुसंधान संस्थान ने श्री हाल को इस काम के लिए भारत भेजा था।

थोरियमयन्त्र :

थोरियम यंत्र चार वर्ष पूर्व चालू हुआ था। इस समय इसकी उत्पादन-क्षमता ६ गुनी बढ़ गयी है। इस यंत्र से परमाणुशक्ति के उत्पादन के लिए आवश्यक थोरियम और यूरेनियम को शुद्ध करके, परमाणभट्टी में इस्तेमाल के योग्य बनाया जाता है। इस यंत्र को भी पूरी तरह से भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने ही बनायाँ है और यह दुनिया के सबसे बड़े थोरियम नाइट्रेट यंत्रों में हैं। एशिया भर में गैस की लालटेनों के मेंटल बनाने के लिए जितने थोरियम नाइट्रेट की आवश्यकता पड़ती है, वह प्रायः सब का सब यहीं से भेजा जाता है। इसके अतिरिक्त अमरीका और यूरोप के बजारों को भी थोरियम नाइट्रेट भेजा जाता है। भविष्य में देश की आवश्यकताओं के लिए कुछ थोरियम नाइट्रेट सुरक्षित रखा जाता है।

यूरेनियम-धातु यंत्र :

परमाणुशक्ति में आत्मनिर्भर होने के लिए पर्याप्त यूरेनियम मिलना सबसे जरूरी है। इसलिए यूरेनियम को साफ करके परमाणुभट्टियों और अनुसंधान-कार्यों में प्रयोग के योग्य बनाने के लिए ट्राम्बे में यंत्र लगाया गया। इस यंत्र के लगाए जाने से भारतीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को भविष्य में ऐसे यंत्रों का मानचित्र तैयार करने और इन्हें बनाने का काफी अनुभव हो गया है।

फ़्युएल एलिमेंट बनाने का यंत्र :

जिस रूप में ईंधन को परमाणुभट्टी में रखा जाता है, उसे फ़्युएल-एलिमेंट कहते हैं साधारणतया यह मैगनिशियम या अलुमिनियम की मिश्र धातु के डिब्बे में बन्द यूरेनियम धातु की छड़ होती है। यूरेनियम धातु यंत्र में तैयार की हुई यूरेनियम धातु से यहाँ पर उपयुक्त आकार की छड़ें बनेंगी जो फ़्युएल-एलिमेंट के रूप में भारत की परमाणुभट्टियों में काम आएँगी।

अमरीका की सहायता :

अमरीका ने कोलम्बो योजना के अन्तर्गत-सदस्य देशों के वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण पर १९५८-५९ में २ लाख ५० हजार डालर खर्च करने की योजना बनायी थी।

परमाणुशक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए फिलिपाइन और थाईलैंड में मध्यम आकार की दो परमाणुभट्टी बनाने के लिए भी अनुदान स्वीकृत किए गए। फिलिपाइन में चिकित्सा, रसायनशास्त्र और जीव-विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान करने और ट्रेनिंग देने के लिए आइसोटोप बनाने की १ मेगावाट की परमाणुभट्टी बैंकाक में बनायी जाएगी। यह परमाणुभट्टी अनुसंधान कार्य के लिए बनायी जा रही है। इनके अतिरिक्त पशार सिंग्गू, इंदोनेशिया, में प्रयोगशाला की इमारत बनाने में एक अमरीकन सलाहकार सहायता दे रहा है। दो विशेषज्ञ पाकिस्तान में प्रयोग-शालाएँ बनाने में सहायता दे रहे हैं।

बर्मा के रेडियो-आइसोटोप केन्द्र को भी अमरीका आर्थिक सहायता दे रहा है। बर्मा के वैज्ञानिकों की ट्रेनिंग का भी अमरीका ने प्रबन्ध किया है। इसके अतिरिक्त अमरीका ने इन्दोनेशिया और फिलिपाइन को भी अनुसंधान के लिए आवश्यक यंत्र दिए हैं और उनके वैज्ञानिकों की ट्रेनिंग का प्रबन्ध किया है।

(१२१ वें पृष्ठ का शेष)

उच्च बहुलकों ने विज्ञान में अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। उनकी उपा-देयता और औद्योगिक जगत में उनका उपयोग बड़े महत्व का है। संसार की औद्योगिक समस्याओं के समाधान का एक मार्ग इस विज्ञान द्वारा खुल गया है। अद्भुत विन्यास के उच्च बहुलकों के संश्लेषण द्वारा जैव जगत की उन समस्याओं को सुलझने का मार्ग दिखाई पड़ने लगा है जिनका नियंत्रण अभी तक दैवी शक्तियों द्वारा ही मान लेना पड़ता था। बहुलक (पॉलीमर) विज्ञान का भविष्य उज्जवल है और इस विज्ञान की वृद्धि के साथ ही मानव जीवन के विकास के सूत्र जुड़े दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

विटैमिन

हनुमान प्रसाद तिवारी, एम० एस-सी०

विटैमिनों का मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे भोज्य पदार्थों के ज्ञान की वृद्धि के साथ हमें यह ज्ञात हुआ कि हमारे भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा कुछ खनिजों का होना आवश्यक है। परन्तु कुछ समय बाद यह पता लगा कि इन उपर्युक्त वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे पदार्थ भी हैं जिनका होना पौष्टिक भोजन के लिए अति आवश्यक है। यह पदार्थ बहुत ही कम मात्रा में आवश्यक होते हैं तथा इनकी अनुपस्थिति में भोज्य पदार्थों की पोषणशक्ति क्षीण हो जाती है और विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। वे केवल इन्हीं पदार्थों के द्वारा ही ठीक की जा सकती हैं। इन अति आवश्यक पदार्थों को विटैमिन कहते हैं।

विटैमिनों के गुण आपस में बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इनकी बहुत ही न्यून मात्रा की आवश्यकता होती है। भिन्न-भिन्न विटैमिन भिन्न-भिन्न बीमारियों से सम्बन्धित हैं। विटैमिन के अभाव में जो रोग होता है वह उसी विटैमिन के द्वारा ही ठीक हो सकता है। विटैमिनों की खोज के समय किसी विशेष नाम की अनुपयुक्तता के कारण उनका नामकरण अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों के आधार पर किया गया। बाद में जब इन यौगिकों के रचना-सूत्र ज्ञात हो गये, तब इनका नामकरण इनके सूत्र के नाम के आधार पर किया गया परन्तु अभी भी इनके पुराने नाम ही प्रचलित हैं। कुछ विटैमिन जल में विलेय है उदाहरणार्थ विटैमिन बी तथा विटैमिन सी। अन्य विटैमिन जैसे विटैमिन-ए, विटैमिन-डी, विटैमिन-के तथा विटैमिन-ई आदि केवल वसा में ही विलेय हैं। विभिन्न विटैमिनों के अभाव में होने वाले रोगों तथा इनके प्राप्ति के साधनों की समीक्षा निम्नलिखित है:—

विटैमिन-ए

विटैमिन-ए का सम्बन्ध शारीरिक वृद्धि तथा त्वचा के बाह्य-तन्तुओं को ठीक रखने से है। यह शरीर के विभिन्न रोगों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। इस अभाव में बहुधा नेत्र सम्बन्धी रोग जैसे आँखों का लाल होना, रतौंधी आदि हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर की वृद्धि रुक जाती है।

विटैमिन-ए अधिकांश रुप में पशुओं की चर्बी, दूध, दही, शुद्ध घी, मछली तथा अण्डे के पीले भाग में पाया जाता है। काड मछली के यकृत के तेल में यह सबसे अधिक होता है। कुछ शाकाहार पदार्थों से, जिनमें कैरोटीन नामक रङ्ग अधिकांश रुप में पाया जाता है, इसकी कमी पूरी की जा सकती है। कुछ पत्तेदार तरकारियाँ जैसे पालक, लाल चौलाई, सलाद, धनियाँ, बन्द गोभी तथा कुछ पके फल जैसे आम, पपीता, टमाटर, सन्तरा इत्यादि कैरोटीन द्वारा शरीर में विटैमिन-ए की मात्रा पूरी कर सकते हैं। गाजर में भी कैरोटिन काफी मात्रा में पाया जाता है।

हमारे भोजन में प्रतिदिन कम से कम ३,००० ई० यू० (अन्तर्राष्टीय इकाई) विटैमिन-ए की होनी चाहिये। मांसाहारियों को इतना विटैमिन-ए एक चम्मच काड मछली के यकृत के तेल से या दो अण्डों से मिल सकता है। शाकाहारियों को यह दूध, घी इत्यादि से मिलता है। परन्तु जो लोग दूध, घी इत्यादि नहीं खा सकते उनको इतना विटैमिन-ए १½ छटाक लाल चौलाई से, २½ छटाँक करमकल्ला से, १ छटाँक सलाद से, एक छटाँक मेथी के साग से, १ छटाँक चने के साग से या १ छटाँक गाजर से मिल सकता है।

विटैमिन-ए गरम करने पर जल्दी नष्ट नहीं होता। यह १२० ° से० तक आसानी से गरम किया जा सकता है। इससे ऊपर के ताप पर यह नष्ट होने लगता है। मक्खन से घी बनाने में एक चौथाई विटैमिन-ए नष्ट हो जाता है और यदि घी को खूब छनकाया जाय तो यह और भी नष्ट हो जाता है। पानी में पकाई गई तरकारियों का विटैमिन-ए नष्ट नहीं होता परन्तु घी में खूब भूनने पर नष्ट हो जाता है। रोशनी में बहुत दिनों तक रक्खे रहने पर भी विटैमिन-ए नष्ट हो जाता है। सुखाए हुये साग में हरे साग की अपेक्षा कम विटैमिन होता है।

विटैमिन-बीः

विटैमिन-बी, जल-विलेय विटैमिनों का एक समूह है, जो कि प्रायः एक साथही पाये जाते हैं, तथा इनके कुछ गुणों में भी समानता होती है। इस समूह में लगभग ११ विभिन्न विटैमिन सम्मिलित हैं जिनके नाम निम्न है:

(१) थायैनिन या अन्यूरिन या विटैमिन-बी $_1$; (२) रिबोफ्लेवीन या विटैमिन-बी$_2$; (३) निकोटिनिक अम्ल; (४) पाइरी डाक्सीन या अडरमिन या विटैमिन-बी$_6$; (५) पैण्टोथेनिक अम्ल; (६) बायोटीन; (७)आइनसिटोल; (८) पैरा-अमीनो-बेन्जोइक अम्ल; (९) चोलीन; (१०) फोलिक अम्ल; तथा (११) विटैमिन-बी $_{12}$

विटैमिन-बी $_1$ की कमी से मनुष्यों में वेरी-वेरी नामक रोग हो जाता है। इस रोग से पैरों में भारीपन चलने में पैरों का लड़खड़ाना, श्वासफूलना, लकवा लगना, हाथों पैरों में सूजन आदि हो जाती है। पशुओं में इस रोग को पॉली न्यूराइटिस कहते हैं।

विटैमिन बी $_1$ अधिकांश रूप में खमीर, गेहूँ व चावल के छिलके में पाया जाता है। माँस, मछली, अण्डा, साग, फल व दूध में यह कम मात्रा में होता है। मशीन द्वारा कुटे चावलों में यह विटैमिन नष्ट हो जाता है। परन्तु यदि चावल का छिलका हाथ से कूट कर निकाला जाय तो विटैमिन बी $_1$ नष्ट नहीं होता। यदि छिलका निकालने से पहले धान को थोड़ा उबाल लिया जाय तो भी उसमें विटैमिन नष्ट नहीं होता।

साधारणतः मनुष्यों को प्रतिदिन कम से कम ३०० ई० यू० विटैमिन बी $_1$ की चाहिए। परन्तु अधिक परिश्रम करने वालों को तथा गर्भिणी या प्रसूता को इसकी अधिक आवश्यकता होती है। लगभग १२०°से०तक गरम करने पर विटैमिन बी$_1$नष्टहो जाता है। गरम करने में अगर ताप ११०° से० से ऊपर न जाय तो थायैमिन भी नष्ट नहीं होता। अतः पानी के साथ पकाए जाने पर विटैमिन बी $_1$ नष्ट नहीं होगा। परन्तु घी में तलने या खूब भूनने में यह अवश्य नष्ट हो जायगा। विटैमिन बी $_1$ खटाई की विद्यमानता में अधिक स्थाई है। खटाई डाल कर पकाई गई

चीजों में यह शीघ्र नष्ट नहीं होता। प्रतिदिन की आवश्यकता भर के लिए विटैमिन बी [1] ५ छटाँक बाजरा, ३ छटाँक जो, २ छटाँक मक्का, २ छटाँक गेहूँ का दलिया, ५ छटाँक चना, ६ छटाँक गोभी, २½ छटाँक कुम्हड़ा १½ मूगफली या २½ सेर दूध से मिल सकता है।

विटैमिन-बी $_2$ के अभाव में ओंठ सूज जाते हैं। युवकों का बढ़ना रुक जाता है तथा प्रौढ़ों में असमय ही बुढ़ापे के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। दलिया तथा दालों में विटैमिन बी$_2$ का काफी अंश होता है। महीन पिसे आटे फलों या तरकारियों में यह नहीं होता। पत्तेदार हरे शाक में इसका कुछ अंश मिलता है। दूध, मक्खन निकला दूध, दही, खमीर, गोश्त, अण्डों में यह बहुतायत से मिलता है। साधारण मनुष्य को को प्रतिदिन २ या ३ मिलीग्राम रिबोफ्लेवीन की आवश्यकता होती है जो कि ½ छटाक खमीर, ½ सेर दूध, या २, ३ अण्डे खाने से मिल जाता है।

निकोटिनिक अम्ल के अभाव में पेल्लाग्रा नामक रोग हो जाता है। यह रोग प्रायः मक्का खाए जाने वाले प्रदेशों जैसे इटली उत्तरी अमेरिका आदि में विशेष रूप से मिलता है। इस रोग में शरीर में मुँह, हाथ, नाक, गरदन पर लाल लाल चकत्ते हो जाते हैं, जिनमें पीड़ा होती है। कभी कभी नाखून मैले खाकी रङ्ग के हो जाते हैं। निकोटिनिक अम्ल तथा उसका एमाइड अधिकांश रुप में खमीर में पाया जाता है। गेहूं तथा सोयाबीन में भी इसकी काफी मात्रा होती है। यकृत में भी यह काफी मात्रा में होता है।

विटैमिन बी $_{12}$ के अभाव में शरीर में खून की कमी हो जाती है और एनिमिया नामक रोग हो जाता है। यह विटामिन यकृत निष्कर्ष (LIVER EXTRACT) में पाया जाता है। इसमें कोबाल्ट तथा फासफोरस भी मिले होते हैं। विटैमिन बी समूह के अन्य विटैमिनों का मानव जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। परन्तु साधारण स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक हैं कि इन सभी विटैमिनों की थोड़ी मात्रा हमारे भोजन में अवश्य रहे।

विटैमिन-सीः

विटैमिन-सी के अभाव में स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। इसी कारण इस विटामिन का नाम भी एस्कार्बिक अम्ल पड़ा। स्कर्वी विशेष रूप से लम्बी लम्बी सामुद्रिक यात्राओं के यात्रियों को होती है। इस रोग के प्राथमिक लक्षण सुस्ती, अंगों तथा जोड़ों का ढीलापन तथा सांस लेने में कठिनाई हैं। पैरों में रोंगटों के आस पास लाली आ जाती है। शरीर के अन्य भागों में भी ऐसे ही लक्षण पाए जाते हैं। कभी कभी दाँत गिर भी जाते हैं। स्कर्वी की आगे की अवस्था में हृदय में विशेष प्रकार की धड़कन और सांस लेने में कठिनाई होने लगती है। रोगी कभी कभी मूर्छित भी हो जाता है। बार बार दस्त होते हैं तथा मल के साथ कभी कभी रक्त भी आता है।

विटैमिन-सी विशेष प्रकार से ताजे फलों तथा तरकारियों में पाया जाता है। साधारण तरकारियों की अपेक्षा यह पत्तेदार हरी तरकारियों में अधिक होता है। साधारण अनाजों में यह नहीं होता परन्तु जब इनमें अंकुर निकल आते हैं तब इनमें यह विटैमिन भी पैदा हो जाता है। खट्टे फलों में भी यह विटैमिन पाया जाता है। नीबू तथा आँवले में यह अधिक मात्रा में मिलता है।

सुखाने या गर्म करने से यह विटैमिन नष्ट हो जाता है। एक साधारण स्वस्थ्य पुरुष के लिए प्रतिदिन कम से कम ५० मिलीग्राम एस्कार्विक अम्ल की आवश्यकता होती है। इतना विटैमिन हमें ई छटाँक कच्ची चौलाई, ई छटाँक कच्ची बन्द गोभी, २ तोले सहजन, २ आँवले या २ टमाटरों से मिल सकता है।

साधारण रीति से पकाने या सुखाने पर भी विटामिन सी जल्दी नष्ट हो जाता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है विटैमिन सी की सबसे अधिक मात्रा भारत वर्ष में पाये जाने वाले एक ऐसे फल में होती है जो सबसे सस्ता भी है वह है आँवला इसके रस में संतरे के रस का २० गुना विटैमिन सी होता है। एक आँवले की विटैमिन सी की मात्रा लगभग दो सन्तरे के विटैमिन सी की मात्रा के बराबर होती है। यद्यपि गरम करने पर विटैमिन-सी नष्ट हो जाता है परन्तु आँवले में एक अम्ल होता है जो विटैमिन को नष्ट होने से काफी बचा लेता है। अतः आँवले को सुरक्षित रखने की दो विधियाँ हैं। पीसकर रखने के लिए उसे काटकर जल्दी से धूप में सुखा दिया जाता है और फिर चूर्ण बना कर रख लेते हैं। पर अधिक दिन रखने पर कुछ विटैमिन निकल जाता है। दूसरी विधि उनको नमक के विलयन में रखने की है। पहले सरसों को गर्म पानी में डाल देते हैं फिर कुछ मिनट बाद निकालकर उन्हें नमक के विलयन में डालकर रख लिया जाता है। विलयन में नमक की मात्रा काफी होनी चाहिए।

बिटेमिन—डीः

इस विटैमिन के अभाव से रिकेटस या सूखारोग हो जाता है। यह एक हड्डियों का रोग है जो विशेषकर कम उम्र वाले बच्चों को हो जाता है। इस रोग से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और साथ ही साथ और भी पक्वाशय संबंधी विकार आरम्भ हो जाते हैं, दांत देर में निकलते हैं। पौदों की इस बीमारी को आस्टियो - मेलेशिया कहते हैं। कम आयु की गर्भवत माताओं में यह रोग विशेष रूप में पाया जाता है।

विटैमिन डी मुख्यतः मक्खन, घी, क्रीम दूध आदि में पाया जाता है। काड मछली के यकृत के तेल में तथा अण्डो में भी यह पाया जाता है। परन्तु यह विटैमिन उन्ही जानवरों के दूध या घी में होता है जो हरी घास के मैदानो में चरते हैं तथा तेज धूप के प्रकाश में घूमते फिरते हैं। मनुष्य की त्वचा के ऊपर सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से यह बन जाता है हमारे शरीर में एगोर्स्टीरोल नामक एक पदार्थ होता है जो सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से विटैमिन डी मे परिवर्तन हो जाता है।

रिकिटस का रोग जो इस विटैमिन की न्यूनता के कारण होता है अधिकांश अँधेरे घरों में रहने वाले बच्चों को होता है जिनको सूर्य का प्रकाश बहुत कम मिलता है। सूर्य स्नान करने से इस प्रकार के रोगियों को बहुत लाभ होगा।

शरीर में इसकी अधिकता होने से दाँत मजबूत होते हैं। गर्भिणी स्त्रियों को इसकी बहुत आवश्यकता होती है जिससे होने वाले बच्चे तथा माँ दोनों का स्वास्य ठीक रहता है।

एक ग्राम काड मछली के यकृत के तेल में जितना विटैमिन डी० होता है उसे १०० इ० यू० (अन्तरराष्ट्रीय इकाई) माना जाता। गरम करने पर यह नष्ट नहीं होता है। बच्चों को इसकी ८००

से १००० इ० यू० प्रति दिन मिलना चाहिए परन्तु प्रौढ़ों के लिए २५०० इ० यू० ही पर्याप्त है। इतना विटैमिन लगभग आधा चम्मच काड-यकृत-तेल के प्रयोग से या आधा घंटा प्रति दिन वस्त्र रहित होकर सूर्य स्नान करके प्राप्त हो सकता है।

विटैमिन—ईः

इस विटैमिन के अभाव से मनुष्य की प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाती है। इसके अलावा साधारण स्वास्थ्य के लिए भी इसकी बड़ी आवश्यकता होती है।

यह अधिकांश रूप में हरे पत्तीदार शाकों में तथा मोटे चावल आदि अनाजों में पाया जाता है। बिनौले के तेल में भी इसकी पर्याप्त मात्रा होती है। यह इतना गुणकारी होता है कि इसका थोड़ा सा हिस्सा भी हमारी प्रतिदिन की आवश्यकता के लिए पर्याप्त है। सबसे पहले १९२२ में ईवान्स तथा विशप ने सन्तानोत्पादक क्षमता का सम्बन्ध इस नये विटैमिन से किया था और फिर १९२६ में अंकुरित गेहूँ के तेल से इसे पृथक करके इसका नाम एल्फा-टोकोफेरोल रक्खा जो इसका शुद्ध रूप है।

विटैमिन—एफः

यह देखा गया कि कुछ विशेष प्रकार के चर्मरोग कुछ असंतृप्त वसीय अम्लों के प्रयोग से अच्छे हो गये। बाद में पता चला कि इस प्रकार के रोग विटैमिन—एफ की न्यूनता से होते हैं और यह असंतृप्त वसीय अम्ल विटैमिन एफ का काम करते हैं। यह अधिकांश तेलों में विशेषकर रेंडी के तेल में पाया जाता है और बालों को स्वस्थ रखने में इसका विशेष महत्व है।

विटैमिन—केः

इस विटैमिन का सम्बन्ध रक्त के स्कंधन की क्रिया से है और इसकी खोज सन् १९३०-३५ में डैम ने की थी। इसके अभाव में खून के जमने के समय में वृद्धि हो जाती हैं तथा खून का बहना नहीं बन्द होता। विटैमिन के० के द्वारा इस कमी को पूरा किया जा सकता है। यह विटैमिन मुख्यतः हरी पत्तेदार तरकारियों में तथा अँकुरों में पाया जाता है। पालक गोभी करमकल्ला आदि में विटैमिन के० काफी मात्रा में होता है। रसायनज्ञों ने इसका रचना-सूत्र मालूम करके इसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा बना लिया है अतः अधिकांश रूपों में जो विटैमिन के वाली औषधियाँ हम बाजार में देखते हैं वह कृत्रिम ही होती हैं।

विटैमिनों के सम्बन्ध में ऊपर लिखे विवरण से यह स्पष्ट है कि यह हमारे स्वास्थ्य के लिए विशेष उपयोगी हैं। यह भी स्पष्ट है कि हम अपनी विटैमिन सम्बन्धी अधिकांश आवश्यकतायें हरी पत्तेदार तरकारियों, आम, पपीता, गाजर, टमाटर, आँवला, हाथ का कुटा चावल, गेहूँ, दाल, दूध, घी, मक्खन, दलिया, अंकुरित चने आदि तथा सूर्य के प्रकाश द्वारा पूरी कर सकते हैं। ईश्वर ने विटैमिन जैसी अमूल्य आवश्यक वस्तु पैदा करते समय इस बात का ध्यान रखा कि वह उन्हें उन पदार्थों में पैदा करे जो धनी तथा निर्धन सभी को समान रूप से प्राप्त हों।

नवजात तत्व

डा० बी० बी० एल० सक्सेना

विध्वंस की वीभत्सता का दोष वैज्ञानिकों के माथे पर कलंक के टीके के समान लगा दिया जाता है परन्तु जिन्होंने उनके रचनात्मक कार्य कलापों का अध्ययन किया है वे आश्चर्यचकित रह जाते हैं। विगत २० वर्षों में वैज्ञानिकों ने लगभग १० नव-जात तत्वों का निर्माण करके हमारे स्वर्णिम स्वप्नों को सत्य उतारा है।

परम्परा से माने गए ६२ तत्वों में वृद्धि होने लगी। साथ-साथ उनके अद्भुत गुणों से आश्चर्यजनक ज्ञान लाभ हुआ। इनमें से काफी पहले बनने वाले तत्वों के विषय में तो बहुत अधिक जानकारी हुई। नेप्चूनियम के समस्थानिक (Isotope) दीर्घ आयु के थे जिनको लेकर प्रयोग-शालाओं में साधारण सावधानी बरतने से भिन्न-भिन्न प्रयोग किये जा सके। इसी भाँति प्लूटोनियम तथा क्यूरियम नाम के दीर्घ आयु वाले तत्व निर्मित हुए। प्लूटोनियम की उत्पत्ति द्वितीय महायुद्ध में बड़े गोपनीय ढंग से हुई।

[नागासकी (जापान) पर छोड़े गये प्रथम अणु-बम के विस्फोट वा विध्वंस ने प्लूटोनियम के जन्म की घोषणा की।]

तत्वांतरण (Transmutation) द्वारा उत्पन्न किये गये तत्वों में प्लूटोनियम ही सर्वप्रथम तत्व था जिसका अधिक मात्रा में उत्पादन किया जा सका तथा आँख से स्पष्ट देखा जा सका। इस तत्व के कुछ गुण बड़े ही अद्भुत मिले। इसके खंडनीय—समस्थानिक $Pu^{२३९}$ एल्फा-रेडियधर्मिता व प्राणि शरीर पर बुरा प्रभाव डालने के कारण यह अत्यन्त भयंकर विषैला पदार्थ सिद्ध हुआ।

१६३४ में फर्मी व उनके सहकारियों ने यूरेपियम को मन्द गामी न्यूटान से विध्वंस(Bombard) करके अनेक कृत्रिम रेडियधर्मी पदार्थ प्राप्त किये और प्रति वर्ष उनकी संख्या बढ़ने लगी जिससे ट्रांस-यूरैनियम (Transuranium) तत्वों की उत्पत्ति का भ्रम हुआ। किन्तु सावधानी से किये सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ कि वे पदार्थ ट्रांसयूरैनियम तत्व न होकर केवल यूरेनियम के खंडनीय पदार्थ मात्र थे। सर्व प्रथम ट्रांसयूरैनियम तत्व का वास्तविक निर्माण उसके ६ वर्ष उपरान्त हुआ जब कि १६४० ई० में एम० मेकमिलन व पी० एच० एबिलसन ने नेप्चूनियम (६३) तत्व का निर्माण किया। उसके उपरान्त प्लूटोनियम (६४), अमरीकियम (६५), क्यूरियम (६६), बर्केलियम (६७), केलीफोर्नियम (६८), आइन्सटायनियम (६६), फर्मियम (१००), मेंण्डेलेवियम (१०१), तथा अन्य तत्व (१०२) का निर्माण हुआ। ये समस्त नव-जात तत्व यूरेनियम को लेकर तत्वांतरण द्वारा निर्मित किये गये। ये प्रकृति में नहीं मिलते। इनमें से अधिकांश का तो अस्तित्व मात्र ही ज्ञात हो पाता है क्योंकि उनकी मात्रा इतनी कम होती है कि सबसे संवेदनशील तुला पर

भी उनके भार का पता नहीं चल सकता। इतनी कम मात्रा तथा भयंकर दुष्परिणाम के भय से इन तत्वों के साथ प्रयोग करने में भी बड़ी विशिष्ठ विधियाँ व सावधानी करनी पड़ती हैं।

इन तत्वों के निर्माण व संख्या में वृद्धि के साथ-साथ आवर्त्त-सारणी में इनको समुचित स्थान पर बैठाने के लिये भी बड़ी उथल-पुथल मचती रही। सिबोर्ग के १९४४ के प्रयोगों व निष्कर्षों के फलस्वरूप इस प्रकार के ज्ञात व अज्ञात तत्वों को अब एक्टीनाइड (Actinide) श्रेणी के नाम से, लैन्थनाइड (Lanthanide) श्रेणी के आधार पर, एक ही श्रेणी में रख दिया गया है।

नेप्चूनियम (Np):

प्रथम नवजात ट्रान्सयूरैनिम (Transuranium) तत्व नेप्चूनियम (Np) का जन्म मेकमिलन द्वारा किये प्रयोगों के परिणामस्वरूप हुआ। उन्होंने यूरेनियम पर न्यूट्रान की प्रतिक्रिया के परिणाम से हुये खंडन द्वारा मिले विभाजित दो मुख्य भागों का अध्ययन किया जिससे ज्ञात हुआ कि एक भिन्न रेडियधर्मी पदार्थ बना। रासायनिक विश्लेषण द्वारा एबिलसन व मेकमिलन इस नवजात तत्व को $Np^{२३९}$ (९३) का समस्थानिक सिद्ध कर सके। Np के गुणों के सम्बन्ध में प्रारम्भ में थोड़ा मतभेद रहा। एक विचार था कि उसके गुण रेनियम के समान होंगे किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात हुआ कि उसके गुण रेनियम की अपेक्षा यूरेनियम से अधिक मिलते-जुलते थे। इतना सूक्ष्म अध्ययन संकेतन विधि द्वारा संभव हो सका क्योंकि इससे अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा ($१०^{-१०}$ ग्राम) में उपलब्ध पदार्थ का भी ठीक २ विश्लेषण हो सकता है। इस विधि द्वारा तत्व की रेडियधर्मिता के कारण ही उनके गुणों का अध्ययन किया जाता है।

प्लूटोनियम (Pu):

नैप्चूनियम के उपरान्त प्लूटोनियम (Pu) का जन्म हुआ। १९४० में मेकमिलन, जे० डब्लू० केनेडी, ए० सी० व्हाल, तथा जी० टी० सिबोर्ग ने यूरेनियम को ड्यूट्रान द्वारा विध्वंसित करके नैप्चूनियम का एक नया समस्थानिक $Np^{२३८}$ प्राप्त किया जो विनाश होने पर $Pu^{२३८}$ में परिवर्तित हो गया। इस प्रारम्भिक सफलता से उत्साहित होकर १९४१ में केनेडी, ई० सर्ज, व्हाल व सिबोर्ग ने प्लूटोनियम का अत्यावश्यक समस्थानिक $Pu^{२३९}$ ढूँढ निकाला और यह सिद्ध किया कि $Pu^{२३९}$ का मन्द गति के न्यूट्रान द्वारा खंडन हो सकता है। साइक्लोट्रान नामक यन्त्र की सहायता से अगस्त् १९४२ तक बी० बी० कनिंघम, एल० बी० वर्नर, ने काफी मात्रा में $Pu^{२३९}$ बना लिया। प्लूटोनियम ही एकमात्र ऐसा संश्लेषित तत्व है जो बड़ी मात्रा में बनाया जा सका।

अमरीकियम (Am) **तथा क्यूरियम** (Cm):

प्लूटोनियम निर्माण के उपरान्त अमरीकियम व क्यूरियम का निर्माण शीघ्र ही हो सका। प्लूटोनियम को हीलियम आयन से विध्वंसित करके आर० ए० जेम्स, एल० ओ० मार्गन, ए० घिओर्सो तथा सिबोर्ग ने $Cm^{२४२}$ का निर्माण किया। इन्हीं वैज्ञानिकों ने $Pu^{२४१}$ बनाकर बीटा-

किरण सक्रियता (Beta-ray activity) द्वारा Am^{241} बनाया। इनके गुणों का विश्लेषण आयनपरिवर्तन-विधि (Ion Exchange Technique) द्वारा संभव हो सका।

बर्केलियम (Bk) तथा केलीफोर्नियम (Cf):

१९४९ ई० के अन्त तथा १९५० के प्रारम्भ में किये प्रयोगों द्वारा Bk (९७) तथा Cf (९८) का निर्माण हुआ। एस० जी० टॉमसन, घिओर्सो, तथा सिबोर्ग ने दिसम्बर १९४९ में पर्याप्त मात्रा में Am को He+ द्वारा विध्वंसित करके $Bk^{२४८}$ का निर्माण किया। इन्हीं वैज्ञानिकों ने फरवरी १९५० में Cm को He+ से विध्वंसित करके $Cf^{२४५}$ का निर्माण किया।

आइन्सटाईनियम (E) तथा फर्मियम (Fm):

नवम्बर १९५२ में प्रशान्त महासागर में किये विस्फोट के ढेर में E (९९) तथा Fm (१००) का जन्म हुआ। इन दोनों तत्वों का अध्ययन अमरीका की तीन प्रयोगशालाओं में घिओर्सो व उनके साथियों ने किया। इनका निर्माण अनेकों विधियों से किया जा सकता है किन्तु बहुधा Pu को न्यूट्रान से विध्वंसित करते हैं।

मेण्डेलेवियम (Mv):

बड़ी कठिन व विशिष्ट विधियों द्वारा किये प्रयोगों द्वारा घिओर्सो, बी० जी० हार्वी, जी० आर० चोपिन, एस० जी० टॉमसन व सिबोर्ग ने Mv (१०१) का निर्माण किया। उसके निर्माण व गुणों के अध्ययन की कठिनाइयों का अनुमान इससे किया जा सकता है कि $१०^{९}$ परमाणुओं में से मात्र १ परमाणु को पृथक कर शीघ्रतम ही अध्ययन करना आवश्यक था।

तत्व १०२:

हार्वेल की परमाणु ऊर्जा प्रयोगशाला व अन्य अन्य प्रयोगशालाओं के वैज्ञानिकों ने १९५७ में एक और नवजात तत्व (१०२) के निर्माण की घोषणा की। अप्रैल १९५८ में घिओर्सो, टी० सिकलेण्ड, जे० आर० वालटन, व सिबोर्ग ने भी $Cm^{२४६}$ को $C^{१२}$ आयन द्वारा विध्वंसित करके $१०२^{२५४}$ समस्थानिक उपलब्ध किया। यह तत्व एल्फा-किरण सक्रियता (Alpha-ray-activity) प्रदर्शित करता है तथा इसका अर्ध-जीवन काल ३ सेकण्ड है।

एक्टीनाइड तथा लैंथनाइड श्रेणियों के तत्वों की समानता से एक्टीनाइड श्रेणी में १४ तत्वों [५ f कक्षा में १४ इलेक्ट्रॉन] का स्थान हो सकता है। इस कारण थोरियम से प्रारम्भ होने वाली श्रेणी, तत्व १०३ पर समाप्त हो जायेगी। इस सम्भावना की पुष्टि अनेक भौतिक व रासायनिक प्रयोगों के अध्यन से होती है।

इनके अतिरिक्त अन्य ट्रान्सयूरैनियम (Transuranium) तत्वों के निर्माण की सम्भावना की जा सकती है। उन अज्ञात भावी तत्वों के गुणों के सम्बन्ध में भी काफी सही भविष्यवाणी की

जा सकती है। सम्भवतः ७-८ और तत्व बनेंगे जो बड़ी कठिनाई से पृथक किये जा सकेंगे जो क्षणभंगुर होंगे। जे० ए० व्हीलर ने हिसाब लगा कर कहा है कि पारमाण्वीय संरचना के आधार पर १३७ के ऊपर की परमाणवीय-संख्या के भी तत्व स्थायी रूप से बन सकते हैं। इस क्रिया में न्यूट्रान का गहन घनत्व (Fluxes) [$१०^{३२}$ प्रति वर्ग सें० प्रति सेकण्ड] चाहिये जो तारिकाओं (Stars) में मिलता है। इतने दुष्प्राप्य तत्व का पृथ्वी पर भी बन सकना बड़ा दुर्गम लगता है। इसी से लगता है कि ७-८ ही तत्व और बन सकेंगे। १०३ तत्व पर एक्टीनाइड—श्रेणी सम्पूर्ण होकर १०४ वें तत्व में व उनके आगे इलेक्ट्रान ६ d कक्षा में बैठेगा और आवर्त्त-सारणी में उनका स्थान क्रम से हैफनियम, टैण्टालम, टङ्गस्टन आदि वाले वर्गों में होगा। इस कक्षा के भर जाने पर इलेक्ट्रान ७ p कक्षा में बैठेगा और ११८ वाँ तत्व विरल गैस संरचना प्राप्त कर लेने पर समाप्त हो जावेगा। १०३ वाँ तत्व त्रिसंयोजक आक्सीकरण स्थिति, १०४ वाँ तत्व अपने वर्ग के हैफनिनम की भाँति चतुः संयोजक आक्सीकरण स्थिति, १०५ वाँ अपने वर्ग के न्योबियम तथा टैण्टालम की भाँति पंच-संयोजक आक्सीकरण स्थिति तथा १०६ वाँ तत्व टङ्गस्टन, मालिब्डनम तथा क्रोमियम की तरह षट-संयोजक आक्सीकरण स्थिति के होंगे। इसी प्रकार १०७, १०८, १०९ व ११० वें तत्व क्रम से रेनियम, ऑसमियम, इरिडिनम तथा प्लैटिनम के समगुणी होंगे। सम्भवतः इनके निर्माण में यूरेनियम आदि गुरु-तत्वों को भारी आयनों, जैसे कार्बन आयन, नाइट्रोजन आयन, आक्सीजन आयन, आदि द्वारा विध्वंस करा कर बनाया जा सकेगा।

रासायनिक गतिकी (Kinetics) और रासायनिक प्रक्रिया का रूप

डा० बालकृष्ण, प्राध्यापक, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

रासायनिक प्रक्रिया के रूप के स्पष्टीकरण के हेतु रासायनिक गतिकी का अध्ययन महत्वपूर्ण है। रासायनिक गतिकी के लिये प्रक्रिया की गति का सविस्तार अध्ययन आवश्यक है और विशेष करके इस गति पर प्रक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के सान्द्रण और प्रक्रिया के ताप का प्रभाव। यदि इन दोनों प्रभावों का अर्थात् प्रक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के सान्द्रण और प्रक्रिया के ताप पर रासायनिक गतिकी की निर्भरता का पूर्ण अध्ययन कर लिया जाय तो किसी भी रासायनिक क्रिया के रूप का स्पष्टीकरण हो जाता है। सान्द्रण और ताप के अतिरिक्त अन्य प्रभाव भी रासायनिक क्रिया की गति पर असर डालते हैं और इसके विस्तारपूर्ण अध्ययन से प्रक्रिया-रूप के निर्णय करने में सुविधा होती है। ये प्रभाव हैं, उत्प्रेरक की उपस्थिति, प्रतिकृत होने वाले पदार्थों पर स्थिति आवेश, माध्यम का पारविद्युद्स्थिरांक। उपयुक्त स्थानों पर इनमें से कुछ पर विचार किया जावेगा।

उदाहरणार्थ हम क्षारीय माध्यम में एसीटोन पर ब्रोमीन का प्रभाव देखेंगे। क्षार की उपस्थिति में ब्रोमीन हाइपोब्रोमाइट आयन बनाता है। यह आयन एसीटोन से प्रतिकृत होकर ब्रोमोफार्म बनाता है। पूरी क्रिया नीचे लिखे रूप में दी जा सकती है :—

$$CH_3\,CO.\,CH_3 + 3\,OBr^- = CH_3\,COO^- + CHBr_3 + 2\,OH^- \quad (१)$$
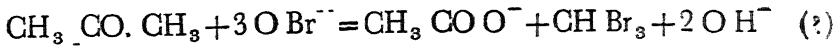
किन्तु ऊपर की प्रतिक्रिया गणनात्मक योजना के अनुसार केवल अन्तिम विधि का ही स्पष्टीकरण करती है। बीच में क्रम से जो प्रक्रियायें होती हैं उनके विषय में कुछ भी संकेत नहीं करती। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है। उपरोक्त समीकरण के अनुसार हाइपोब्रोमाइट आयन का सान्द्रण एसीटोन के सीधे समानुपात में होता है किन्तु फिर भी उपरोक्त प्रक्रिया की गति हाइपोब्रोमाइट के सान्द्रण पर निर्भर नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ है कि हाइड्रॉक्सिल आयन इस प्राक्रिया का उत्प्रेरण करते हैं। वास्तव में गति को नीचे लिखे समीकरण से व्यक्त किया जा सकता है :—

$$v = k\,[A]\,[OH^-] \quad (२)$$

यहाँ A एसीटोन को और [A] [OH] अम्ल तथा क्षारीय आयनों के सान्द्रण को व्यक्त करते हैं। v प्रक्रिया की गति है और k समानुपातिक स्थिरांक है। प्रक्रिया की गति हाइपोब्रोमाइट के सान्द्रण पर निर्भर नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि हाइपोब्रोमाइट आयन या ब्रोमीन किसी ऐसी क्रमानुसार प्रक्रिया में भाग लेते हैं जो अत्यन्त तीव्र है। फिर उपरोक्त प्रक्रिया की गति हाइड्रोक्सिल आयनों के सान्द्रण के समानुपातिक है। इससे ज्ञात होता है कि पहले हाइड्रॉक्सिल आयन एसीटोन पर आक्रमण करता है, जैसा नीचे के समीकरण में दिया गया है :—

$$CH_3\,CO\,CH_3 + OH^- = CH_3.\,CO.\,CH_2^- + H_2O \quad (३)$$
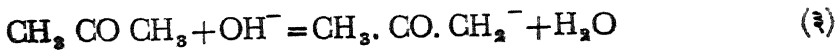
अन्य क्रमानुसार प्रक्रियाओं में इस प्रकार से निर्मित ऋणायन तीव्र गति से प्रतिकृत होता है और एसीटेट आयन और ब्रोमोफार्म बनाता है।

उपरोक्त कल्पित प्रक्रिया के स्वरूप को इस तथ्य से बल मिलता है कि ब्रोमोनीकरण और आयडीकरण की गतियाँ समान हैं। इसका अभिप्राय है कि दोनों स्थितियों में गति निश्चित करने वाली प्रक्रिया समीकरण (३) है। प्रक्रिया (३) के पक्ष में अन्य प्रमाण भी उपस्थित किये गये हैं किन्तु हम इस स्थान पर उनका विशेष विवरण उपस्थित नहीं करेंगे।

एक अन्य प्रतिक्रिया का भी विस्तार पूर्वक अध्ययन किया गया है। मैंने भी इस प्रतिक्रिया पर प्रयोग किये हैं। यह प्रतिक्रिया फेरिक क्लोराइड और स्टैनस क्लोराइड के बीच में होती है। अन्तिम प्रतिक्रिया को नीचे लिखे रूप में दिया जा सकता है :—

$$Sn\,Cl_2 + 2\,Fe\,Cl_3 = Sn\,Cl_4 + 2\,Fe\,Cl_2 \qquad (४)$$
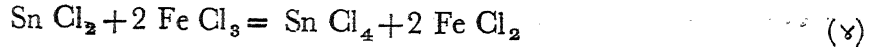
ऊपर की प्रतिक्रिया के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसकी गति निम्नलिखित समीकरण से प्रकट की जा सकती है :—

$$v = k\left[Fe^{+++}\right]\left[Sn\,Cl_2\right]\left[Cl^-\right]^2 \qquad (५)$$

इससे ज्ञात होता है कि इस प्रक्रिया की गति क्लोराइड आयनों के सान्द्रण के वर्ग के समानुपातिक हैं जब कि वह फेरिक आयनों और स्टैनस क्लोराइड आयनों के गुणनफल के समानुपातिक है। उपरोक्त प्रकार से तर्क करने पर यह दिखाया गया है कि इस क्रिया के पूर्ण होने में नीचे लिखी हुई प्रतिक्रियायें क्रमानुसार होती हैं :—

$$Sn\,Cl_2 + 2Cl^- = Sn\,Cl_4^{=} \qquad (६)$$

$$Sn\,Cl_4^{=} + Fe^{+++} = Fe^{++} + Sn\,Cl_4^{-} \qquad (७)$$

$$Sn\,Cl_4^{-} + Fe^{+++} = Fe^{++} + Sn\,Cl_4 \qquad (८)$$
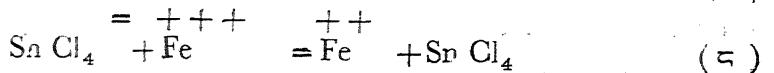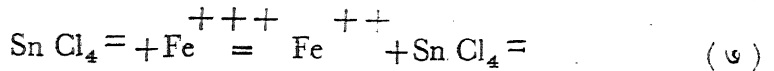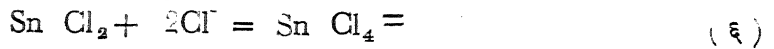
ऊपर की प्रक्रियाओंमें (६) और (८) प्रक्रियायें अत्यन्त गतिवान हैं किन्तु ७ वीं क्रिया मन्द गति से होती है। इसलिये यही पूर्ण प्रतिक्रिया की गति को निश्चित करती है।

सक्रियमाण ऊर्जा

प्रक्रिया की गति की ताप पर निर्भरता के सम्बध में जो अध्ययन किया गया है उससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि साधारणतः वे ही अणु प्रतिकृत हो सकते हैं जिनमें ऊर्जा की उच्च मात्रा रहती है। वे अणु जिनमें औसत मात्रा में ऊर्जा होती है तब तक प्रतिक्रिया में भाग नहीं ले पाते जब तक वह कुछ अतिरिक्त ऊर्जा संग्रह नहीं कर लेते। औसत ऊर्जा वाले अणुओं में इस प्रकार की ऊर्जा-वृद्धि, सक्रियमाण ऊर्जा कहलाता है। सक्रिय ऊर्जा के इस विचार ने अनेकों नवीन विचारों को जन्म दिया। सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दोनों रूपों से यह दिखाया जा सकता है कि किसी भी प्रतिक्रिया का समानुपातिक स्थिरांक नीचे लिखे समीकरण से दिया जा सकता है :—

$$k = A e^{-E/RT} \qquad (६)$$

जहाँ A नियतांक है, E प्रतिक्रिया की सक्रियमाण ऊर्जा है, T चरम ताप है जिस पर प्रतिक्रिया चलती है और R, गैस-स्थिरांक है। k का मान प्रयोगों से ज्ञात हो सकता है। फिर दो या अधिक ताप पर प्रयोग करके E का मान सरलता पूर्वक निकाला जा सकता है। E का मान ज्ञात हो जाने पर एक अणु के विभिन्न बन्धनों की प्रतिक्रिया की तुलना की जा सकती है। उदाहरण-स्वरूप जब सोडियम वाष्प मीथिल क्लोइड, ब्रोमाइड या आयोडाइड से प्रतिकृत होती है तब नीचे लिखी प्रतिक्रियायें होती हैं:—

(क) $CH_3Cl + Na = NaCl + CH_3^+$

(ख) $CH_3Br + Na = NaBr + CH_3^+$

(ग) $CH_3I + Na = NaI + CH_3^+$
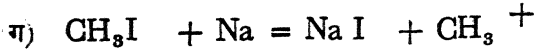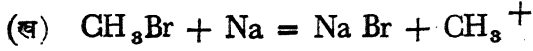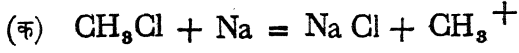
प्रक्रिया (क) में सक्रियमाण ऊर्जा लगभग ६००० कैलोरी है, प्रक्रिया (ख) में लगभग ३००० कैलोरी है जबकि प्रक्रिया (ग) में वह लगभग शून्य है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि C—Cl बन्धन C—Br बन्धन से दृढ है और यह दोनों ही बन्धन C—I बन्धन से दृढ हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि बान्धव ऊर्जा सक्रियमाण ऊर्जा के समान हैं यद्यपि उसका मान निश्चित रूप से सक्रियमाण ऊर्जा पर निर्भर है। सक्रियमाण ऊर्जा के आधार पर गणित के सिद्धान्तों के अनुसार बान्धव-ऊर्जा की यथार्थ गणना अधिक कठिन है।

——

स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार की घोषणा

सन् १९५९ का स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार श्री हीरेन्द्र नाथ बोस को उनकी मौलिक कृति "मृत्तिका उद्योग" पर प्रदान किया गया है।

"मृत्तिका उद्योग" हिन्दी समिति ग्रंथमाला का बीसवाँ पुष्प है जिसे सूचना विभाग उत्तर प्रदेश ने सन् १९५८ में प्रकाशित किया है। यह एक वृहद् ग्रंथ है जिसमें ४८७ पृष्ठ हैं। इसका मूल्य केवल ८ रुपये है। हिन्दी में औद्योगिक विज्ञान सम्बन्धी यह एक प्रामाणिक कृति है।

इस कृति में १५ अध्याय हैं जिनमें क्रमशः मिट्टी की विभिन्न सामाग्रियाँ, मिट्टियाँ तथा खनिज पदार्थ, पात्रों का निर्माण, सुखाना तथा पकाना, चिकन प्रलेप तथा रंजक, धातवीय चमक तथा रंजन विधियाँ, पोरसिलेन, कड़े मिट्टी पात्र, प्रलेपित मृत्पात्र, टेराकोटा, दुर्गल वस्तुयें, ईंधन, भट्टियाँ तथा चूल्हे, उत्ताप मापन, मृद् उद्योग की गणनायें, उद्योग परिकल्पना, तथा कारखाने की व्यवस्था-प्रबंध का विस्तृत वर्णन है। अन्त में परिशिष्ट है जिसमें अनेक उपयोगी आँकड़ों के साथ ही पारिभाषिक शब्दावली दे दी गई है।

लेखक का मृत्तिका-उद्योग से ३० वर्षों का सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि मृत्तिका उद्योग सम्बन्धी समस्त सूचनाओं को उसने बड़ी ही तत्परता से संकलित करके प्रस्तुत किया है। हिन्दी के माध्यम से 'मृत्तिका उद्योग' की गतिविधियों से परिचित होने का पाठकों के लिये यह प्रथम अवसर है। अभी तक हिन्दी में इस प्रकार का प्रामाणिक ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ था। हाँ, लेखक ने बहुत पहले विज्ञान परिषद् से "पोर्सलीन उद्योग" नामक पुस्तिका प्रकाशित की थी।

"मृत्तिका उद्योग" की सबसे बड़ी विशेषता है, उसमें समाविष्ट भारतीय मृत्तिका उद्योग सम्बन्धी नवीन एवं विस्तृत सूचना। लेखक ने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली "इण्डियन सिरेमिक्स" नामस पत्रिका से नवीनतम खोजों का परिचय प्राप्त कर अपनी पुस्तक में उसका उपयोग किया है। पुस्तक भर में चित्रों, सारणियों तथा रेखा-चित्रों के माध्यम से विषय को अत्यन्त सुबोध एवं प्रामाणिक बनाने का यत्न हुआ है।

इतने बड़े ग्रंथ के लेखन में लेखक को अनेक अंग्रेजी शब्द मिले हैं जिनके हिन्दी पर्याय अभी तक नहीं निर्मित हो पाये। अतः लेखक ने, चाहे जिन स्रोतों से ये पर्याय प्राप्त किये हों, प्रयुक्त हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी पर्याय दे दिये हैं। शेष शब्द स्वीकृत शब्दावली के हैं। हाँ,

Polymerisation (अणु एकत्रीकरण), Dispersion (आकीर्णन), (Acid value), (एसिड वैल्यू) Enamel (काँच कलई), Essential oil (गन्ध तेल), Solution (घोल), Chart (निर्देश) Automisation (यौन्त्रीकरण), Composition (संगठन) Space Capacity (समाई) आदि पर्यायों पर पुनः विचार करके लेखक महोदय अगले संस्करण में उचित सुधार करेंगे तो अच्छा होगा। चित्रों में निर्देश के लिये जहाँ अंग्रेजी अक्षर प्रयुक्त हैं, इन्हें भी हिन्दी में करके एक रूपता लाने की आवश्यकता है। मूल स्रोतों को संकेतित करने के लिये अगले संस्करण में प्रत्येक अध्याय के पश्चात् संदर्भ-ग्रन्थों की सूची समाविष्ट करने से पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ जावेगी।

स्वामी हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार में जिन लेखकों की कृतियाँ आई थीं वे निम्न प्रकार हैं—

वैश्लेषिक रसायन (कृष्ण बहादुर), माध्यमिक रेखागणित, ठोस ज्यामिति (वृज मोहन), अशोक, नीमः बकायन (रामेशवेदी), घरेलू बिजली भगवती प्रसाद श्रीवास्तव), ईख और चीनी, पेट्रोलियम तथा कोयला (फूलदेव सहाय वर्मा), भौतिक रसायन की रूपरेखा (रामचरण मेहरोत्रा) आयुर्वेदिक सफल सूची-वेध (वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन), प्रकाश विज्ञान (निहाल करण सेठी), माडर्न मेडिकल ट्रीटमेंट (डा० एम० एल० गुजराती), द्रवस्थिति विज्ञान (डा० बी० एन० प्रसाद), जीव जगत (सुरेश सिंह), अभिनव विकृत विज्ञान (रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी) तथा रेल इंजन परिचय और संचालन (ओंकारनाथ शर्मा)।

१. यह विशेषांक

विगत पचास वर्षों में वैज्ञानिक क्षेत्र में रासायनिक शोधों ने क्रान्ति ला दी है। प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में रसायन शास्त्र का उपयोग हुआ है और सर्वत्र उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये हैं। उसमें केवल सीमित एवं संकुचित परिधि में गहनतम अध्ययन नहीं हुआ वरन् भौतिकी, कृषि शास्त्र के क्षेत्रों में भी अन्तर्दृष्टि प्राप्त की गई है। एक समय लौह तथा अन्य निम्न धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तित करने के स्वप्न को पूरा करना ही रसायन का मात्र उद्देश्य था। धीरे-धीरे इस कल्पना को त्याग कर रासायनिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया गया और इस क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता भी मिली। कालान्तर में अनेक नये तत्व खोज निकाले गये और उनके यौगिकों का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत हुआ।

रसायन शास्त्र ने और डग भरे। कलिल-रसायन के सूत्रपात द्वारा व्यवहारिक क्षेत्र में रसायन का बोलबाला हो गया। औषधियों के निर्माण एवं उनके सुरक्षित रखने में इस नवीन ज्ञान का प्रचुर प्रयोग हुआ। साथ-साथ विद्युद्रसायन भी विकसित हुआ। उसके द्वारा पूर्व-परिचित सभी प्रतिक्रियाओं का नये दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया। तत्वों की संयोजकता के सम्बन्ध में नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित हुये।

फिर प्रतिक्रियाओं का गतिज अध्ययन प्रारम्भ हुआ। प्रकाश रसायन की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान पहिले ही आकृष्ट हो चुका था। इस सम्बन्ध में आधुनिक युग में नवीन खोजें हुईं। प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया का नवीन दृष्टिकोण से अध्ययन हुआ।

विकिरण-रसायन ने तो एक नये युग का सूत्रपात ही कर दिया जिसे हम "परमाणु युग" या विकिरण का युग कह सकते हैं। इस क्षेत्र में रसायन शास्त्र ने भौतिक शास्त्र की सीमाओं के भीतर प्रवेश करके विशदता का परिचय दिया।

कृषि की ओर रसायन की दृष्टि १०० पूर्व गई परन्तु पिछले कुछ वर्षों में एक नवीन शाखा कृषि-रसायन का ही विकास हो गया है। पौधों के विकास एवं अन्नोत्पादन में सूक्ष्म तत्वों के अध्ययन के हेतु अत्यन्त विकसित पद्धतियों का सहारा लिया जाने लगा है। कृषि में विकिरणों का भी उपयोग होने लगा है। अनेक ऐसे रासायनिक पदार्थों के निर्माण एवं प्रयोग हुये हैं जिनके माध्यम से कृषि में आमूल परिवर्तन आ गया है। ऊसरों के उर्वरीकरण, फसल-सुरक्षा तथा मृत्तिका-खनिजों की दिशा में रसायन शास्त्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जीवन का उद्गम एवं विकास आदि-काल से मनीषियों एवं विचारकों के लिये चर्चा का विषय बनता रहा है। इस युग में रसायन शास्त्रियों ने जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रयोगात्मक शोधें

की हैं जिनके अनुसार एक-सेल वाले अमीबा की कोष रचना एवं उसके अवयवों के सम्बन्ध में निश्चित मान्यतायें प्रस्तुत हो सकी हैं। जीव-रसायन की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

हमारे नित्य प्रति के जीवन में भोज्य पदार्थों में स्थित पोषक तत्वों—विटैमिनों का सर्वाधिक महत्व है। इनकी न्यूनता से अनेक प्रकार के रोग होने की सम्भावना रहती है। भारतीय भोज्य पदार्थों में उनकी विद्यमानता के सम्बन्ध में विशेष कार्य हुये हैं और बंगलोर की भोज्यपदार्थ अनुसंधानशाला इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

आज के दैनिक जीवन में रबर, नाइलोन तथा प्लास्टिक का विशेष प्रचलन देखा जाता है। आधी शती पूर्व लोग इनसे परिचित तक न थे। इस दिशा में उच्च बहुलक (पालीमर) शोधों ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

तात्पर्य यह कि आधुनिक मानव को सभ्यता की ओर द्रुतगति से अग्रसर करने में रसायन शास्त्र के विविध अंगों पर हुई शोधों ने अकथनीय योग दिया है। "विज्ञान" का रसायन अंक पाठकों को रसायन की प्रगति का सिंहावलोकन कराने के उद्देश्य से ही प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है वह उन्हें रुचिकर प्रतीत होगा। यदि वे अपने सुझावों द्वारा हमें प्रोत्साहित कर सके, तो भविष्य में "विज्ञान" के विविध विषयों पर ऐसे ही विशेषांक प्रस्तुत करते हुये हमें हर्ष का अनुभव होगा।

२. ४७ वाँ भारतीय विज्ञान कांग्रेस अधिवेशन

भारतीय विज्ञान कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन १५ से १७ जनवरी १९१४ में कलकत्ता में हुआ था। इस अधिवेशन का सभापतित्व प्रमुख शिक्षा तथा विज्ञान प्रेमी श्री आशुतोष मुखोपाध्याय जी ने किया। इस अधिवेशन में छः शाखायें थीं और ३५ शोध पत्र प्रस्तुत किये गये। उपस्थित वैज्ञानिकों की संख्या १०५ थी इसके पश्चात प्रति वर्ष जनवरी में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन भारत के प्रमुख शिक्षा केन्द्रों में होता रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात कांग्रेस की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही है।

इस वर्ष का अधिवेशन बम्बई विश्वविद्यालय के आमन्त्रण से बम्बई नगर के विश्वविद्यालय से संलग्न ओवल उद्यान में ३ से ९ जनवरी तक हुआ। इसमें केवल भारत के ही नहीं वरन् अनेक विदेशी वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। कांग्रेस में १३ शाखाओं में बैठकें हुई और इनमें १६०० से अधिक संख्या मे शोध पत्र प्रस्तुत किए गये। इस अधिवेशन के प्रधान सभापति उत्कल विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० पी० पारिजा थे।

रविवार ३ जनवरी को उद्घाटन समारोह हुआ। प्रशस्त प्रेक्षागृह में प्रायः चार सहस्र वैज्ञानिक तथा विज्ञान प्रेमी आसीन थे। बम्बई के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश जी ने सदस्यों का स्वागत किया। तदुपरान्त भारत के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए विज्ञान के उपयोग तथा दुरुपयोग की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए वैज्ञानिक विधियों पर बल दिया। प्रधान सभापति डा० पारिजा के भाषण का विषय था "विज्ञान पर समाज का प्रभाव।"

४ से ६ जनवरी तक विभिन्न शाखाओं में वैज्ञानिक अपने शोध कार्यों की विवेचना करते रहे। विभिन्न शाखाओं के सभापति निम्नलिखित थे :

गणित : प्रोफेसर वी० जी० अय्यर, प्रधान गणित विभाग, अन्नमलाय विश्वविद्यालय।

सांख्यकी : डा० सी० आर० राव, प्रधान सैद्धान्तिक शोधकार्य तथा प्रशिक्षण विभाग, भारतीय सांख्यिकीय विद्यालय, कलकत्ता।

भौतिकी : डा० एस० पार्थसारथि, ध्वनि विभाग, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, दिल्ली।

रसायन : डा० अवनी कुमार भट्टाचार्य्य, प्रधान, रसायन विभाग, आगरा कालेज, आगरा।

भूगर्भशास्त्र तथा भूगोल : डा० वी० एस० दुबे, प्रधान, आर्थिक भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय।

वनस्पति शास्त्र : डा० एस० के० पाण्डे, प्रधान, वनस्पति शास्त्र विभाग, सागर विश्वविद्यालय।

जीव विज्ञान : डा० एच० डी० श्रीवास्तव, प्रधान, परजीवीविज्ञान विभाग, भारतीय पशुविज्ञान गवेषणागार, इजत नगर।

नृतत्व शास्त्र तथा पुरातत्व : डा० एम० एल० चक्रवर्त्ती, मेडिकल कालेज, कलकत्ता।

चिकित्सा तथा पशु शास्त्र : डा० ए० आर० नटराजन, रासायनिक परीक्षक, मद्रास राज्य।

कृषि विज्ञान : डा० बी० एन० सिंह, सहायक संचालक, केन्द्रीय औषधि गवेषणागार, लखनऊ।

दैहिकी : डा० ए० राय, उत्तर प्रदेश पशु विज्ञान तथा पशुपालन कालेज, मथुरा।

मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र : डा० डी० गंगोली, मनोविज्ञान विभाग, कलकत्ता, विश्वविद्याल।

इंजीनियरी तथा धातुकर्म : प्रोफेसर एन० एन० सेन, अवकाश प्राप्त प्रधान, बंगाल इंजिनीयरिंग कालेज, कलकता।

शाखाओं के अधिवेशनों में जो शोध पत्र प्रस्तुत किये गये, उनकी संख्या इस प्रकार है :

गणित	२८	नृतत्व शास्त्र तथा पुरातत्व	२६
सांख्यकी	६६	चिकित्सा तथा पशु विज्ञान	३५
भौतिकी	१६५	कृषि विज्ञान	११६
रसायन	४५१	दैहिकी	५३
भूगर्भशास्त्र तथा भूगोल	१६१	मनोविज्ञान तथा शिक्षा शास्त्र	८१
वनस्पति शास्त्र	२४२	इंजीनियरी तथा धातु कर्म	२६
जन्तु शास्त्र	१६८		

प्रत्येक शाखा में आधुनिक शोध कार्य सम्बन्धी विशेष समस्याओं पर विचार-विमर्ष तथा व्याख्यान भी हुए।

इनके अतिरिक्त सन्ध्या के समय विशेष भाषण हुये और कई विशिष्ट विदेशी तथा भारतीय वैज्ञानिकों ने उपयोगी और लोक प्रिय वैज्ञानिक विषयों पर भाषण दिये। कांग्रेस के विदेश से

आए हुये सदस्यों ने अपने व्याख्यान, विचार तथा उपस्थिति द्वारा अधिवेशन को लाभ पहुँचाया। निम्न विदेशी वैज्ञानिक सम्मिलित हुये :

आस्ट्रेलिया : डा० आर० बी० डिग्ले, प्रो० जी० लीपर, डा० बी० एफ० मैकफरलेन तथा डा० आर्नोल्ड एल० राइमान।

बुल्गेरिया प्रो० क्रीस्टो क्रिस्टोव।

कैनाडा : डा० एच० ई० डकवर्थ तथा डा० जी० ए० लेदिंघम।

सीलोन : डा० डब्लू० आर० सी० पौल तथा डा० डी० डब्लू० आर० काहाविटा।

चीन गणतन्त्र : प्रो० चाओ चिउ-चैंग तथा प्रो० चाउ पी-यूवान।

जेकोस्लोवाकिया : प्रो० बाफहलेवा तथा डा० व्लाडिमी लाराडा।

डेनमार्क : प्रो० नील्स बोहर्।

फ्रांस : प्रो० द्राश तथा प्रो० हेनरी मार्सल काउसेन।

जर्मनी (पश्चिमी) : प्रो० एच० लेटर् तथा श्रीमती लेटर्, प्रो० थाउयर तथा डा० फर्डिनराउ ट्रेन्डलेन वर्ग।

जर्मनी (पूर्वी) : प्रो० जी० हावमान, डा० एरिख थीलो तथा डा० हान्स विटब्रोडट्।

घाना : श्री के० त्वाम-बरीमा तथा डा० जे० ऐ० के० क्वार्टे।

ग्रेट ब्रिटेन : सर हवार्ड फ्लोरी, सर वाल्टर पर्की, सर एवर्ट स्मिथ, प्रो० ए० सलाम, डा० टमास वालो, प्रो० एल० एफ० बेटस, डा० जान एफ० कोल्स, डा० हेन कान्सटैन्ट, प्रो० जे० ग्रेग तथा श्री सोलोमन एलडर।

हंगरी : अकादेमिशियन जीओर्जी हैजोस तथा अकादेमिशियन जीओर्जी जोगेर्टी।

जापान : डा० यासू आकी-जार्का, डा० डेन जाबुरो मियार्ची, डा० एम० टी० ओकुनो तथा डा० मासा योशी टागाया।

पोलैंड : प्रो० मिचल कालेकी तथा प्रो० जरजी कोनोर्सकी।

रूमानिया : अकादेमिशियन नोरिया हुलूबेई तथा अकादेमिशियन एमिल पाप।

स्वीडेन : प्रो० फालके कार्ल जी० ओडक्विस्ट।

स्विटजरलैंड : प्रो० जे० बूयशी।

संयुक्तअरब गणतन्त्र : डा० हसन हमदी तथा डा० महमूद मुख्तार।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका : प्रो० टी० डोवजेनस्की, प्रो० जार्ज गैमो, प्रो० एडवर्ड सैबेल, श्री जे०-एच० डेविडसन, श्री जेम्स सी० रीड तथा श्री मारिस जे० सालोमन।

रूसी गणतन्त्र : अकादेमिशियन लेबेडेव, अकादेमिशियन शेरबाकोव, प्रो० आरलोव, प्रो० मालोव, प्रो० उल्यानोवस्की, प्रो० कारी नियाजोव उक्सवेक तथा श्रीमती पेटरोवा।

यूगोस्लाकिया : डा० पीटर मार्टिनोविक।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ : श्री के० ए० बेनेट तथा डा० पी० वी० सुखात्मे (खाद्य तथा कृषि प्रतिष्ठान), श्री विलियम जे० एलिस (यूनेस्को), डा० गिलिस कार्ल हेरलाइट (विश्व स्वास्थ्य प्रतिष्ठान), डा० एस० बसु (विश्व जलवायु संगठन)।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अवसर पर भारत के अनेक वैज्ञानिकों को एकत्र होने का संयोग प्राप्त होता है और अधिकतर वैज्ञानिक संस्थाएँ इस समय अपने वार्षिक अधिवेशन की योजना करती हैं। इस वर्ष भी बम्बई में इस प्रकार की लगभग २५ संस्थाओं का वार्षिक अधिवेशन हुआ।

इस अवसर पर ३ जनवरी को विज्ञान परिषद् प्रयाग "विज्ञान अनुसंधान गोष्ठी" का आयोजन किया गया जिसका सभापतित्व बनारस विश्वविद्यालय के गणित विभाग के अध्यक्ष डा० वी० पी० नार्लिकर ने किया। उनके अध्यक्षपदीय भाषण के अतिरिक्त विविध वैज्ञानिक विषयों पर कई शोध निबन्ध पढ़े गये।

३. विज्ञान अनुसन्धान गोष्ठी

साइंस कांग्रेस अधिवेशन, बम्बई के अन्तर्गत विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा "विज्ञान अनुसन्धान गोष्ठी" का सफल आयोजन न केवल देश के वैज्ञानिक साहित्य वरन् विश्व के वैज्ञानिक साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। विज्ञान की सार्वभौमिकता, विज्ञान की निरन्तर सबल होती हुई मानवी शक्तियों की विलक्षणता ने वैज्ञानिक ज्ञान को आज के जन-जीवन के लिये परम आवश्यक बना दिया है। जन-साधारण तक विज्ञान का सन्देश पहुँचाने के लिये देश-विदेश की राष्ट्रभाषा का माध्यम ही अत्यन्त उपयुक्त है, यह कहने की आवश्यकता नहीं; इस पृष्ठभूमि में भारतीय जनता के लिये वैज्ञानिक ज्ञान सुगम व सुलभ कराने हेतु हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन का क्या महत्व है, यह अनुमान लगाना कठिन नहीं!

विज्ञान परिषद्, प्रयाग अपने जन्म से (सन् १६१४) ही इस महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति में रत है। मासिक "विज्ञान" के प्रकाशन के साथ-साथ अब दो वर्षों से हमारी संस्था ने त्रैमासिक "विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" के प्रकाशन का सत्कार्य हाथ में लिया है। हर्ष एवं गौरव का विषय है कि उक्त त्रैमासिक अनुसन्धान पत्रिका (जिसमें केवल शोध निबन्ध ही प्रकाशित होते हैं) की सामग्री को "केमिकल ऐब्सट्रेक्ट" (Chemical Abstract) ने सन् १६५८ से ही संक्षिप्तीकरण के लिये अपनी सूची में सम्मिलित कर लिया है तथा अन्य "ऐब्सट्रेक्स" (Abtract) प्रकाशन तत्सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित करना अनिवार्य समझने लगे हैं।

यों तो लोकप्रिय व सरल वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की ओर हिन्दी में कुछ समय से "विज्ञान" के सिवा अन्य प्रयास भी हो रहे हैं किन्तु मौलिक वैज्ञानिक चिन्तन को हिन्दी के माध्यम द्वारा व्यक्त करने का प्रयास अनुसन्धान पत्रिका में प्रस्तुत सामग्री के रूप में देश में प्रथम प्रयास है। विशेष रुचिकर बात तो यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक जगत हिन्दी के प्रति सहिष्णु हो चला है, प्रमाणस्वरूप अंग्रेजी त्रैमासिक सुविख्यात पत्रिका एन्डेवर (Endeavour) तथा केमिकल एजुकेशन (Chemical Education) में निकटभूत में ही प्रकाशित सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं जिनमें वैज्ञानिक भाषाओं की सूची में एशिया की कुछ भाषाओं के महत्वपूर्ण स्थान पाने की आशा प्रकट की गई है, इनमें हिन्दी प्रमुख है।

हिन्दी में मौलिक वैज्ञानिक चिन्तन को प्रोत्साहन देने के लिये उक्त अनुसन्धान पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ परिषद ने एक वार्षिक अनुसन्धान गोष्ठी का आयोजन भी अपने कार्यक्रम में रखा है, गोष्ठी का अवसर देश की सर्वप्रमुख वैज्ञानिक संस्था "इण्डियन साइन्स कांग्रेस" के वार्षिक अधिवेशन के समय पर रखा गया है। तदनुसार परिषद् की प्रथम गोष्ठी जनवरी सन् १९५९ में दिल्ली में हुई, द्वितीय अनुसन्धान गोष्ठी ३ जनवरी, सन् १९६० को बम्बई में आयोजित की गई।

वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में हिन्दी के अधिकाधिक महत्वपूर्ण स्थान पाने की भूमिका में बम्बई में आयोजित सफल गोष्ठी का संक्षिप्त विवरण अपेक्षित है।

गोष्ठी के प्रारम्भ में डा० सत्य प्रकाश (प्रयाग विश्व विद्यालय) ने माननीय अतिथि का स्वागत करते हुए परिषद का संक्षिप्त इतिहास बताया। गोष्ठी का उद्घाटन बम्बई राज्य के स्वास्थ्य उपमंत्री डा० एन० एन० कैलाश ने किया। अपने भाषण में डा० कैलाश ने वैज्ञानिकों को आज की परमावश्यकता-भारतीय जनता में वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार-के प्रति जागरुक होने का आदेश करते हुए यह मत प्रकट किया कि शीघ्रातिशीघ्र स्नातक तथा आचार्य-स्तर तक की मौलिक पुस्तकों या अनुवाद का हिन्दी में प्रकाशन किया जाय। इसके लिये, उन्होने एक प्रभावशाली तथा सक्रिय अन्तर्प्रान्तीय समिति के निर्माण करने की सलाह दी। गोष्ठी के अध्यक्ष, प्रो० वी० वी० नारलीकर (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ने अपने अध्यक्षपदीय भाषण में विज्ञान के वर्तमान रूप की गणितीय व्याख्या बड़े पाण्डित्य पूर्ण ढँग से दी। गोष्ठी में कई शोध निबन्ध पढ़े गये, निबन्ध पाठ के बाद उन पर महत्वपूर्ण विवाद व विचार-विमर्ष हुआ। गोष्ठी में देश के कोने-कोने से आये निम्न वैज्ञानिकों ने भाग लिया—वाराणसी के प्रो० वी० वी० नारलीकर, विद्या सागर दुबे, अजीत राम वर्मा, सहदेव प्रसाद पाठक, नन्दलाल सिंह, उमा शंकर, हरीनाथ राय, रमा शंकर सिंह, तथा ह० जी० आरणीकर, कलकत्ता के डा० आत्माराम, पुरी के डा० जी० एस० घोष, गोरखपुर के प्रो० रामचरण मेहरोत्रा तथा देवेन्द्र शर्मा, आगरा के प्रो० अवनीकुमार भट्टाचार्य डा० नरेन्द्र नाथ घटक गिरिराज किशोर चतुर्वेदी तथा ताराचन्द्र गुप्त, पूना के डा० गो० रा० पराँजपे, भूपाल के प्रो० हरप्रसाद अग्रवाल, जबलपुर के डा० सूरजभान सिंह, कानपुर के जनार्दन प्रसाद शुक्ल तथा न० अ० रामप्पा, नैनीताल के प्रो० ओंकारनाथ पर्ती, दया प्रसाद खाण्डेलवाल, देवीदत्त पन्त, युगुलकिशोर गुप्त, सत्य प्रकाश श्रीवास्तव तथा देवीराम गुप्त, बम्बई के चन्द्र शेखर कनेकर, रुद्रपाल सिंह, सुखदेव पाल, चिन्तामणि पाण्डे, दि० स० अगाशे, श्री भुवनचन्द्र पाण्डे, गिरजेश गोविल, करणसिंह, तथा विपिन मुख्यान वाला, लखनऊ के प्रो० प्रेमनाथ शर्मा तथा मुकुन्द विहारी लाल, कराई कुडीके डा० प्रेम विहारी माथुर, दिल्ली के श्री मुल्कराज वर्मा, कोमल चरण अग्रवाल, डाक्टर बालकिशोर नायर तथा ए० वी० जैन, सागर के डा० सतगुर शरण निगम, रायपुर के श्री नन्दलाल जैन, प्रयाग के डा० श्रीमती रत्नकुमारी, अरुण कुमार दे, हीरालाल निगम, कृष्ण गोपाल, डॉ० प्रेम स्वरूप, उमाचरण शुक्ल, सुमत प्रकाश गर्ग, वीरेन्द्र कुमार माथुर, शिव प्रकाश, कृष्ण स्वरुप श्रीवास्तव, कृष्णमुरारी लाल, असीम घोष, रा० प्र० अग्रवाल, शिवकुमार तिवारी, के० सी० तिवारी, के० एन० उपाध्याय तथा कुमारी पूर्णिमा दवे।

अन्त में प्रो० रामचरण मेहरोत्रा (गोरखपुर विश्वविद्यालय) ने कृतज्ञता प्रकाशन किया जिसमें हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की आशा प्रकट की गई। हमें विश्वास है कि गोष्ठी की सर्वप्रियता, सफलता और उपयोगिता वस्तुतः इस क्षेत्र में काम करने वालों को बल प्रदान करेगी !

३. सं० २०१४ का मंगला प्रसाद पुरस्कार

३ जनवरी १९६० को हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सम्वत् २०१४ का मंगलाप्रसाद पुरस्कार श्री फूलदेव सहाय वर्मा को उनकी कृति "ईख और चीनी" पर प्रदान किया है। यह पुरस्कार औद्योगिक विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ कृति पर घोषित किया गया है। ज्ञात हो कि केन्द्रीय सरकार "ईख और चीनी" को पहले ही पुरस्कृत कर चुकी है।

श्री वर्मा ने मंगला प्रसाद पुरस्कार की निधि से सहर्ष १०००) विज्ञान परिषद को दान स्वरूप दिया है।

४. भारतीय गणित परिषद् का पचीसवाँ अधिवेशन

पं० जवाहर लाल नेहरू ने २५ दिसम्बर १९५९ को प्रयाग विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में भारतीय गणित परिषद के पचीसवें अधिवेशन का उद्घाटन करते हुये गणित के क्षेत्र में अधिकाधिक शोध कार्य करने की राय दी। विगत ५१ वर्षों के जीवन-काल में गणित परिषद् का यह अधिवेशन प्रयाग में विशेष महत्व रखता है। प्रयाग विश्वविद्यालय के गणित विभाग ने उक्त अधिवेशन को सफल बनाने के लिये अथक प्रयास किये; परन्तु खेद है कि उसमें स्थानीय व्यक्तियों, अध्यापकों तथा शोध छात्रों को न तो आमन्त्रित किया गया और न उनके प्रवेश की कोई व्यवस्था ही की गई।

५. विश्व कृषि मेला एवं प्रदर्शिनी

नई दिल्ली में कृषि प्रदर्शनी का उद्घाटन गत ११ दिसम्बर को हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। भारतीय कृषक समाज द्वारा आयोजित यह प्रदर्शिनी अपने प्रकार की सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शिनी है जिसमें विश्व के ११ अग्रणी राष्ट्र भाग ले रहे हैं। इनमें अमेरिका, रूस तथा चीन द्वारा निर्मित मण्डप दर्शकों का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट करते हैं। इस प्रदर्शिनी का महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक है कि उद्घाटन के समय अमेरिका के राष्ट्रपति आइसनहोवर भी उपस्थित थे। इस विश्व कृषि मेले का भारतीय कृषकों के लिये सर्वाधिक महत्व है। विभिन्न राष्ट्रों में होने वाली कृषि की वैज्ञानिक प्रगति हमारे कृषकों को स्फूर्ति प्रदान करेगी। हमारे राष्ट्रपति ने उद्घाटन करते हुये कहा कि भारतीय कृषक अपनी पुरानी कृषि प्रणाली पर ही, यद्यपि वह मूल्यवान है, निर्भर न रहकर देश की आवश्यकता और साधनों के अनुसार नवीनतम वैज्ञानिक कृषि प्रणालियों को अपनावें।

राष्ट्रपति आइसनहोवर ने इस अवसर पर भाषण करते हुये कहा, "यह ठीक हुआ कि यह मेला भारत में आयोजित किया गया क्योंकि यह देश कृषि को मानव का मौलिक पेशा समझता है तथा अपने नागरिकों की अच्छी निर्वाह-व्यवस्था के लिये मुख्यतया इसी पर निर्भर है।"

पं० नेहरू ने भी अपने भाषण में कहा "विश्व कृषि मेला भारत के मूल उद्योग का प्रतिनिधित्व करता है। कृषि से भारतीय की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

सोवियत के प्रधान मंत्री निकिता-ख्रुश्चेव ने अपने संदेश में लिख भेजा है कि :

"दिल्ली में विश्व कृषि प्रदर्शिनी का संगठन भारतीय जनता के लिये एक उल्लेखनीय घटना है, और यह केवल भारत के लिये ही उल्लेखनीय घटना नहीं है, यह घटना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने, राज्यों के मध्य सौहार्द तथा पारस्परिक सद्भाव को आगे बढ़ाने के भारतीय जनता के हार्दिक प्रयास का प्रमाण है। सोवियत संघ की जनता की कामना है कि सारे संसार के खेतों में फसलें पैदा हों, बाग बगीचे फूलें-फूलें, किसानों का काम उन्हें सुख प्रदान करे, उनके शान्तिपूर्ण श्रम में नये युद्ध के खतरे से विघ्न उपस्थित न हों।"

———

साइको आयताकार जल ऊष्मक
माडल आर डब्ल्यू बी
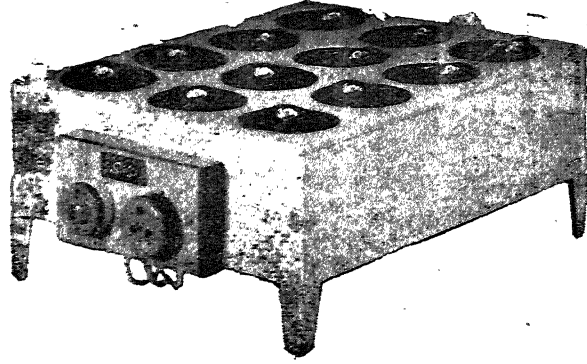
इसे तांबे की चादरों से बनाया गया है। इसमें ३ इञ्च व्यास के छेद हैं जिनमें एक केन्द्रीय, वृत्ताकार. एक दूसरे से संलग्न वलय लगे हैं जिनमें विभिन्न आकारों के फ्लास्क रखे जा सकते हैं। ऊष्मक में जल का तल स्थिर रखने के हेतु ऐसी व्यवस्था रखी गई है कि जल का तल ऐच्छिक तल पर रखा जा सकता है। ऊष्मा देने के हेतु विजली के इलीमेन्ट लगाये गये हैं जिन्हें सुविधापूर्वक बदला जा सकता है। ऊष्मक को ए सी / डी सी विजली के द्वारा २३० वोल्ट पर काम में लाया जाता है। यन्त्र के साथ विजली का तार और प्लग दिया जाता है, थर्मामीटर नहीं।

विशेष विवरण

माडल	आन्तरिक प्रसार	छेदों की संख्या
आर डब्ल्यू बी-४	२४० मि० मी० × २४० मि० मी० × ८५मि०मी० ६ १/२ " × ६ १/२ " × ३ १/२ "	४
आर डब्ल्यू बी-६	३५० मि० मी० × २४० मि० मी० × १००मि०मी० १४ " × ६ १/२ " × ४ "	
आर डबल्यू बी-१२	४५० मि० मी० × ३५० मि०मी० + १००मि०मी० १८ १/२ " × १४ " × ४ "	

दी साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी लिमिटेड

२४० डा० दादाभाई नौरोजी रोड
बम्बई—१

११ एस्प्लेनेड ईस्ट
कलकत्ता—१

६ तेज बहादुर सप्रू रोड
इलाहाबाद १

३० माउण्ट रोड
मद्रास—२

बी—७ अजमेरी गेट एक्स्टेन्शन
नई दिल्ली—१

'विज्ञान' में विज्ञापन

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रति वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	४०० रु०
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	५०० ,,
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०० ,,
,, आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२० ,,
,, चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये १५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिये।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक कमीशन जोड़ कर भेजा जाय।

साथ भेजे हुये ब्लाकों को परिषद् स्वीकार करेगा।

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका

वैज्ञानिक अनुसन्धान से सम्बन्धित हिन्दी की प्रथम शोध पत्रिका

त्रैमासिक

जिसमें गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र तथा भूगोल शास्त्र पर मौलिक एवं शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित होते हैं। भारतवर्ष की विविध प्रयोगशालाओं के उत्कृष्ट निबन्धों को इसमें स्थान दिया जाता है

विश्व के सभी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थानों, पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा यह पत्रिका समादृत है।

सामान्य सदस्यों के लिये वार्षिक शुल्क ८) । 'विज्ञान' के सदस्य ४) अतिरिक्त वार्षिक शुल्क देकर अनुसन्धान पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। यह पत्रिका अभी त्रैमासिक है किन्तु भविष्य में द्वैमासिक या मासिक होने की सम्भावना है।

प्रधान सम्पादक—डा० सत्य प्रकाश
प्रबन्ध सम्पादक—डा० शिव गोपाल मिश्र

मँगाने का पता
विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका,
विज्ञान परिषद्,
थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद—२

प्रकाशक—डा० आर० सी० कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

'विज्ञान' में विज्ञापन

विज्ञापन की दरें

	प्रति अंक	प्रति वर्ष
आवरण के द्वितीय तथा तृतीय पृष्ठ	४० रु०	४०० रु०
आवरण का चतुर्थ पृष्ठ (अन्तिम पृष्ठ)	५० ,,	५०० ,,
भीतरी पूरा पृष्ठ	२० ,,	२०० ,,
,, आधा पृष्ठ	१२ ,,	१२० ,,
,, चौथाई पृष्ठ	८ ,,	८० ,,

प्रत्येक रंग के लिये १५) प्रति रंग अतिरिक्त लगेगा।

विज्ञापन के नियम

१—विज्ञापन के प्रकाशित करने अथवा उसके रोकने के लिये एक मास पूर्व सूचना कार्यालय में आनी चाहिये।

२—विज्ञापन का मूल्य पहले ही आ जाना चाहिये। यदि चेक द्वारा भुगतान करना हो तो साथ में बैंक कमीशन जोड़ कर भेजा जाय।

साथ भेजे हुये ब्लाकों को परिषद स्वीकार करेगा।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९०	२०१६ विक्र०; माघ १८८१ शाकाब्द; फरवरी १९६०	संख्या ५

आइंस्टाइन की चौथी विभा—समय

डा० ब्रज मोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

इंग्लैण्ड में गर्मियों में दिन बहुत बड़े होते हैं और रातें बहुत छोटी। बल्कि यों कहना चाहिये कि रातें होती ही नहीं। क्योंकि 'सन्ध्या' के लगभग ११ बजे तक तो दिन का-सा प्रकाश रहता है। उधर सवेरे तीन बजे से 'दिन' निकल आता है। बीच के चार घंटे भी प्राय: 'सन्ध्या' ही रहती है। रात्रि के किसी भी समय आप उठ जाइये, आपको कमरे की सारी वस्तुयें दिखाई पड़ेंगी। एक बार इस बात पर विचार हुआ कि इंग्लैण्ड के निवासियों को किस प्रकार इस बात पर विवश किया जाय कि सवेरे जल्दी उठें और अपना सारा दैनिक कार्य-क्रम कुछ समय पहले आरम्भ कर दें। साधारणतया तो उस देश में जाड़े की ऋतु ही रहती है। वर्ष भर में केवल चार महीने 'गर्मी' के माने जाते हैं। वर्ष में आठ महीने सवेरे कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। अत: लोग सवेरे देर से उठने के अभ्यस्त हैं। प्रश्न यह था कि ग्रीष्म के प्रकाश का किस प्रकार अधिक से अधिक लाभ उठाया जाय। एक व्यक्ति ने यह सुझाव दिया कि गर्मियों के आरम्भ में इंग्लैण्ड भर की सारी घड़ियाँ एक घंटा आगे बढ़ा दी जायें। यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। अत: गर्मी के आरम्भ में एक दिन निश्चित कर दिया जाता है और घोषणा कर दी जाती है कि अमुक दिन, अमुक समय सारी घड़ियाँ एक घंटा आगे कर दी जायँगी। इसी प्रकार शरद् ऋतु के आरम्भ में एक निश्चित दिन के एक निश्चित समय समस्त घड़ियाँ फिर एक घंटा पीछे कर दी जाती हैं। उक्त एक घंटा आगे बढ़े हुये समय को ग्रीष्म-समय (Summer Time) कहते हैं।

कुछ वर्ष हुए, भारत में भी एक बार इसी प्रकार का प्रयोग किया गया था जब लार्ड विलिंग्डन इस देश के वाइसराय थे, देश भर की घड़ियाँ एक घंटा आगे कर दी गई थीं। उक्त बढ़े हुये समय को कुछ लोग 'विलिंग्डन समय' कहते थे। कुछ कारणों से एक ही वर्ष पश्चात् उक्त प्रयोग को त्याग दिया गया था।

एक बार इंलैण्ड में एक व्यक्ति ने किसी की हत्या का उपक्रम किया। उसने उक्त अपराध की विस्तृत योजना बना रक्खी थी। एक मित्र से उसने यह निश्चय किया था कि वह उसके घर सबेरे तीन बजे आयेगा और फिर दोनों तड़के की रेलगाड़ी से बाहर चले जायँगे, अपराधी ने सोचा था कि वह हत्या करके दो बजे तक लौट आयेगा, रक्त से सने हुये कपड़े उतार कर जला देगा, स्नान करके शरीर को भी स्वच्छ कर लेगा और सो जायगा। जब उसका मित्र तीन बजे आयेगा, उसे सोते से जगायेगा और इस प्रकार उसे मित्र का साक्ष्य मिल जायगा कि वह तो हत्या की रात को अपने घर पर सो रहा था। अपराधी ने यह सब बातें तो सोच लीं किन्तु एक गलती कर गया। उसी रात के दो बजे इंग्लैण्ड की घड़ियाँ एक घंटा बढ़ाई जाने वाली थीं। अतः जब तक वह अपराध करके लौटा, उसका मित्र उसके घर के दरवाजे पर घंटी बजा रहा था। इस प्रकार अपराधी रँगे हाथ गिरफ्तार कर लिया गया।

एक अन्य मुकद्मा भी इंगलैण्ड का ही सुनने में आया है। एक व्यक्ति किसी हत्या के अपराध में पकड़ा गया। अन्त में निर्णय इस बात पर आश्रित हो गया कि यदि हत्या अमुक रात के १२॥ बजे हुई तो उसी व्यक्ति ने की थी, अन्यथा वह निर्दोष था। उक्त व्यक्ति ने यह तर्क उपस्थित किया कि यह वही रात थी जब ठीक १२ बजे देश भर की घड़ियाँ एक घंटा बढ़ाई गई थीं। अतः जिस समय घड़ियों में १२ बजे, तुरन्त घंटे की सुइयाँ 'एक' पर कर दी गईं। इस प्रकार उस रात इंग्लैण्ड में १२॥ बजे ही नहीं। उक्त अभियुक्त साफ छूट गया।

उपरिलिखित दो उपाख्यान केवल यह दिखाने के लिये दिये गये हैं कि हमारे जीवन में समय का कितना अधिक महत्व है। यहाँ 'समय' से हमारा तात्पर्य अवधि (duration) से नहीं, वरन् 'किसी निश्चित क्षण' से है। हमारे जीवन में प्रत्येक क्षण का महत्व है। सारा विश्व गतिमान है। इसका एक भी कण स्थिर नहीं है। हम सब प्राणियों, पहाड़ों, नदियों, घाटियों को लिये-दिये, हमारी पृथ्वी प्रत्येक सेकिण्ड में बीस मील की छलाँग मार जाती है। पृथ्वी और समस्त ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। किन्तु सूर्य भी अपने सारे सौर मण्डल के साथ साथ अवकाश में दौड़ लगा रहा है। इसके अतिरिक्त लाखों तारे अपने-अपने ग्रह मंडलों के साथ किसी दिशा में दौड़े चले जा रहे हैं। इसी प्रकार तारिकावलियाँ (galaxies) इन सौर मंडलों को लिये-दिये न जाने किधर को सैकड़ों मील प्रति सेकिण्ड के वेग से उड़ी चली जा रही हैं।

ऐसी स्थिति में विश्व के किसी भी अंग की स्थिति अविचल नहीं है। अतः यदि हम किसी विन्दु की स्थिति निश्चित करना चाहें तो यह आवश्यक होगा कि यह भी बता दें

कि बिन्दु की अमुक स्थिति किस समय की है, क्योंकि अगले ही क्षण उसकी स्थिति बदल जायगी। साधारणतया, समतल में किसी बिन्दु की स्थिति का निरूपण करने के लिये दो निर्देशांक (coordinates) पर्याप्त होते हैं। अवकाश में किसी बिन्दु के स्थिति निर्धारण के लिये तीन निर्देशांकों की आवश्यकता पड़ती है। आइंस्टाइन ने इस बात पर बल दिया है कि जिस प्रकार तीन निर्देशांक अवकाश (space) के दिये जाते हैं, उसी प्रकार एक चौथा निर्देशांक समय का भी देना आवश्यक है। या यों कहिये कि जब हम किसी बिन्दु की स्थिति बताते हैं तो यह भी इंगित कर देना चाहिये कि अमुक स्थिति किस क्षण की है।

हम एक उदाहरण दैनिक जीवन से लेते हैं। मान लीजिये कि हमने किसी से पूछा कि "क्यों भई तुमने बाबू राम स्वरूप को देखा है ?" वह कहता है "हाँ, हाँ, अभी परसों ही मिले थे। लम्बा सा कद है, सिर और दाढ़ी के बाल सफेद हैं, चश्मा लगाते हैं, मुँह पर झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं, दुबले पतले हैं।"

हम एक अन्य व्यक्ति से वही प्रश्न करते हैं। वह कहता है "हाँ, हाँ, मैं राम स्वरूप को भली-भाँति जानता हूँ काली-काली मूँछें हैं, सिर पर घने काले बाल हैं, रोज दाढ़ी बनाते हैं, हृष्ट पुष्ट हैं।"

एक वयोवृद्ध व्यक्ति कहते हैं कि "मैं राम स्वरूप को खूब जानता हूँ। वह १५ वर्ष का एक हँसमुख बालक है, बगल में पुस्तकें दबा कर स्कूल ले जाता है। अभी मसें भी नहीं भीगी हैं।"

उन्हीं राम स्वरूप के विषय में एक अतिवृद्ध सज्जन का यह कथन है "मैंने राम स्वरूप को देखा है। दाई उसे गाड़ी पर घुमाने ले जाती है। चुसनी से दूध पीता है, बैठ लेता है, अभी खड़ा नहीं हो पाता।"

सम्भव है यह चारों कथन सत्य हों। सबसे पहले व्यक्ति ने राम स्वरूप को दो ही दिन पहले देखा था, दूसरे ने बीस-पच्चीस वर्ष पहले, तीसरे ने चालीस वर्ष पहले और चौथे ने सम्भवतः साठ वर्ष पहले। चारों ने एक ही व्यक्ति को चार भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में देखा है। परस्पर विरोधी होते हुये भी सब का साक्ष्य सत्य है। यह है समय का प्रभाव।

समय की गति जानने के लिये आज तक अनेक दार्शनिकों ने प्रयत्न किया है किन्तु पूर्ण रूप से आजतक कोई भी जान न पाया। मान लीजिये कि सिनेमा के कैमरे से १ मिनट में ३० फोटो लिये जाते हैं और इसी वेग से प्रदर्शित किये जाते हैं तो प्रत्येक दृश्य दर्शकों के सम्मुख दो सेकिण्ड रहता है। यदि हमको यह दृश्य दिखाना है कि सिनेमा चित्र के किसी अभिनेता ने अपना हाथ नीचे से ऊपर की ओर उठाया तो इसी गति को हम तीस टुकड़े करके दिखायेंगे। भिन्न-भिन्न चित्र इस प्रकार के होंगे।

एक समय में केवल एक ही चित्र दिखाई देता है जो स्थिर होता है। किन्तु सब चित्रों का संकलित प्रभाव ऐसा होता है कि हमें हाथ उठता हुआ दिखाई देता है। यों कहना चाहिए कि स्थिर चित्रों से ही गति का भान हो जाता है।
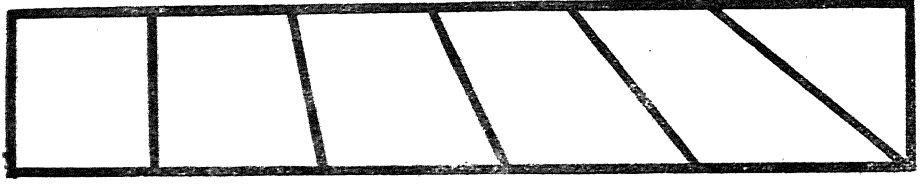
यही दशा समय की भी है। समय के तीन विभाग किये गये हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य। जिस प्रकार सिनेमा के पर्दे पर जो चित्र हम देख चुके हैं, वह भूत हैं, जो विशिष्ट चित्र हमारे सम्मुख है, वह वर्तमान है और जो चित्र अभी देखने को अवशिष्ट हैं, वह भविष्य हैं। इसी प्रकार जो घटनायें बीत गईं, वह भूत हैं, जो इस समय दृष्टिगोचर हो रही हैं, वर्तमान हैं और जो घटने वाली हैं, भविष्य हैं। किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान तो एक ज्यामितीय रेखा की भाँति काल्पनिक है। प्रति क्षण वर्तमान भूत में विलीन होता जा रहा है। जो इस क्षण वर्तमान है, वही अगले क्षण भूत बन जाता है। सिनेमा के चित्र तो हम, उसी रील को दुहरा कर, दुबारा देख सकते हैं किन्तु समय का जो क्षण बीत चुका, दुबारा नहीं लौटाया जा सकता। इसीलिए समय की तुलना एक-पक्षी यातायात (one-way traffic) से की गई है। समय सदैव आगे ही की ओर बढ़ता है, पीछे कभी नहीं लौटता।

एक दार्शनिक हुये हैं डन। इन्होंने समय की तुलना एक घुमौआ जीने से दी है। उक्त जीने पर हम लोग नीचे की ओर मुँह किए उल्टे चल रहे हैं। जिन सीढ़ियों पर हम चल चुके हैं, वह हमें दिखाई देती हैं किन्तु जिन सीढ़ियों पर अभी चलना बाकी है, हमारे पिछाड़ी होने के कारण, हमें दिखाई नहीं देतीं। इसके अतिरिक्त कुछ सीढ़ियां चढ़ने के पश्चात जब घुमाव आता है, तब सबसे नीचे की सीढ़ियां भी हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। इसी प्रकार अतीत की भी बहुत सी बातें हम भूलते चले जाते हैं। किसी भी क्षण हमें नीचे की थोड़ी सी ही सीढ़ियाँ दिखाई देंगी। किसी भी समय भूत की भी हम थोड़ी सी ही बातें याद रखते हैं।

इस सिद्धान्त पर कई आपत्तियाँ हो सकती हैं। एक बात तो यह है कि सब मनुष्यों को भूत की याद एक ही मात्रा में नहीं रहती। कुछ लोग ६०-७० वर्ष पहले की बातें भी याद रखते हैं, कुछ लोग एक सप्ताह पहले की बातें भी भूल जाते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन की कुछ बहुत पुरानी बातें याद रखता है, किन्तु कुछ अन्य बातें दो एक महीने में ही भूल जाता है। यह मनुष्य के स्वभाव और रुचि और घटनाओं के महत्व पर निर्भर है। इसके विपरीत कुछ लोग ज्योतिष, योग अथवा अन्तःप्रेरणा द्वारा

भविष्य की भी बहुत सी बातें जान लेते हैं। उपरिलिखित उपमा में पिछाड़ी की सीढ़ियाँ तो बिल्कुल दिखाई ही नहीं पड़तीं। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार हमारे जीवन की समस्त घटनायें पूर्वानिश्चत होती हैं और उनमें संशोधन या परिवर्तन करने की हमारे अन्दर तनिक भी क्षमता नहीं होती। इस प्रकार तो चोरों और डकैतों को कोई भी दण्ड नहीं मिलना चाहिये क्योंकि कर्म करने में उन्हें तो तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। जिस बात में उनका कोई वश ही नहीं है, उनके लिये उन्हें दण्ड क्यों दिया जाय? कर्म-स्वातन्त्र्य सिद्धान्त के समर्थक इस तर्क को नहीं मान सकते।

एक अन्य दार्शनिक ने छेद की उपमा दी है। मान लीजिए कि हमारे कमरे में एक खिड़की है जिससे हम बाहर का दृश्य देख सकते हैं। हम खिड़की के ही आकार का एक कागज लेते हैं और उसके बीच में एक गोल छेद बना देते हैं। फिर इस कागज को हम खिड़की पर चिपका देते हैं। तो हम बाहर का उतना ही दृश्य देख सकते हैं जितना उस छेद से दिखाई दे। एक अन्य व्यक्ति उक्त छेद से बड़ा अथवा छोटा छेद बनाता है। उसी अनुपात में वह हम से अधिक अथवा कम देख सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की देखने की शक्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इसी प्रकार कोई भूत को अधिक दूर तक देख सकता है, कोई कम। कोई भविष्य को भी देख सकता है, कोई नहीं।

इस उपमा को हम केवल उपमा के ही रूप में मान सकते हैं। इसमें भूत और भविष्य का अन्तर दिखाई नहीं देता।

समय से ही सम्बद्ध एक प्रश्न है 'समय यन्त्र' (Time Machine का। यह पद तीन, विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। हम जानते हैं कि विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की परिधि लगभग २५००० मील है। और पृथ्वी २४ घंटे में अपने कक्ष के चारों ओर एक पूरा चक्कर काट जाती है। अतः पृथ्वी की परिभ्रमण गति लगभग १००० मील प्रति घंटा हुई। हम यह भी जानते हैं कि पृथ्वी के विभिन्न स्थानों पर समय एक सा नहीं रहता। यदि इस समय बनारस में आठ बजे हैं तो बनारस से लगभग १००० मील पश्चिम में ७ बजे होंगे, उससे और १००० मील पश्चिम में ६ बजे होंगे..........अब मान लीजिए कि हम बनारस से एक एक हजार मील की दूरी पर, पश्चिम दिशा में, १२ स्थान चुन लेते हैं तो उक्त स्थानों के समय की तालिका इस प्रकार की होगी :

मेक्सिको — बगदाद कराची बनारस

रात्रि ८ बजे — मध्यरात्रि — ६ बजे ७ बजे प्रातः ८ बजे

अब मान लीजिए कि हम एक ऐसा यान तैयार करते हैं जिसकी चाल १००० मील प्रति घंटा है, और उस पर बैठ कर सवेरे ८ बजे बनारस से पश्चिम की ओर चलते हैं तो एक घंटे में जब हम करांची पहुँचेंगे, उस समय करांची में ठीक ८ बजेंगे और उस समय बगदाद में ठीक ७ बजे होंगे। इससे एक घंटे पश्चात् जब हम बगदाद पहुँचेंगे उस समय बगदाद की घड़ियों में ठीक ८ बजे होंगे। इसी प्रकार हम जहाँ-जहाँ भी जायेंगे, वहां की घड़ियों में ठीक ८ ही बजे होंगे। जब हम १२ घंटे में मेक्सिको पहुँचेंगे उस समय वहां भी ८ ही बजे होंगे। हम मेक्सिको से पश्चिम की ही दिशा में बढ़ते चले जायेंगे। प्रत्येक स्थान पर ८ ही बजे मिलेंगे। हम सारा प्रशान्त महासागर पार करके स्याम, बर्मा, बंगाल, होते हुये जब फिर बनारस लौटेंगे, तब बनारस में भी ८ ही बजे होंगे। इस प्रकार हम २४ घंटे में सारे संसार का भ्रमण करके लौटेंगे किन्तु समय वहीं का वहीं रहेगा। यों पूरा एक दिन बीत जायगा किन्तु घड़ी के हिसाब से समय के बीतने का हमें कोई भान नहीं होगा। इस प्रकार हम उक्त यान में चाहे महीनों और वर्षों चलते रहें, समय सदैव स्थिर दिखाई देगा। इसी यान को 'समय यन्त्र' कहते हैं। यह हुआ समय यन्त्र का पहला अर्थ।

अब मान लीजिए कि हम एक ऐसा यान बनाते हैं जिसका वेग प्रकाश वेग से कुछ अधिक है अर्थात् लगभग दो लाख मील प्रति सेकिण्ड। हम जानते हैं कि कुछ नक्षत्र पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि प्रकाश को उनसे पृथ्वी तक आने में सैकड़ों और हजारों वर्ष लगते हैं। जो तारा पृथ्वी के सबसे समीप है उससे पृथ्वी तक प्रकाश को आने में ४ वर्ष लगते हैं। अतः प्रकाश को पृथ्वी से उस तारे तक जाने में भी चार ही वर्ष लगेंगे। तारे तो सौर मण्डल के ग्रहों की अपेक्षा बहुत अधिक दूर हैं। ग्रहों तक प्रकाश को जाने में ४ वर्ष से कम ही लगेंगे। अब मान लीजिए कि हम अपने अवकाश-यान (Space-plane) में पृथ्वी से चलते हैं और समस्त ग्रहों की सैर करते चलते हैं। पहले पहल ऐसे ग्रह में पहुँचते हैं जहाँ तक प्रकाश को पहुँचने में एक महीना लगता है। हम अपने यान से उस ग्रह से एक महीने से पहले ही पहुँच जाते हैं तो जो प्रकाश पृथ्वी से उस ग्रह तक एक महीने में पहुँचेगा, हम उससे पहले ही पहुँच जायँगे। अब मान लीजिए कि आज से ठीक एक महीना पूर्व हम एक नाटक में अभिनय कर रहे थे तो आज उक्त ग्रह से हम अपनी आंखों से अपने आपको ही अभिनय करते देखेंगे। कुछ उसी ढंग का आनन्द हमको होगा जैसा सिनेमा के अभिनेताओं को होता है जब वह अपनी ही कोई फिल्म देखते हैं। अब मान लीजिये कि हम उक्त ग्रह से अगले ग्रह को जाते हैं जो पृथ्वी से एक प्रकाश-वर्ष (Light year) की दूरी पर है। तो हम पृथ्वी की वह घटनायें देखेंगे जो एक वर्ष पहले ही देख चुके थे। इसी प्रकार अपने यान को और आगे बढ़ाते चले जाइये। हम ऐसे नक्षत्रों और तारों तक पहुँच जायँगे जिनकी दूरियां पृथ्वी से सैकड़ों और हजारों प्रकाश-वर्ष हैं। हम मुगलों का साम्राज्य देख सकते हैं, अशोक का वैभव देख सकते हैं, महाभारत को अपनी आँखों के सामने घटित होते देख सकते हैं, भगवान कृष्ण का अर्जुन को गीतोपदेश अपने कानों से, कृष्ण जी की ही वाणी में सुन सकते हैं, भगवान रामचन्द्र

को धनुष तोड़ते हुए देख सकते हैं। कैसा अद्भुत व्यापार होगा वह! सोच-सोच कर ही रोमांच हो आता है। यह है समय यन्त्र का दूसरा अर्थ।

अब प्रश्न यह आता है कि क्या मनुष्य समय के नियन्त्रण को तोड़ कर भूत अथवा भविष्य में पदार्पण कर सकता है? एक अर्थ में तो यह बिल्कुल सम्भव है। भारत में तो अतिप्राचीन काल से यह विद्या प्रचलित रही है। भूत अथवा भविष्य जानने की तीन विधियां हैं: योग, ज्योतिष और सम्भावना (Probability) सिद्धान्त। सम्भावना सिद्धान्त तो एक आधुनिक शास्त्र है। इसके द्वारा भविष्य की बहुत सी बातों की जानकारी हो जाती है। आंकड़ों के आधार पर यह बता दिया जाता है कि अगले सप्ताह अमुक नगर में इतनी मार्ग-दुर्घटनायें होंगी और यह पूर्वानुमान बहुत कुछ अंशों में सत्य निकलता है। किन्तु योग और ज्योतिष पुरातन विद्यायें हैं, यद्यपि योग को 'विद्या' के बदले 'साधन' कहना अधिक उपयुक्त होगा। योग तो अब प्रायः लुप्त होता जा रहा है किन्तु ज्योतिषियों की अब भी इस देश में भरमार है। इस विद्या के कई अंग हैं: हस्तरेखा, जन्म पत्री, रमल, पंचपक्षी आदि। इस विषय से सम्बद्ध एक प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है: क्या हम भूत अथवा भविष्य को परिवर्तित भी कर सकते हैं? भूत को परिवर्तित करना तो असम्भव है क्योंकि जो घटना घटित हो गई उसे 'अघटित' किस प्रकार किया जा सकता है? अब रहा प्रश्न भविष्य का। क्या हम भविष्य को प्रभावित कर सकते हैं? यह एक सन्दिग्ध प्रश्न है। मान लीजिए कि हमारा भविष्य इस प्रकार है कि आगामी ११ तारीख को सवेरे ६ बजे हम रेलवे स्टेशन जायँगे। तो यदि हमें पहले से इसकी जानकारी हो गई और हम ने निश्चय कर लिया कि हम भविष्य को बदल देंगे तो हम उक्त दिन स्टेशन नहीं जायेंगे। यदि हम उक्त समय स्टेशन नहीं गये तो 'स्टेशन जाना' हमारा 'भविष्य' रहा ही नहीं। यों कहना चाहिये कि हमारे 'भविष्य' में स्टेशन जाना था ही नहीं और हमने 'भविष्य' गलत पढ़ा था। एक दृष्टिकोण यह भी है कि यदि हमको पहले से पता न चला होता और हमने विपरीत दिशा में प्रयत्न न किया होता तो हम उक्त समय स्टेशन अवश्य जाते। यों कहना चाहिए कि हमने भविष्य पढ़ा तो ठीक था किन्तु हमने अपने प्रयास से उसे टाल दिया।

यह तो रहे 'भविष्य में पदार्पण' के साधारण अर्थ। सापेक्षवाद सिद्धान्त में इस पद का एक बिलकुल भिन्न अर्थ लगाया जा रहा है। जिस प्रकार हम अवकाश (space) में आगे और पीछे चलते हैं उसी प्रकार क्या हम 'समय' में आगे और पीछे नहीं चल सकते? मान लीजिये कि कल सन्ध्या ६ बजे मेरे घर पर मेरे एक मित्र आये थे जब मैं घर पर उपस्थित नहीं था। आज सन्ध्या ६ बजे मैं घर पर बैठा हूँ और 'समय' में २४ घंटे पीछे की ओर चला जाता हूँ अर्थात् कल सन्ध्या ६ बजे। अतः, यदि इस प्रकार की गति संभव है तो कल सन्ध्या ६ बजे जब मेरे मित्र आये थे तब उन्हें दिखाई दिया होता। यह सर्वथा असम्भव है। मान लीलिए कि आज से १०० वर्ष पश्चात् कोई व्यक्ति १०० वर्ष पीछे लौट आये तो वह हमें आज दिखाई देना चाहिए। इस प्रकार तो 'वर्तमान' का कोई अर्थ ही न रह जायगा।

उपन्यासकार वेल्स ने 'समय यन्त्र' नामक एक उपन्यास लिखा है जिसमें एक वर्तमान व्यक्ति भविष्य में पहुँच कर उक्त समय की एक लड़की 'जीना' से बातें करता है, उसके साथ उठता बैठता है आदि। यह कहां तक सम्भव है? यदि यह सम्भव है तो क्या जब भविष्य का उक्त समय आयेगा। तब वह व्यक्ति उसी लड़की से फिर वही बातें करेगा जो आज करके आया है। अर्थात् क्या भविष्य की घटनायें एक बार आज घटित होंगी और फिर एक वार उस समय जब वह 'भविष्य' आयेगा? यह बात कल्पना में भी नहीं बैठती। यह तो सम्भव है कि हम भूत और भविष्य का पूर्व-ज्ञान प्राप्त कर लें किन्तु यह सम्भव नहीं है कि हम भविष्य में पहुँच कर भविष्य के व्यक्तियां से उसी प्रकार वार्ता और व्यापार करें जिस प्रकार वर्तमान व्यक्तियों से करते हैं। उपरिलिखित ६ बजे वाले उदाहरण में यह तो सम्भव है कि हम २४ घंटे पूर्व की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर ले और अपने मित्र को घर पर आते हुये देख लें किन्तु यह सम्भव नहीं है कि मित्र भी हमें देख ले। क्योंकि जब वह कल आया था और उसने हमें नहीं देखा था तो यह असम्भव है कि यह घटना जो एक बार घटित हो चुकी है, अब 'अघटित' हो जाय।

तोरी

श्री रामेश वेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

कोशातकी गण का सामान्य परिचय

कुष्माण्ड कुल (कुकुर्बिटैसी फेमिली) के अन्तर्गत वार्षिक शाकीय (annual herbaceous) आरोही लताओं का एक छोटा गण (genus) है जिसमें सात जातियां (species) हैं। दोनों गोलार्द्धों के गरम प्रदेशों में यह गण पाया जाता है परन्तु अमेरिका में यह देशीय नहीं है। इस गण की दो जातियां घियातोरी और धारतोरी बहुत विस्तृत रूप में उगाई जाती हैं। पाश्चात्य उद्भिज्ञों में कोशातकी गण का नाम लूफा (Luffa) है। यह शब्द अरबी के लूफ शब्द से बना है जिसका अर्थ है वानस्पतिक स्पंज। इसके पौदों को मलय में पटोल या कटोल कहते हैं। संस्कृत के पटोल शब्द से ही ये शब्द व्युत्पन्न हैं। पटोल भी इसी कुल की एक प्रसिद्ध सब्जी है।

भूमण्डल पर उपयोग

घियातोरी (लूफा इजिप्टियाका) चिकित्सा प्रयोजनां के लिए चीन, हिन्दचीन, फिलिपाइन द्वीप समूह, ब्राजील और गायना में काम आती है। धारतोरी (लूफा एक्यूटेंगुला), लूफा ओपर्कुलाटा (L.operculata Linn. Cogn.) और लूफा पर्जेन्स (L.purgans Mart) ब्राजील में इस्तेमाल होती हैं, लूफा स्फीरिका (.Sphaerica Sond) दक्षिण अफ्रीका में धारतोरी, कड़वी धारतोरी और घियातोरी कम्बोडिया में।

घियातोरी

संस्कृत नामों का अर्थ[1]

कोशफला (कोशोंवाले फलों की बेल), कोठफला (कोष्ठों वाले फलों की बेल), महाजालिनी, महाजालि (जालीदार बड़े फल वाली बेल), राजकोशातकी (बड़ी तोरी),

---

१. (क) कर्कोटकी कोठफला महाजालिनिरेव च।
धामार्गवस्य पर्याया राजकोशातकी तथा॥ च. क. ४,३।

(ख) राजकोशातकी मिष्टा महाजालिः सपीतका॥ म. पा. नि., शाक. ७, २०।

(ग) धमार्गवः कोशफला राजकोशातकी तथा।
कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजाली निरुच्यते॥ ध. नि., गुडूच्यादि १, १८६॥

(घ) राजकोशातकी हस्तिपर्णि का पीतपुष्पिका।
धामार्गवः कोशफला महाजाली सपीतकः॥ के. दे. नि, औषधिवर्ग, ५३१।

(ङ) धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधनः।
राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला॥ भा. प्र., शाक, ६७।

मिष्टा (मीठे फल वाली), हस्तिपर्णिका (बड़े पत्तों वाली), सपीतका, पीतपुष्पिका (पीले फूल वाली), धामार्गव, कर्कोटकी।

बड़ी तोरी

द्रव्यगुण के लेखकों ने घियातोरी की बड़े फलवाली एक किस्म पृथक वर्णन की है। इसके नाम ये हैं[१] :—

वृहत्कोशातकी, महाकोशातकी, हस्तिकोशात की, हस्तिघोषा (हाथी तोरी), वृत्ता (फल गोल होते हैं), महाभफला (बड़े फल वाली), धन्या (गुणों के कारण जो धन्य है) ग्राम्य कोशातकी (गांव की या जंगली तोरी), शरा (खुरदरे पत्ते जैसे छोटे-छोटे कांटों से आवृत हों), हस्तपर्ण (हाथ जैसे पत्तोंवाली बेल), महत्पुष्पी (बड़े फूलवाली)।

विविध भाषाओं तथा स्थानों में नाम

चीनी—स्वे-क्वा।
जावा—विस्त्रू, ब्लिस्त्रू, व्लुस्त्रू।
मलय—पिटोल मानिस, किटोल मानिस, पिटोल बुन्ताल (फूला हुआ पिटोल)।
लैटिन—लूफा सिलिण्ड्रिका (Lufa cylindrica Linn.). M. Roem),
लूफा इजिप्टियाका Luffa aegyptiaca Mill. ex Hook. 6)
लूफा पेन्टेण्ड्रा (Luffa pentandra Roxb.)
सुण्डानीज—लोपांग ओपांग।
सुमात्रा—किटोल, तिम्पून, हुरुंग जावा।
स्याम—वेप कोम।

घियातोरी का प्राप्ति स्थान

यह पौदा पुराने संसार के गरम प्रदेशों का आदिवासी है, परन्तु इतने अधिक प्राचीन समय से कृषि किया जा रहा है कि यह निश्चय करना कठिन है कि इसका मूलघर अफ्रीका है या एशिया।

---

१. (क) महाकोशातकी त्वन्या हस्तिघोषा महाफला। म. पा. नि., शाक ७,२१
(ख) महाकोशातकी धन्या हस्तिघोषा महाफला। घ. नि., गुडूच्यादि १, १६०
(ग) हस्तिकोशातकी त्वन्या वृहत्कोशातकी तथा
महाकोशातकी वृत्ता ग्राम्यकोशातकी शराः॥ रा. नि. मूलकादि ७, २८४।
(घ) अन्यात्वेभ्यां हस्तिघोषा महत्पुष्पा सपीतका।
महाकोशातकी तस्याः कथितं जांगलं फलम्॥ के. दे. नि., ओ. व., ५३४।
(ङ) महाकोशातकी ज्योत्स्ना हस्तिघोषा महाफला।
धामार्गवो घोषकश्च हास्तपर्णश्च स स्मृतः॥ भा. प्र. नि., शाक, ६५।

भारत में, भारत गण द्वीप (Indian archipelago) और उत्तर आस्ट्रेलिया में देशीय विश्वास किया जाता है।

सारे संसार में यह पौदा बोया जा रहा है और प्राकृत बना लिया गया है। भारत में सर्वत्र मिल जाता है। मलाया में बहुतायत में पैदा होता है।

औद्भिदीय वर्णन

घियातोरी बहुत अधिक फैलने वाली बेल है। पत्ते चार से आठ इंच तक लम्बे, लम्बाई की अपेक्षा चौड़ाई में अधिक, करतलाकार, पांच से सात खण्डों वाले होते हैं। तना पांच कोणों वाला। संजनी (tendrils) प्राय: तीन में विभक्त। नरफूल लम्बे डण्ठल के ऊपर के सिरे पर एक साथ कई लगे रहते हैं। पंखुड़ियाँ पीली, जिनमें शिराएं हरी होती हैं। पुंकेसर पांच। मादा फूल अकेले। फल पांच से बारह इंच लम्बे। लम्ब अंश में दस रेखाओं के चिन्ह। बीज काले या धूसर (grey), ३/८ इंच लम्बे, १/४ इंच चौड़े, संकीर्णसपक्ष (narrowly winged), चिकने, कुछ-कुछ उभारों वाले।

उपयोगी भाग

फल, फूल और कोमल पत्ते,[१] सामान्यतया पंचांग दवाओं में तथा विभिन्न प्रयोजनों में काम आता है।

रासायनिक संरचना

घियातोरी के फल का रासायनिक संरचन यह है :—

	जल सहित पदार्थ	जल रहित पदार्थ
जल	९४.६६	...
प्रोटीन	०.५१	९.५७
वसा	०.१९	३.७२
कार्बोहाइड्रेट	३.३१	६१.९९
उच्छिष्ट तन्तु (क्रूडफाइबर)	०.४३	८.५८
राख	०.४१	७.६५
अनिर्धारित	०.४५	८.४९

घियातोरी की भोजन सम्बन्धी उपादेयता इस प्रकार बताई जाती है :—

प्रोटीन	०.९०	माशा	प्रति छटां
वसा	०.६०	,,	,,
कार्बोहाइड्रेट	२.६०	,,	,,

१. फलं पुष्पं प्रवालंच विधिना तस्य संहरेत ॥
च., क. ४, ५।

ऊष्मा की कुल इकाइयां	१४.४	प्रति छटांक
खाद्योज सी	०.०१५६०	रत्ती प्रति छटांक

आहार विषयक परीक्षण बताते हैं कि घियातोरी के फलों में खाद्योजक बी कम होता है। रंग की विधि से इन फलों ने खाद्योज सी की १२२ अन्तर्राष्ट्रिय इकाइयां दिखाई।

तोरी (Lufa) के फलों में इन्द्र वारुणि (colocynth) के फलों के सदृश एक ऐन्द्र वारुणि मधुमेय (कोलोसिन्थीन ग्लूकोसाइड) की उपस्थिति बताई जाती है। परन्तु, इस विषय में थोड़ी सी अनिश्चितता है।

घियातोरी के फल में स्वफेनि (सेपोनीन) और श्लेष्मि (म्यूसीन) की बहुतायत है।

घियातोरी के बीजों में से जो तेल निकलता है उसका रंग एक लेखक ने गहरा या आरक्त बभ्रु (reddish brown), बर्किल ने हरा और इकोनोमिक बाटनी में नीरंग लिखा है।

इस तेल की अम्ल अङ्क उच्च होती है। यह धीरे-धीरे सूखता है, छिलका उतारे हुए बीजों में से चालीस प्रतिशतक तेल निकलता है। इसमें अविलेय स्नेह अम्लों का संरचन यह था—तालिक (पामीटिक) ६.५८, वसिक (स्टीरिक) ७.३५, आर्तसिक (लीनोलिक) ४२.५८ और अम्लिक (ओलीक) ४०'४६ प्रतिशतक।

गुण

घियातोरी [१]—शीतल, मधुर तथा तिक्त है। भूख को उत्तेजित करती है। चरक और धन्वन्तरि ने विष विकार, वायुगोला, पेट के रोग और खांसी में, कफ स्थान में स्थित

---

१. (क) गरे गुल्मोदरे कासे वाते श्लेष्माशयस्थिते।
कफे च कण्ठ वक्त्रस्थे कफ संचयजेषु च॥
रोगेष्वेषु प्रयोज्यं स्यात् स्थिराश्च गुरवश्च ये। च., क, ४-५।

(ख) धामार्गवो गदेष्विष्टः स्थिरेषु च महत्सु च।
कासगुल्मोदर गरे वातश्लेष्माशय स्थिते।
कफे च कण्ठवक्त्रस्थे कफ संचयनेषु च। ध. नि., गुडूच्यादि. १, १६०-१६१।

(ग) राजकोशातकी शीता ज्वरघ्नी कफ वातलां॥ म. पा. नि., शाक. ७, २०।

(घ) राजकोशातकी तिक्ता मधुरा कफवातला।
पित्तघ्नी दीपनी हन्ति कासश्वासज्वरकृमीन्॥ के. दे. नि,., औ. व,. ५३२।

(ङ) राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातला।
पित्तघ्नी दीपनी श्वासज्वर कास कृमिप्रणुत्॥ भा. प्र., शाक., ६८।

वायु की अवस्थाओं में, मुख और गले में स्थित कफ की अवस्थाओं में, कफ के संचित होने के कारण उत्पन्न रोगों में और उन रोगों में जिन में शरीर के अन्दर भारीपन आता है तथा लचक जाती रहती है घियातोरी का प्रयोग करने की संस्तुति की है। इसमें ज्वरहर और कृमिनाशक गुण भी कहे जाते हैं। दमे की अवस्थाओं में इसकी उपयोगिता प्रतिपादित की जाती है। मदनपाल, कैयदेव और भावमिश्र ने इसे कफ वात कारक बताया है। पित्तनाशक गुण भी इसमें स्वीकार किया जाता है।

महाकोशातकी[1]—मधुर, स्निग्ध भारी वृष्य और अनुलोमक है। बुखारों के बाद इसे देना हितकर कहा गया है। वायु, पित्त और कफ तीनों दोषों को नष्ट करती है। खून बहने (रक्त पित्त) की अवस्थाओं में इसे देते है। कृमिहर है, जख्मों को भरती है। नरहरि पंडित ने इसे वायु उत्पन्न करने वाली और अफारा करने वाली बताया है। कैयदेव इसको कफ पैदा करने वाली मानते हैं।

भोजन में उपयोग

मलयेशिया में बाल पत्र खाये जाते हैं परन्तु उनकी अच्छी सब्जी नहीं बनती क्योंकि वे स्वादहीन होते हैं। अनामी लोग नरफूलों तथा पुष्पकलिकाओं को खाते हैं।

तात्व-वाहन्य पूलों (Fibro vascular bundles) के कठोर होने के पूर्व और रेचक पदार्थ के प्रकट होने से पूर्व फल भक्ष्य रहता है। रेचक पदार्थ पकने के साथ पैदा होता है। बाजार में प्रायः जिस अवस्था के फल बिकने आते हैं वे कुछ रेचक हो जाते हैं परन्तु इतने अधिक नहीं कि उनकी सब्जी अच्छी न बने। इसलिये, वे लोग जिनकी आँते शिथिल रहती हैं तोरी के बालफलों की ही सब्जी बनायें तो अच्छा होगा। सामान्यतया, घियातोरी और धारतोरी दोनों जातियों के बालफल जब चार इंच से बड़े न हों सब्जी के लिये अच्छे रहते हैं।

---

१. (क) अन्या स्वादुस्त्रिदोषघ्नी ज्वरस्यान्ते हिता स्मृता।
घ. नि., गुडूच्यादि. १, १६०।

(ख) हस्तिकोशातकी स्निग्धा मधुरा ध्मान वातकृत।
वृष्या कृमिहरी चैव व्रणसंरोपणी च सा॥
रा. नि., मूलकादि. ७, २८५।

(ग) महाकोशातकी स्निग्धा मिष्टा पित्ता निलापहा।
म. पा. नि., शाक. ७, २१।

(घ) हस्तिघोषा सरा स्निग्धा मधुरा श्लेष्मला गुरुः।
के. दे. नि., ओ. व., ५३३।

(ङ) महाकोशातकी स्निग्धा रक्त पित्ता निलापहा॥
भा. प्र. नि., शाक., ६६।

घियातोरी के बालफलों को काटकर सुखा लेते हैं और जब मौसम नहीं होता तो इनकी सब्जी बनाते हैं।

इतिहास

मिश्र में वेजलिंग (Vesling) के शताब्दियों पुराने अभिलेखों में जिनका वर्णन मिलता है वह लूफा छिद्रिष्ट (स्पंज) यही है। जालों से बनी छिद्रिष्ट जैसी इस रचना को चरक ने महाजालिनी लिखा है। घियातोरी के संस्कृत पर्याय धामार्गव नाम से चरक ने कल्पस्थान में एक अलग अध्याय लिखा है जिन में इसके विस्तृत भेषजीय उपयोग दिये हैं[1]।

काव्यों में

द्वारिका से चलकर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने इन्द्रप्रस्थ जा रहे हैं। रास्ते में कोई गांव पड़ता है। कंटीली बाढ़ों पर छायी हुई तोरी की बेलों पर फूलों के गुच्छे उन्मुख होकर झांक रहे हैं। उन के पीछे खड़ी गांव की बहुयें ऊपर हो-हो कर कृष्ण की झांकी ले रही हैं। उन बहुओं के मुख तोरी के खिले हुए फूलों के समान कान्तिवान् हैं।[2] चटकीले पीले रंग के फूल सरदियों में तोरी की बेलों पर खूब छाये रहते हैं[2]। तोर की एक किस्म घियातोरी में फूलों में सुनहरी आभा होती है, ये फूल होते भी चटकीले हैं, परन्तु दूसरी किस्म की धारतोरी में फूलों का रंग फीका पीला या बासन्ती होता है। इस रंग में वह शोखी नहीं होती। माघ के शिशुपाल बध की ग्रामवधुओं के मुखों की क्रान्ति से होड़ करने वाले पुष्पगन्ध तो घियातोरी के ही हैं, धारतोरी के सात्विक और सौम्य वर्ण फूल नहीं।

योगवाशिष्ठ में कवि ने एक गांव को तोरी की बेलों द्वारा अच्छे कलापूर्ण ढंग से सजाया है। झरोखों और खिड़कियों में घुस कर तोरी की बेलें मकानों की बैठकों में छा गई हैं। आंगनों में ये बेलें बिखरी पड़ी हैं। लम्बी डण्डियों पर खिले हुए फूल ऐसे लगते हैं जैसे कि गिट्टे तक फूलों के ढेर पड़े हों। एक सुन्दर कालीन से इनकी तुलना की जा सकती है। फूलोंकी पुष्परज को लिये हुए हवा बह रही है इन सब से यह गांव वन देवताओं का नगर दीखता है[3]।

---

१. अथातो धामार्गव कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥
च., क. ४, १-२।

२. कोशातकी पुष्पगुलुच्छकान्तिभिमुखैः विनिद्रोल्वणबाणचक्षुषैः।
ग्रामीणवध्वः तमलक्षिता जनैश्चिरं वृतीनामुपरि व्यलोकयन् ॥
शिशुपाल बध, सर्ग ११, ३७।

३. वातायनागतलतावृतसौधकोशकोषातकीकुसुम केसर माहरद्भिः।
आगुल्फकीर्ण मुकुलाजिर एष वाते ग्रामो विभाति नगरं वनदेवतानाम् ॥
योगवाशिष्ठ, निर्वाण प्रकरण, स ११४

तोरी की बेल खूब फैलती है। आप के घर के साथ जमीन का छोटा सा टुकड़ा है तो बरसात के आरम्भ होते ही किसी कोने में तोरी का एक बीज गाड़ दीजिये। एक ही बेल फैलती हुई मकान की दीवार, छत और बगीचे की बाढ़ पर खूब फैल जायगी। फूलों की शोभा तो है ही, फलती भी इतनी है कि आप के पास पड़ोस के परिवार भी मजे में सब्जी का आनन्द लेंगें।

उपयोग

धारतोरी की तुलना में घियातोरी चीन में पन्सारियों के पास अधिक मिल जाती है, क्योंकि इसका उपयोग छिद्रिष्ठ (स्पंज) के रूप में विशेष होता है। ये फल एक से दो दो फीट तक पहुँच जाते हैं। कुछ विद्वानों ने लिखा है कि गरम देशों में कुछ किस्मों के फल नौ फीट तक लम्बे पहुँच जाते हैं। मैंने इस से एक-तिहाई लम्बाई के फल भी नहीं देखे।

जापान तोरी-छिद्रिष्ठों (Luffa sponges) को बड़े पैमाने पर निर्यात करता है। माँग पूरी करने के लिये वह खेतों में बेलों को बाँसों की मचानों पर चढ़ाता है। जावा में भी तोरी-छिद्रिष्ठों के उत्पादन के परीक्षण हुए हैं।

जब घियातोरी पक जाती है तो तान्तव-वाहिन्य-पूलों (fibro-vascular bundles) का जाल, जो फल का कंकाल है, कठोर पड़ जाता है। पूर्ण पक्व फल छने पाश का बना हुआ छिद्रिष्ठ (स्पंज) लगता है। बीच का नरम गूदा सूख कर निकल गया होता है।

व्यापार में सूखी घियातोरी का उपयोग बहुत अधिक है। आघात प्रचूषकों (shock absorber) के रूप में, मेजों की चटाइयों के रूप में, स्लीपरों के तलवों के निर्माण में तथा भंगुर पदार्थों के संवेष्टन के लिये इसे बरतते हैं। तकियों, गद्दों और काठियों में भरने के लिये भी इसे काम में लाते हैं। गरमी का दुर्भेद्य होने का गुण इस में विद्यमान होने से गरम देशों में बरते जाने वाले शिरस्त्राणों (hemlets) के निर्माण के लिये इसकी विशेष उपादेयता है। अन्य चीजों के साथ मिला कर इसे चटाइयों, टोकरियों, चप्पलों और खिलौनों को बनाने में उपयोग करते हैं। देहरादून की वन अनुसन्धानशाला के संग्रहालयों में गिरिवनों के निदर्शनों (models) में इस का उपयोग होता है।

बूटों के तल्लों में त्वचा (कौर्क) के प्रतिनिधि रूप में तोरी के छिद्रिष्ठ (स्पंज) रखे जा सकते हैं। युद्ध सम्बन्धी सामग्री के उपयोग में भी यह काम आने लगा है। वाष्प पोतों (steam-ships) के लिये इसके अत्युत्तम तैल पाव (oil filters) बनते हैं। युद्ध के दिनों में पानी के जहाजों के परिधान (outfitting) में प्रयोग के लिये इनकी मांग अत्यधिक बढ़ गई थी।

एड़ियों को साफ करने के लिये झावे के रूप में, रसोई के बरतनों को मांजने के सूचे के रूप में इसके उपयोग भारत में सुविदित हैं।

मात्रा

बीजों की गिरियां—वमन के लिये २० से ३० ग्रेन। शामन और कफ निस्सारण के लिये ५ से १० ग्रेन।

चिकित्सा में उपयोग

घियातोरी का पका फल जला कर पीस लिया जाता है और चीन में यह अनेक रोगों में बरता जाता है। रेशों में भी चिकित्सा गुण कहे जाते हैं। अफ्रीका में बीजों का तेल चिकित्सा में काम आता है।

चरक बताते हैं कि कोमल पत्तों के रस को सुखा कर गोलियां बना लें। इन्हें कचनार, मुलहट्ठी आदि के काढ़ों के साथ विविध रोगों में खाना चाहिये।[१]

घियातोरी के पत्ते त्वग्रोगों में काम आते हैं। बेल और जड़ परा पराक्रमी संक्रमणों के लिये उपयोगी हैं।

वृषण कोप (Orchitis) में पत्ते काम आते हैं।

सड़ते दांतों और आपीनस (ozoena) के लिये बेल और जड़ उपयोगी हैं।

भारत में पत्तों का रस सर्पदंश में देते हैं। कहते हैं कि उलटियां लाकर यह कुछ लाभ करता है।

चरक के अनुसार धनियां और तेजबल के यूष के साथ घियातोरी का कल्क खिलाने से सब प्रकार के विष विकार नष्ट हो जाते हैं।[२]

संपूर्ण बीज नामक और तीव्र विरेचक हैं।

वाट (१८६१) के अनुसार पेचिश में पत्तों का रस दे सकते है।

कम्बोडिया में फल अधिकतर पेशाब लाने के लिये बरता जाता है।

हिन्दचीन में फल दुग्ध स्राव को बढ़ाने के लिये दिया जाता है।

जावा में पत्तों का रस रुद्धार्तव (amenorhoea) में दिया जाता है।

गायना में बालफल गांठों, कच्चे फोड़ों और अर्बुदों (Tumors) पर सेंक कर बांधे जाते हैं।

---

(१) प्रवालस्वरसं शुष्कं कृत्वा च गुलिकाः पृथक्।
कोविदारादिभिः पेयाः कषाये मधुकस्य च ॥
च., क. ४, ६।

(२) धान्य तुम्बु रुयेषण कल्कः सर्व विषापहः ॥
च., क. ४, १५।

अकादमीशियन प्रो० जारोस्लाव हेरोवस्की

डा० रमेशचन्द्र कपूर, प्रयाग विश्वविद्यालय

सन् १९५९ का रसायन का नोबेल पुरस्कार जेकोस्लोवेकिया के रसायनज्ञ डा० जारोस्लाव हेरोवस्की को पोलैरोग्राफी पर उनके मौलिक कार्य के हेतु प्रदान किया गया। गत ३५ वर्षों में पोलैरोग्राफी ने यांत्रिक विश्लेषण के क्षेत्र में अपना प्रमुख स्थान बना लिया है। विश्लेषण की इस विशेष शाखा के जन्मदाता डा० जारोस्लाव हेरोवस्की हैं। इस शाखा के प्रथम दशक का विकास आपके उन प्रयोगों के फलस्वरूप हुआ जो आपने जेकोस्लोवेकिया के चार्ल्स विश्वविद्यालय में किये थे।

हेरोवस्की का जन्म प्राहा में २६ दिसम्बर १८९० ई० को हुआ। आप प्रो० लियोपोल्ड हेरोवस्की की पांचवीं सन्तान थे। आपके पिता जेक चार्ल्स फर्डिनंड विश्वविद्यालय में रोमन कानून के प्राध्यापक थे। जीवन के प्रारम्भिक काल से ही जारो-स्लाव की अभिरुचि गणित, भौतिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान की ओर थी। इंग्लैंड के प्राकृतिक विज्ञान के विद्वानों के और विशेषकर के सर विलियम रैमजे के अनुसंधानों ने आप को विशेष आकर्षित किया फलस्वरूप सन् १९१० ई० में आपने लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आपने साधारण भौतिक रसायन के क्षेत्र में सर विलियम रैमजे और विलियम सी० मैक लेविस के, भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में ए० पोर्टर के और गणित के क्षेत्र में एल० एन० जी० फिलन के व्याख्यानों में विशेष रुचि ली। सन् १९१३ ई० में आपने लन्दन विश्वविद्यालय की बी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। इसी वर्ष सर विलियम रैमजे ने अपने पद से अवकाश ग्रहण किया और उनके स्थान पर भौतिक रसायन के प्रो० एफ० जी० डोनन की नियुक्ति हुई। हेरोवस्की ने डोनन के निरीक्षण में विद्युत् रसयान पर अन्वेषण कार्य प्रारम्भ किया। डाक्टर की उपाधि सम्बन्धी निबन्ध की पूर्ति के हेतु आपने तनु पारद संकर (एमैलगम) और केशनलिका विद्युतद्वारों के वैद्युतिक रासायनिक व्यवहारों पर प्रयोग किये।

प्रथम विश्व युद्ध के कारण हेरोवस्की के अनुसंधान कार्य में बाधा पड़ी। सन् १९१४ ई० की ग्रीष्म ऋतु में आप अपने देश पधारे और जनवरी १९१५ ई० में आपको सैनिक सेवा के हेतु पद ग्रहण करना पड़ा। यहाँ अपने अवकाश के समय में आपने "अल्यूमिनियम की वैद्युत्-बन्धुता" पर अनुसंधान-निबन्ध प्रस्तुत किया और उसे प्राहा विश्वविद्यालय की दार्शनिक फैकल्टी को डाक्टरेट की उपाधि के लिये भेजा। यहाँ से आपको सितम्बर १९१८ ई० में पी-एच० डी-आर० की उपाधि मिली। इस अवसर पर हुई इनकी मौखिक परीक्षा ने इनके जीवन के अन्वेषण कार्य को नवीन दिशा प्रदान

की। इनके परीक्षक बोहुमिल कुकेरा (Bohumil Kucera) ने जो प्रायौगिक भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर थे उनसे पारद की वैद्युतिक केशनलिका पर प्रश्न पूछा। हेरोवस्की को अधःपतित पारद विद्युदग्र विधि से पारद के वैद्युत् केशनलिकी परावलय के परिमापन के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान था। प्रो० कुकेरा ने तर्क करते समय कुछ असंगत प्रभावों का विवरण दिया और बताया कि एक भौतिक रसायनज्ञ ही इन असंगत प्रभावों का स्पष्टीकरण कर सकता है। उन्होंने हेरोवस्की को ध्रुवीयणकृत पारद के पृष्टतनाव पर अनुसंधान कार्य करते रहने का परामर्श दिया और उन्हें अधःपतित पारद विद्युदग्र बनाना सिखाया और इस विषय से सम्बन्धित प्रकाशनों का भी परिचय दिया। इस प्रकार से हेरोवस्की ने अधःपतित पारद विद्युदग्र पर कार्य प्रारम्भ किया। सन् १९१९ ई० में आपने डी० आई० मेण्डलीव के अभिन्न मित्र प्रो० बोहुस्लाव ब्रानर के सहयोगी के रूप में इन्स्टीट्यूट आफ एनालिटिकल केमिस्ट्री में अपना विश्वविद्यालय का कार्य प्रारम्भ किया। सन् १९२० ई० में आप इसी विश्वविद्यालय में भौतिक रसायन में प्रथम प्राध्यापक नियुक्त हुये। सन् १९२१ में आपने लन्दन विश्वविद्यालय के लिये डी० एस-सी० की उपाधि के हेतु अनुसन्धान निवन्ध प्रस्तुत किया। यह उपाधि उन्हें इसी वर्ष प्राप्त हो गई। प्रो० ब्रानर के प्रयत्नों के फलस्वरूप सन १९२२ ई० में ये भौतिक रसायन के एसोशियेट प्रोफेसर और सन् १९२६ में इसी विभाग के प्रोफेसर बने।

जब हेरोवस्की ने अधःपतित भार से कुछ धात्वीय आयनों के विच्छेदन-वोल्टेज का परिमापन किया तब विद्युत रसायन के क्षेत्र में एक नवीन विधि का श्रीगणेश हुआ। अपने परिणामों की प्रामाणिकता पर पूर्ण सन्तुष्ट न होने के कारण आपने अधःपतित पारद विद्युदग्र में बहने वाली विद्युत् धारा का भी साथ ही साथ परिमापन किया। इसके लिये आपने एक संवेदनशील दर्पण-गेलवेनोमापी का उपयोग किया। इन विद्युत्धारा और वोल्टेज के ग्राफों से स्पष्ट हो गया कि इस विधि से विश्लेषण की प्रक्रिया शीघ्र सम्पन्न हो जाती है। उस समय से हेरोवस्की तथा अन्य लोग अनेक प्रकार के अनुसंधान कार्यों में इसका प्रयोग कर रहे हैं। हेरोवस्की ने अब इस नई विधि के विकास की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। नवम्बर १९२३ ई० की लन्दन की "फैराडे सोसाइटी" की बैठक में प्रथम वार इस विषय पर विचार-विनिमय हुआ। हेरोवस्की ने इसमें दो वार्तायें प्रस्तुत कीं।

सन् १९२५ ई० में हेरोवस्की ने एक युवक जापानी सहयोगी मुसाजो शिकाता की सहायता से एक स्वयं-चालित यंत्र का निर्माण किया जो अधःपतित पारद विद्युदग्र विधि से विद्युत्धारा और वोल्टेज के ग्राफ स्वयम् बनाता जाता है। इस यन्त्र को "पोलैरोग्राफ" कहते हैं। इस विधि से वे ग्राफ जो लगभग दो घण्टे में तैयार होते थे अब कुछ मिनट में बनायें जा सकते हैं।

सन् १९२६ ई० में हेरोवस्की ने पेरिस में राकफेलर के सदस्य के स्थान पर पांच मास काय किया। सन् १९२८ ई० में हेरोवस्की और उनके मित्र प्रो० एमिल वोटो सेक

(Emil Votocek) ने "जेकोस्लोवाक रासायनिक संज्ञापनों का संग्रह" नाम की पत्रिका निकाली और सन् १९४७ ई० तक दोनों ने इस का सम्पादन किया। इस आंग्ल-फ्रेंच पत्रिका में हेरोवस्की के मत के प्रतिपादन करने वालों के अधिकांश लेख प्रकाशित हुये। सन् १९२९ ई० के बाद का जेकोस्लेवाकिया में किया गया कार्य इस पत्रिका में प्रकाशित हुआ किन्तु इस विज्ञापन के पश्चात् भी सन् १९३२ ई० के पश्चात् ही पोलेरोग्राफी को विश्व में मान्यता प्राप्त हो सकी। इसके दो कारण थे। पहला कारण था हेरोवस्की की सन् १९३३ ई० में "कारनेगी विज़िटिंग प्राध्यापक" पद की प्राप्ति, उनका छः मास तक बर्कले में केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में, स्टेनफोर्ड यूनीवर्सिटी में, केलिफोर्निया इन्स्टीटयूट आफ टेक्नालाजी तथा मध्य तथा पूर्वी राज्यों के विभिन्न विश्वविद्यालयों और विभिन्न स्थानों में व्याख्यान देना और इस प्रकार से पोलेरोग्राफी की विधि का नई दुनियाँ को परिचय देना। और दूसरा कारण था लिपजिग यूनीवर्सिटी के प्रमुख वैश्लेषिक रसायनज्ञ प्रो० डब्ल्यू० बोटजर (W. Bottger) का अप्रेल १९३३ ई० में हेरोवस्की की प्रयोगशाला में आगमन, प्रो० वोटजर द्वारा वैश्लेषिक रसायन में इस विधि की उपयोगिता की स्वीकृति और प्रो० बोटजर के "फिजीकलिश्च मेथोडेन डर एनॉलिटिश्च शिमी" (Physikalische Methoden der Analytischen Chemie) के दूसरे भाग में हेरोवस्की के लिखे हुये पोलेरोग्राफी, के विवरण का प्रकाशन। वोटजर की पुस्तक सन् १९३६ ई० में प्रकाशित हुई। इस प्रकार से हेरोवस्की की पोलेरोग्राफी विधि को सर्वमान्यता प्राप्त हुई।

सन् १९३४ ई० में मेण्डलीव के शताब्दी समारोह के अवसर पर हेरोवस्की को लेनिनग्रेड के रेडियम इन्स्टीट्यूट में पोलेरोग्राफी पर व्याख्यान देने का निमंत्रण मिला। इस व्याख्यान के परिणामस्वरूप रूस में पोलेरोग्राफी के अनुसन्धान-कार्यों में गति आई।

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय जर्मनों ने हेरोवस्की की प्रयोगशाला को उनके कार्य के लिये छोड़ दिया और निर्बाध रूप से उनके प्रयोग चलते रहे। इस अवधि में इन्होंने जर्मन में पोलेरोग्राफी पर अपना विशाल पाठ्यग्रन्थ पूर्ण किया। वे इसी बीच में दोललेखी (Oscillograph) अनुसंधान भी करते रहे।

युद्ध के अन्त में हेरोवस्की ने सन् १९४६ ई० में ब्रिटिश काउन्सिल के अतिथि के रूप में इंगलैंड में व्याख्यान दिये। सन् १९४७ ई० में इन्होंने केमिकल सोसइटी, लन्दन के शताब्दी समारोह में भाग लिया और इसी वर्ष स्वेडन और डेनमार्क में व्याख्यान भी दिये। सन् १९५० इ० में प्रो० हेरोवस्की प्राहा में स्थापित पोलेरोग्राफिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट के निर्देशक नियुक्त हुये। वे आज भी चार्ल्स विश्वविद्यालय के अवैतनिक प्रोफेसर हैं और अब भी विज्ञान विभाग में व्याख्यान देते हैं या प्रयोगात्मक कक्षाओं का निरीक्षण करते हैं। फिर नये पोलेरोग्राफिक इन्स्टीच्यूट में कार्य करते हैं। हेरोवस्की की संस्था में न्यूटन का यह आदर्श वाक्य प्रदर्शित है :—

"मनुष्य को या तो किसी नवीन वस्तु का निर्माण नहीं करना चाहिये और या फिर उसके समर्थन की प्राप्ति के लिये प्राणपण से जुट जाना चाहिये।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि हेरोवस्की को अपनी प्रयोगशाला से इतना मोह क्यों है।

अपने कार्य के प्रारम्भ से ही प्रो० हेरोवस्की को अपने शिष्यों से भी उतना ही स्नेह रहा है जितना अपनी पोलेरोग्राफीय विधि से। इस विधि के लिये यह बात बड़ी प्रभावशाली सिद्ध हुई है। इनके भक्त और उत्साही विद्यार्थियों ने विश्व भर में पोलेरोग्राफी का प्रचार कर दिया है। हेरोवस्की का दृढ़ विश्वास है कि उनके शिष्यों के विना पोलेरोग्राफी सफल न हुई होती। उनकी प्रयोगशाला में केवल जेकोस्लोविया के ही विद्यार्थी कार्य नहीं करते अपितु विश्व के विभिन्न भागों में से विद्यार्थी एकत्र होते हैं। अपने शिष्यों की समस्याओं पर वे अपनी स्वयम् की समस्याओं के समान ही ध्यान देते हैं किन्तु जब अनुसन्धान निबन्ध प्रकाशित होते हैं तब उनका नाम शायद ही कहीं आवे। जब उनका नाम किसी ऐसे निबन्ध के साथ छपता है तब ५० प्रतिशत से अधिक कार्य उन्हीं के द्वारा सम्पन्न किया होता है। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि प्रो० हेरोवस्की को विद्यार्थियों के अपने प्रति लगाव पर जो अभिमान है वह यथार्थ ही है।

(पृष्ठ १७१ का शेष)

जो इतनी कठिनाइयों से न घबराया भला इस हानि का उस पर क्या प्रभाव पड़ता? शीघ्र ही वह पहले से अधिक लगन से अपने कार्य में जुट गए। पहले से उत्तम राकेट बनना अवश्यम्भावी था ही। वह राकेट-कपाटों को एक रस्से से बाँध देते थे। जब राकेट छोड़ना होता था तो उसे कसकर घसीट लेते थे। उड़ते हुए राकेट का अध्ययन करने के लिए दूरबीन और कोण नापने के लिए टूटी एलार्म घड़ी से निर्मित यंत्र के अतिरिक्त उनके पास कोई भी उपकरण न था। पर उनका कहना था कि "जब मनुष्य पृथ्वी पर आया, उस समय भी तो उसके पास कुछ नहीं था। किन्तु आज उसने अपनी ही नहीं पूरे संसार की कायापलट दी है तो फिर मैं एक राकेट क्यों नहीं बना सकता?" और वह अपने लक्ष्य में अन्ततः सफल भी हुए। कितना अच्छा होता यदि आज 'विज्ञान' के प्रत्येक विद्यार्थी में यह भावना भर जाती। गाडर्ड के समस्त यंत्र और उपकरण गौण थे। मन की इच्छा और आत्म विश्वास उनके लिए मुख्य थे। द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिकन जल सेना के लिए राकेट अनुसंधान करते हुए १९४५ में उन्होंने परलोक प्रयाण किया।

अपने पीछे वह ऐसा सत्य छोड़ गए जिसके आधार पर आधुनिक राकेटों और भविष्य के अंतरिक्ष-यानों का निर्माण सम्भव हो सका। परन्तु 'राकेट की कहानी' इतनी सरल नहीं है कि एक दो व्यक्तियों के बलिदान से ही पूर्ण हो जाए। जिन लोगों के नाम पहले लिए जा चुके हैं, उनके अतिरिक्त इसमें जेम्स एच० वाइल्ड, जी० एडवर्ड पेंडारी, स्टिनहाफ, कुमर्स डोर्फ इत्यादि कितने ही ज्ञात तथा अज्ञात वैज्ञानिकों के अतुल साहस तथा कर्मठता की कहानी छिपी हुई है। आज २० वीं शताब्दी में राकेट का स्वरूप बहुत अधिक परिमार्जित हो चुका है। पर उसके आविष्कार की यह कहानी आज भी अपने स्थान पर सुरक्षित है।

पाठकीय मंच

राकेट का आविष्कार

दिनेश मोहन श्रीवास्तव, लखनऊ

राकेट शब्द ही कितनी महान आकांक्षा का द्योतक है। अंतरिक्ष यात्रा—कितनी सुखद यात्रा होगी वह। पर क्या कभी आपने इसके पीछे छिपी हुई वह कहानी जानने की चेष्टा की है जो वर्षों उपरान्त, यह आविष्कार प्रदान कर सकी? यही है राकेट के आविष्कार की कहानी!

भारत और राकेट

क्या आप जानते हैं कि राकेट का मूल रूप अग्निवाण था? वही अग्नि वाण जो साधारण शस्त्र के रूप में महाभारत में प्रयोग किए गए थे। भारतवर्ष का अस्त्र-शस्त्र विज्ञान तो अब भी रहस्य ही बना हुआ है। आज भी विज्ञान आई० आर० बी० एम० और आर० सी० बी० एम० बना लेने पर भी उस 'सुदर्शन चक्र' को नहीं पा सका है जिसके फेंकने के लिए किसी मोर्चे की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। आधुनिक प्रक्षेपणास्त्र के लिए तो जब तक एक देश मोर्चा बनाएगा तब तक दूसरा उसको नष्ट करने के लिए भी मोर्चा बना लेगा। 'अशोक की लाट' आज भी वैज्ञानिकों के लिए खुली चुनौती है। आज का विज्ञान अब भी ऐसा इस्पात नहीं बना पाया है जिसे २५०० वर्षों के आँधी और तूफान तनिक भी विचलित न कर सके। पर सत्य से आँख मूँदने वालों को क्या कहा जाय।

चीन में राकेट

चीनियों ने भी सबसे पहले इसका अग्निवाणों के रूप में प्रयोग किया था। सबसे पहले अग्नि वाणों का प्रयोग उन्होंने १६३२ ई० में काय फांग फू के शहर को मंगोलों के आक्रमण से बचाने के लिए किया था। हो सकता है कि इनका आविष्कार इससे भी पहले हो चुका हो परन्तु लोग इनकी भंयकर शक्ति के कारण भय खाते थे और इसके अज्ञात आविष्कारक को सनकी समझते थे। इसीलिए इसका उपयोग इससे पहले कभी नहीं हुआ था।

जो कुछ भी हो उस समय उन्हें आधुनिक राकेट उड़ान का सिद्धान्त तो ज्ञात नहीं था पर इतना वे निश्चित रूप से जानते थे कि उनके अग्निवाण साधारण वाणों से अधिक दूर तक जाएगें और अपने लक्ष्य के पास पहुँच कर भयानक अग्नि उत्पन्न कर उन्हें भस्मकर देंगे। कुछ दिनों पश्चात् उन लोगों ने एक 'काले चूर्ण' का निर्माण किया,

क्योंकि यह ताप का अच्छा उत्पादक था इसलिये उन्होंने इसे अपने वाणों में उपयोग किया। वाणों की शक्ति कई गुनी बढ़ गयी थी और इस प्रकार इस चूर्ण के साथ एक राकेट पैदा हुआ, जो सभी ताप-इञ्जनों से पहले उत्पन्न हुआ था। परन्तु इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। सबने इसे एक साधारण-सा आविष्कार समझ लिया।

काश! उन्हें ज्ञात होता कि उन्हें अंतरिक्ष-अभियान की कुञ्जी मिल गयी है। वह तो आतिशबाजी के पटाखों तथा साधारण शस्त्रों के रूप में ही इसका उपयोग करके संतुष्ट थे। सच बात तो यह है कि चीनियों को उस समय तक दूसरे लोकों के सम्बन्ध में कुछ पता ही न था जब तक कि 'कापरनिकस' और 'गैलेलियो' ने इस वास्तविकता का पता नहीं लगा लिया।

पश्चिम के राष्ट्र

यों तो राकेट सिद्धान्त योरोपमें १२ वीं शताब्दी में ही पहुँच गया था, जबकि बारूद का आविष्कार हुआ था तथापि वर्तमान रूप में इसे लाने का श्रेय अमेरिका के राबर्ट हचिंग्स गाडर्ड, रूस के प्रो० कान्सटैन्टिन,|जियोलोक्वस्की तथा जर्मनी के प्रो० हर्मेन ओबर्थ को है। हम आपके सामने इनमें से एक व्यक्ति की जीवनी रख रहे हैं, जिनका इस आविष्कार में बहुत बड़ा हाथ है। वह थे, अमेरिका के प्रो० गाडर्ड।

योरप में भी इसका उपयोग आतिशबाजियों तक ही सीमित रहा, जब तक कि यह नहीं खोज लिया गया कि वे तोप के गोले से अधिक दूर और अधिक यथार्थता से जा सकते हैं। उसके पश्चात् यह अपने समय में प्रचलित सभी आग्नेय शस्त्रों से अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए। फिर तो राकेट सेनाओं की बाढ़ सी आ गयी। कोई भी शक्तिशाली सेना ऐसी न बची जिसके पास राकेट विभाग न हों। परन्तु कुछ दिनों पश्चात् बन्दूकों का प्रयोग बढ़ता ही गया और धीरे धीरे उन्होंने अपनी लक्ष्य भेदन की सफलता तथा प्रक्षेपण दूरी की वृद्धि करके राकेट की बढ़ती हुई प्रगति को सहसा रोक दिया। १६ वीं शताब्दी के मध्य तक तो सेनाओं में राकेट-सेना स्थिर रही। परन्तु बाद में 'विलियम कांग्रलिव' जैसे कर्मठ वैज्ञानिकों के सुधार के अनेक प्रयत्नों के उपरान्त भी राकेट अपने प्राचीन स्थान पर स्थिर न रह सका। यहाँ तक कि १९ वीं शताब्दी के अंत होते होते राकेट का प्रयोग बहुत ही सीमित रह गया।

प्रो० गाडर्ड

अब राकेट का प्रयोग इने गिने लोगों के हाथों में ही रह गया था। ऐसे समय में मैसाचुसेट्स में एक लड़का उत्पन्न हुआ जिसका नाम राबर्ट हचिंग्स गाडर्ड था वह कल्पनाओं के स्वप्न देखा करता था। उस समय के लोगों का स्वप्न था—'चिड़ियों की भांति मुक्त आकाश में उड़ना।'

बालक गाडर्ड सेब के पेड़ पर चढ़कर घंटों आकाश की ओर देखा करता। वह सोचा करता "—काश! मैं भी आकाश में इसी प्रकार उड़ पाता।" एक दिन उसके

मस्तिष्क में एक विचार आया और उसने निश्चित कर लिया कि अपने शेष जीवन में उसे क्या करना है। उसने सोच लिया कि वह आकाश में एक वस्तु इतनी ऊँचाई तक भेजेगा, जितनी ऊँचाई पर आज तक कोई चीज न गयी हो—और उसने यह कर भी दिखाया।

सन् १८६० में गाडर्ड ने सर्वप्रथम राकेट को 'अंतरिक्ष-अभियान' का यंत्र बनाने की चेष्टा की थी। सर्वप्रथम उसने ठोस विस्फोटक चूर्ण के साथ कार्य करना प्रारम्भ किया। उनके समय में "परमाणु शक्ति" बिल्कुल ही नयी वस्तु थी। प्रयोगात्मक रूप से अभी तक परमाणु-शक्ति-चालित राकेट नहीं बन सकते थे। फिर भी उस समय ही गाडर्ड ने ऐसे राकेट की रूप-रेखा तैयार कर ली थी जो आज परमाणु-शक्ति से चालित है।

१६२० में उन्होंने सर्वप्रथम ठोस के स्थान पर द्रव रासायनिक विस्फोटकों का उपयोग किया। वे पहले से काफी ऊंचे गए क्योंकि रासायनिक द्रव के अणुओं में गुप्त शक्ति अधिक होती है और वे दहन-कक्ष में सरलता से भरे जा सकते हैं।

इसी समय कुछ अन्य लोग भी राकेट का उपयोग वैज्ञानिक शोध के लिए कर रहे थे। राकेट-उड्डयन की सबसे पहली गणना 'हर्मेन ओबर्थ ने १६२३ में की थी जो जर्मनी के म्यूनिच नगर से प्रकाशित हुई थी।

१६ मार्च १६२६ को 'अंतरिक्ष अभियान' के क्षेत्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। डा० गाडर्ड ने रासायनिक द्रव उपयोग करने वाला विश्व का सर्वप्रथम राकेट छोड़ा। यह प्रयोग उन्होंने अपने जन्म स्थान के एक खेत में किया था। पर अच्छे कार्य में तो सदैव विघ्न आते ही हैं। स्थानीय अग्नि-संरक्षकों ने उन्हें बलपूर्वक, वहाँ से बाहर निकाल दिया। अग्नि-संरक्षकों का कहना था कि गाडर्ड साहब के प्रयोग जन-साधारण के लिए भयानक एवं कष्टदायक सिद्ध होंगे।

समाचारपत्रों ने जी भरकर महत्वाकांक्षी गाडर्ड की खिल्ली उड़ायी। उनके साथी ही उनको समझ न सके। मैसाचुसेट्स में उनके पत्रों का प्रकाशन भी बन्द कर दिया गया। पर इन सब कठिनाइयों से क्या एक सच्चे वैज्ञानिक का कार्य रुक सकता था?

जब किसी पुस्तक का प्रकाशन बन्द कर दिया जाता है अथवा किसी कार्य पर रोक लगा दी जाती है तो लोग उसके प्रति और अधिक उत्सुक हो जाते हैं। इसी प्रकार की उत्सुकता ने कर्नल लिंडबर्ग को डा० गाडर्ड से मिला दिया और उन्हें एक अनमोल साथी मिल गया। कर्नल साहब ने किसी प्रकार कुछ रुपया एकत्र किया जिसकी गाडर्ड को इस समय बड़ी आवश्यकता थी। दोनों १६३० में न्यू मैक्सिको में आ गए। १६४१ तक वे चुपचाप कार्य करते रहे। उनकी इस एकांत साधना का किसी को भी पता न चला। पर उनकी इस साधना के ही कारण आज हम चन्द्रमा और मंगल ग्रह की यात्रा के सम्बन्ध में विचारने योग्य हो सके हैं। इस कार्य पर लगभग १८००० डालर का व्यय उन्होंने किया। दुर्भाग्य से एक बार एक राकेट एक वायुयान से टकराकर टूट गया। पर

(शेष १६८ पृष्ठ पर)

पानी

सोने लाल द्विवेदी,

पानी क्या है ? प्रश्न साधारण और सरल है; क्योंकि हम पानी प्रतिदिन देखते हैं, प्रयोग करते हैं और सम्भवत: उसका अपव्यय भी करते हैं। लेकिन क्या तुम्हें यह विश्वास है कि पानी के बारे में तुम सब कुछ जानते हो ? ऐसा कहने से शायद तुम्हें कुछ सोच विचार करना पड़े।

हम पानी से बने हैं। हमारे शरीर का तीन चौथाई भाग किसी न किसी रूप में पानी द्वारा निर्मित है। वनस्पति क्षेत्र में तो पानी का महत्व और भी अधिक है क्योंकि वृक्षों में पानी का अनुपात तीन चौथाई से भी अधिक होता है। विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक जीवन पानी से उत्पन्न और पोषित हुआ था।

यदि हम यह कहें कि जल ही जीवन है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। सभी जीवित वस्तुओं के लिये, चाहे वे मनुष्य हों, जानवर हों या पौधे हों, पानी आवश्यक है। बिना पानी के जीवन धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है। हमारे कृषि प्रधान देश में पानी का महत्व और भी अधिक है। प्रतिवर्ष जून और जुलाई के महीने में हमारे किसान बादलों की ओर तृषित नेत्रों से देखते हैं। उस समय पानी की प्रत्येक बूँद उसके लिये आशा और विश्वास लेकर आती है। यदि किसी वर्ष वर्षा देर से प्रारम्भ होती है या पानी कम बरसता है तो किसान ही नहीं, प्रत्येक देशवासी चिन्तित हो जाता है। हाँ कभी-कभी अधिक वर्षा से बाढ़ें भी आती हैं जिनसे जन-जीवन को अपार क्षति पहुँचती है। लेकिन पानी फिर भी आवश्यक है क्योंकि उसके बिना जीवन असम्भव है।

पानी कैसे प्राप्त होता है, इस पर भी विचार करना चाहिये। हमें पानी, कुयें तालाबों और नदियों से मिलता है। शहरों में पानी बड़े बड़े तालाबों में भर लेते हैं। फिर इसे साफ करके बड़े-बड़े जल-गृहों में भरते हैं और नलों द्वारा प्रत्येक घर में पहुँचाते हैं। समुद्र भी एक बड़ा जलगृह है। क्या तुम्हें यह मालूम है कि दुनियाँ का $\frac{3}{4}$ भाग पानी से भरा है ? प्रकृति ने हमें पानी का अपार भंडार प्रदान किया है। क्या वह कभी समाप्त हो सकता है ?

वर्षा का पानी कहाँ से और कैसे आता है, यह भी एक रोचक कहनी है। तुमने घर में खौलते हुए पानी को देखा होगा। गर्मी से पानी की भाप बनती है और जब भाप तेजी से निकलती है पानी में तेज गति उत्पन्न होती है। इस क्रिया को हम खौलना कहते हैं। खौलते हुए पानी से सफेद धुआँ सा निकलता है। यही भाप है। खौलने की क्रिया एक विशेष तापक्रम पर होती है लेकिन भाप पानी की सतह से सदैव बना करती है। घर में

गीले कपड़े किस तरह सुखाए जाते हैं, पानी बरसने के बाद फर्श और सड़कें किस तरह सूख जाती हैं यह हम भली प्रकार जानते हैं। समुद्र की सतह से इसी प्रकार भाप बनती रहती है। ऊँचाई पर पहुँच कर यह भाप पानी की नन्हीं-नन्हीं बूँदों में बदल जाती है और छोटे-छोटे बादल बन जाते हैं। हवा के द्वारा यह बादल हमारे घरों के ऊपर आते हैं और पानी प्रदान करते हैं। यही पानी जमीन में सोख जाने के बाद पौधों के काम आता है जिनकी पत्तियों की सतह से पानी फिर भाप बन कर बाहर निकलता है।। लेकिन वर्षा का अधिकांश पानी बह कर फिर समुद्र में पहुँच जाता है।

समुद्र की सतह से उठी हुई भाप का अधिकांश भाग हवा द्वारा ठंडे ध्रुवीय प्रदेशों की ओर पहुँचता है और बर्फ के रूप में जमीन पर आता है। यहाँ से बड़ी-बड़ी हिमशिलायें समुद्र के गर्म भागों की ओर बह जाती हैं और फिर पिघल कर पानी बन जाती हैं।

पानी की लम्बी यात्रा का यह संक्षिप्त वर्णन है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पानी कभी द्रव, (पानी, वर्षा या ओस) कभी गैस (भाप) और कभी ठोस (बर्फ) रूप में मिलता है। इस परिवर्तन का कारण गर्मी और हवा में उपस्थित भाप की मात्रा है गर्मी से पानी भाप बनता है जो ठंड पाकर फिर पानी बन जाती है। पानी को ठंडा करके बर्फ बना सकते हैं, जो ठोस है। बर्फ गर्मी पाकर पिघल जाती है और फिर पानी के रूप में आ जाती है। पानी की दशा-परिवर्तन में हवा में उपस्थित भाप की मात्रा का क्या प्रभाव है, इसे समझने के लिए इस बात पर ध्यान दो कि मई और जून के महीनों में गीले कपड़े कितनी शीघ्रता से सूख जाते हैं और वर्षा ऋतु में ये कितनी देर में सूखते हैं ? गर्मी के दिनों में हवा में भाप की मात्रा कम होती है। दूसरे शब्दों में, इन दिनों हवा प्यासी रहती है अतः गीले कपड़ों का पानी शीघ्र भाप बनकर हवा में मिल जाता है। वर्षा ऋतु में हवा में उपस्थित भाप की मात्रा अधिक होती है इसलिए कपड़े सूखने में देर लगती है। इन दिनों हवा में भाप की अधिक मात्रा लेने की शक्ति नहीं रहती।

पानी को इस लम्बी यात्रा के लिए शक्ति कहां से मिलती है ? सूर्य की गर्मी पानी को भाप में बदल कर हवा में मिला देती है और पानी की रोचक यात्रा का प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार पानी शुद्ध भी हो जाता है क्योंकि पानी में उपस्थित सभी अशुद्धियां पानी में ही घुली रह जाती हैं। वे भाप के साथ नहीं जा सकतीं।. शुद्ध पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन के सम्मिश्रण से प्राप्त होता है। लेकिन यह सम्मिश्रण बिजली की उपस्थिति में ही संभव है। साथ ही हाइड्रोजन और आक्सीजन आयतन के अनुसार २:१ के अनुपात में ही मिलती हैं।

पानी सदैव नीचे की ओर बहता है। न्यूटन ने किस प्रकार पेड़ से टूट कर गिरते हुए सेब के फल को देख कर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का पता लगाया था, यह कहानी कहा तुम्हें भली प्रकार मालूम होगी। पृथ्वी की यह अज्ञात और अदृष्ट आकर्षण शक्ति

[शेष पृष्ठ १८५ पर]

भारतीय ज्योतिष

सोहन लाल

[इस लेख पर पाठक अपने विचार हमारे पास भेजें जिससे हम अगले अंकों में इसे दे सकें—सं०]

ज्योतिष के भेद

वेद के छः अंगों (षट् वेदांगों) में एक ज्योतिष है। यह वेद का नेत्र कहा गया है। ज्योतिष दो प्रकार का है—गणित और फलित।

गणित ज्योतिष में ग्रहों की स्थिति को गणित द्वारा जाना जाता है और फलित ज्योतिष में ग्रह जनित शुभाशुभ फलों का निरूपण किया जाता है। फलित ज्योतिष के दो भेद जातक या होरा और संहिता हैं। जातक या होरा प्राणी के जन्म काल के वश ग्रह जनित शुभाशुभ फल निरूपित करने वाला शास्त्र है। संहिता समय समय पर ग्रहाचार के वश से सर्वव्यापी फल को प्रतिपादित करने वाला शास्त्र है।

गणित ज्योतिष के ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं। सिद्धान्त, तंत्र और करण। सिद्धान्त ग्रन्थों में गणना सृष्टि या कल्प के आरंभ से की जाती है जबकि सभी ग्रह उनके पात और उनके मन्दोच्च तथा वसंत-संपात एक ही स्थान पर थे जो मेषादि (मेषराशि का आदि विन्दु) या अश्विन्यादि (अश्विनी नक्षत्र का आदि विन्दु) कहलाता है। तंत्र ग्रंथों में काल और ग्रह गणना युग (कलि) के आरंभ से होती है जब सप्त ग्रह तो एक ही स्थान मेषादि पर थे पर उनके पात और मन्दोच्च अन्य स्थानों पर थे। युगारंभ से गणना कल्पारंभ की गणना से लघु होने से सुगम है। करण ग्रंथ में गणना किसी भी अभीष्ट शाके (वर्ष) से की जाती है। यह और भी अधिक लघु और सुगम है। करण ग्रंथ में शकारंभ के ग्रहों, पातों तथा मंदोच्चों के स्थान तथा अयनांश दिए रहते हैं। इन्हें ध्रुवक कहते हैं। तबसे इष्ट काल तक की ग्रह गति को ध्रुवक में जोड़ने से इष्टकालिक ग्रह स्थान मिलता है।

सूर्यसिद्धान्त सिद्धान्त ग्रंथ, आर्य भट्टीय तंत्र ग्रंथ और ग्रहलाघव करण ग्रंथ हैं।

ज्योतिष का इतिहास

वेदों में ज्योतिष की चर्चा सूत्र रूप से प्रसंगानुसार मिलती है। ज्योतिष का स्वतंत्र प्राचीन ग्रंथ वेदांग ज्योतिष है जिसमें कुल ४६ श्लोक हैं जिनमें ३६ ऋग् ज्योतिष के और १३ यजु ज्योतिष के है। ऋग् वेदांग ज्योतिष लगध प्रणीत समझा जाता है और यजुर्वेदांग ज्योतिष शेष कृत। दूसरे वेदांग ज्योतिष में यज्ञादि कर्मों के लिए तिथि,पर्वकाल आदि जानने के नियम दिए हुए हैं। वेदांग ज्योतिष का काल निर्णय उसके श्लोक से होता है।

> प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्यचंद्रमसा वुदक।
> सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयो : सदा ॥ यजु, ७। ऋग ६

अर्थात् सूर्य और चंद्र अविष्ठा नक्षत्र के आरंभ में उत्तरायण होता है। सूर्य अश्लेषा नक्षत्र के मध्य में दक्षिणायन होता है।

श्रविष्ठा का आरंभ मकर राशि के २१$\frac{1}{3}$ अंश पर होता है। आजकल सूर्य धनु के ६$\frac{1}{3}$ अंश के लगभग उत्तरायण होता है। इस प्रकार उत्तरायण विन्दु ४७ अंश पीछे हट गया है। अपल विन्दु की गति ७२ वर्षों में एक अंश है अतः वेदांग ज्योतिष का काल अब से ३४०० वर्ष पूर्व का है।

कश्यप के अनुसार अठारह आर्ष (ऋषि प्रणीत) ज्योतिष सिद्धान्त हैं—सूर्य, पितामह (ब्रह्मा), व्यास, वशिष्ठ, अत्रि पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पुलिश, च्यवन, पवन, भृगु और शौनक। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार सूर्य ने मयासुर की तपस्या से प्रसन्न हो सूर्यांश पुरुष के रूप में उसे ग्रहगणित का उपदेश त्रेता युग के आरंभ में दिया। फिर ऋषियों ने मयासुर से वह ज्ञान पाया।

सूर्य अरुण (सूर्य के सारथी) संवाद में दिया है कि "आदि वेदांग रूप, ज्ञान पितामह (ब्रह्मा) को मिला। ब्रह्मा ने अपने पुत्र वशिष्ठ को उसे दिया और वशिष्ठ ने उसे अपने पुत्र पराशर को, जो वशिष्ठ सिद्धान्त है। विष्णु ने उस ज्ञान को हमें (सूर्य को) दिया वही सौर सिद्धान्त नाम से विख्यात हुआ। उस सिद्धान्त को मैंने मय को दिया। मैंने (सूर्य ने) शापग्रस्त हो पवन जाति में जन्म ले रोमक को रोमक सिद्धान्त बतलाया। रोमक ने अपने नगर में उसका प्रचार किया। पुलिश ने निज निर्मित सिद्धान्त को गर्ग आदि ऋषियों को बतलाया। यह पांच प्रकार के प्राचीन गणित हैं।

यही पांच सिद्धान्त—सूर्य, पितामह, वशिष्ठ पौलिश और रोमक-वराहमिहिगिरि के समय में वर्तमान थे जिनके आधार पर उन्होंने अपना पंच सिद्धान्तिका नामक करण ग्रंथ सं० ४२७ शाके में कालपी में लिखा। वर्तमान सिद्धान्तों की शुद्धता अशुद्धता पर उन्होंने कहा है।

पौलिश कृतोऽस्फुटौ सौ तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः
स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूर विभ्रष्टौ ॥

अर्थात् पौलिश और रोमक सिद्धान्त स्पष्ट हैं। सूर्य सिद्धान्त सबसे अधिक स्पष्ट है और शेष (पितामह और वशिष्ठ) सिद्धान्त दूर विभ्रष्ट हैं। पंच सिद्धान्तिका का सूर्य सिद्धान्त वर्तमान सूर्य सिद्धान्त से मेल नहीं खाता। वह प्राचीन सूर्य सिद्धान्त का रूप है।

वराहमिहिगिर ज्योतिष के तीनों स्कंधों, सिद्धान्त—संहिता और जातक के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनके फलित ग्रंथ वृहत संहिता, वृहत जातक और लघुजातक मान्य हैं। बराहमिहिगिरि ने शकाब्द का प्रचार किया।

जातक पर यूनानियों और ताजिक पर अरबों का प्रभाव पड़ा जैसा इनके ग्रंथों में यवन शब्दों की भरमार से प्रकट होता है पर भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष के अप्रभावित रहने से उसमें एक भी यवन शब्द नहीं मिलता।

वराहमिगिरि के समकालीन आर्यभट्ट हुए जिन्होंने सं० ४२३ शाके में कुसुमपुर (पटना) में आर्यभट्टीय नामक प्रथम पौरुष सिद्धान्त ग्रन्थ लिखा पर आर्य सिद्धान्त

पंच सिद्धान्तिका में वर्णित प्राचीन सूर्य सिद्धांत से मेल रखता है। इसे आर्य सिद्धान्त, लघु आर्य सिद्धान्त या प्रथम आर्य सिद्धान्त भी कहते हैं क्योंकि बादमें द्वितीय या महा आर्य सिद्धान्त भी शक सं० ८७५ में लिखा गया। आर्यभट्टीय के चार पद है जिनमें १२० श्लोक हैं। आर्यभट्ट ने युग के भगण दिए है और कलिवर्ष का व्यवहार किया है अत: आर्यभट्टीय तंत्रग्रंथ है। उन्होंने अपने ग्रन्थ का आधार ब्राह्मण सिद्धान्त कहा है। आर्यभट्टीय तंत्र संख्याओं को वर्णों से प्रकट किया गया है जब कि अन्य ग्रन्थों के संख्याओं के लिए समान धर्मी पर्याय नाम में लाए गए हैं। अरबों की अवजद पद्धति भी इसी प्रकार की है। आर्यभट्ट ने सर्व प्रथम पृथ्वी के अक्षभ्रमण को नक्षत्रगति का कारण कहा पर उनका खंडन लल्ल ने अपने ग्रंथ शिष्य धी वृद्धि और श्रीपति ने रत्नमाल में किया। आर्यभट्टीय गणित का प्रचार इस समय दक्षिण के मालावार तामिल देशों में अधिक है। वैष्णव संप्रदायियों में भी व्रत उपन्यास आदि में आर्यभट्टीय गणित का ही प्राधान्य हैं।

शक सं० ५५० में ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त बनाया और शक ५८७ में आर्य सिद्धान्तानुसार खण्ड खाद्यकरण ग्रंथ रचा। अरबों ने इनके अरबी अनुवाद सिंदहिन्द और अलर्कंद नाम से किये। ब्रह्मगुप्त ब्रह्न सिद्धान्त के मूल हैं। इनकी ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के आधार पर बहुत से करण ग्रंथ बने। राजस्थान में ब्रह्म पक्षीय पंचाग चलन में है।

शक सं० १०७२ में भास्कराचार्य ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त को मूल मानकर सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की जिसमें उन्होंने आर्यभट्ट लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि के मतों की आलोचना की। उन्होंने शिरोमणि की वासनाभाष्य नामक टीका भी लिखी। उनकी कविता बड़ी सुन्दर है। उनका लीलावती गणित और बीजगणित अपूर्व है। उनका करण ग्रंथ करण कुतूहल है।

फारसी भाषा में लीलावती का अनुवाद अकवर के राज्य काल में फैजी द्वारा किया गया और बीजगणित का शाहजहाँ के राज्यकाल में अताउल्ला रसीदी द्वारा। इनके अंग्रेजी के अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी के आरंभ मे कोलब्रुक, टेलर और स्ट्रेची द्वारा किए गए।

मकरन्द ने शक १४०० में सूर्य सिद्धान्तानुसार मकरन्द सारणी की रचना की जिसकी सहायता से आज भी मकरन्दीय पंचांग बनते हैं। जान वेण्टली द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित सारणी अति शुद्धरूप में है (A Historical view of Hindu Astronomy Appendi 1. by Baentley)

गणेश का अवतार समझे जानेवाले गणेश देवज्ञ ने १४४२ में ग्रह लाघव नामक करणग्रंथ बनाया। जिसके अनुसार यह लाछवीय पंचांग बनते हैं।

इस काल में फलित ज्योतिष पर लिखे गए ग्रंथ इस प्रकार हैं :—

ढुण्डिराज (१४६३) कृत जातकाभरण, नीलकंठ कृत तामिस नीलकंठी (१५०६), राजदैवज्ञ कृत मुहूर्त चिन्तामणि (१५२२), नारायणकृत मुहूर्त मार्तण्ड (१४६३), गणेश कृत जातकालंकार (१५३५)।

सोलहवीं शताब्दी शाके में दो नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक विश्वनाथ (१५००) और दूसरे जगन्नाथ (१५७४)। विश्वनाथ ने सूर्य सिद्धान्त, ग्रह लाघव, मकरन्द सारिणी नीलकठी आदि पर महान परिश्रम का उदाहरण दिए जो प्रशंसनीय है। जगन्नाथ ने अरबी से दो ग्रंथों के संस्कृत में अनुवाद किए, एक ज्योतिष ग्रंथ मिजास्ती का सिद्धान्त सम्राज नाम से और दूसरे यूक्लिड का रेखागणित के नाम से। रेखागणित नाम सर्वप्रथम जगन्नाथ का ही दिया हुआ है। यह जयपुर के राजा जयसिंह के प्रधान पंडित थे। जयसिंह द्वारा बनवाए,जयपुर, दिल्ली काशी और उज्जैन के मानमंदिरों में जगन्नाथ का प्रमुख हाथ था।

इसी शताब्दी में सूर्य सिद्धान्तीय ग्रंथ सिद्धान्त सार्बभौम (१५६८), मुनीश्वर कृत और सिद्धान्त तत्व विवेक (१५८०) कमलाकर कृत रचे गए। सिद्धान्त तत्व विवेक भारत का सर्वोत्तम सिद्धान्त ग्रंथ है।

संख्यायें

आर्यभट्ट ने अंको और संख्याओं के लिए वर्णों का प्रयोग किया है।

क=१, ख=२ ग=३, घ=४, ङ=५, च=६, छ=७, ज=८, झ=९ ञ=१० ट=११, ठ=१२, ड=१३, ढ=१४, ण=१५, त=१६, थ=१७ द=१८, ध=१९, न=२०, प=२१, फ २२, ब=२३, भ=२४, म=२५, य=३०, र=४० ल=५०, व=६०, श=७०, ष=८०, स=९०, ह=१००, अ=१, इ=१००, उ=१००००, ऋ=१० लाख, लृ=१० करोड़, ए=१० अरब, ऐ=१०खरब, ओ=१०नील, औ=१० पदम

उदाहरण:—ख्युघृ=(२+३०)×१००००+४×१००००००=४३२००००

यूनान और अरब में संख्याओं के लिए अक्षरों का ही प्रयोग होता था।

अन्य ज्योतिष ग्रंथों में अंकों और संख्याओं के लिए समानधर्मी पदार्थों के नामों का प्रयोग पिंगल की आवश्यकतानुसार होता था।

०—नभ, ख १—भू,इंदु २—नेत्र भुज पक्ष, ३—राम, ताप, काल, गुण
४—वेद वर्ण, पिक, युग, आश्रम, ५—इन्द्रिय, तत्व,प्राण, यक्ष अमृत, शर
६—रस, ऋतु, शास्त्र, ईति, वेदांग ७—लोक द्वीप, वार समुद्र, गिर, मुनि,स्वर
८—वसु सिद्धि, योग ९, भक्ति, निधि १०. दिशा
१२--मास, राशि, भूषण, १५=तिथि

शब्द के अनुसार अंक इकाई के ओर से लिखे जाते थे। उदाहरण गोऋतुनन्द गोचन्द्रा १९९६६९।

सार संकलन

समुद्र-गर्भ के जीवन के दर्शन कराने वाला अनूठा मत्स्यालय

समुद्र अपने विशाल अंक में एक ऐसी अनूठी और विचित्र दुनिया को छिपाये है, जिसकी झलक-मात्र पाकर मनुष्य विस्मय-विमुग्ध हो गया है। समुद्र के गर्भ में विद्यमान इस अनूठी दुनिया की खोज करने और उसमें छिपे अनेकों रहस्यों और विस्मयों के उद्‌घाटन के लिये आज मनुष्य इतना उत्सुक और व्यग्र हो उठा है कि अपने जीवन को भी संकट में डालने से नहीं हिचकता। एक बार नहीं अनेक बार साहसी गोताखोर और वैज्ञानिक अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये प्राणों को संकट में डालकर अज्ञात खतरों से पूर्ण गहरे समुद्रों में काफी गहराई तक पहुंचे हैं।

लेकिन फ्लोरिडा (अमेरिका का एक राज्य) के सैंट आगस्टीन नामक कस्बे के निवासी बिना किसी प्रकार का संकट मोल लिये समुद्र के गर्भ में बसी विचित्र दुनियाँ और उसमें विचरण करने वाले जलचरों की झाँकी पा सकते हैं। यह झाँकी उन्हें कस्बे के पास ही स्थित 'मत्स्यालय' में सुलभ है, जहाँ समुद्र में पाये जाने वाले १० हजार जल-चरों का अनूठा संग्रह मौजूद है। इनमें उष्ण कटिबन्धीय समुद्रों में पाई जाने वाली छोटी-छोटी मछलियों से लेकर शार्क तथा अन्य बड़ी से बड़ी मछलियाँ तैरती हुई देखी जा सकती हैं। इस मत्स्यालय की एक विशेषता यह है कि संसार के अन्य मत्स्यालयों की तरह यहाँ जलचरों को अलग-अलग नहीं रखा जाता। सभी प्रकार के जलचर जल में एक साथ विच-रण करते दृष्टिगोचर होते हैं।

यहाँ पर दो बड़े-बड़े तालाब बनाये गये हैं। तालाब के तल इस प्रकार बनाये गये हैं जिससे वे समुद्र-तल जैसे ही प्रतीत हों। तालाबों के तलों में बालू के बीच सीप, घोंघे, कंकड़ इत्यादि ठीक उसी प्रकार इधर-उधर बिखरे दिखाई पड़ते हैं, जैसे समुद्र तल में दीखते हैं। इन तालाबों में सात टन वजन की मूंगे की चट्टान, एक नुकीली चट्टान तथा ध्वस्त जहाज के अवशेष भी दिखाई पड़ते हैं। इन सब को देख कर दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वे स्वयं समुद्र-तल में पहुंच गये हों।

इन तालाबों का निर्माण वस्तुतः समुद्री जलचरों की गतिविधियों की फिल्म उतारने के लिये किया गया था। इन तालाबों के किनारों और तल में कम से कम २०० खिड़कियाँ हैं, जिनसे दर्शक तालाब के अन्दर का दृश्य तथा पानी में स्वच्छन्द विचरण करती हुई रंग-बिरंगी मछलियों को देख सकते हैं। शौकिया दर्शक जलचरों के चित्र उतार सकते हैं,

परन्तु पेशेवर सुविधायें केवल फिल्म-कम्पनियों को ही प्राप्त होती हैं। इन दो तालाबों में एक बड़ा और एक छोटा है। बड़ा तालाब षटकोण के आकार का है और १०० फुट लम्बा, ४० फुट चौड़ा और १८ फुट गहरा है। इन दोनों तालाबों में कुल मिला कर ७ लाख गैलन पानी आता है।

मत्स्यालय के गोताखोर दिन में तीन बार तालाबों के तल में जलचरों को भोजन पहुँचाने के लिये जाते हैं। ये गोताखोर सुरक्षात्मक पोशाक और टोप पहने रहते हैं और अपने गश्तों के समय तालाब के भीतरी भागों का सावधानी से निरीक्षण करते हैं। समस्त शीत-ऋतु में तालाबों के जल का तापमान ६८° फारेनहाइट रखा जाता है।

चूँकि तालाब में वर्तमान बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खा लेती हैं, अतएव नई छोटी-छोटी मछलियों को तालाबों में पहुँचाने का कार्य वर्ष भर चालू रहता है। यह कार्य कुशल मछुओं द्वारा किया जाता है। मत्स्यालय के पास इस कार्य के लिये अपने दो छोटे-छोटे जहाज हैं, जिनमें से एक २८ फुट लम्बा तथा दूसरा ३० फुट लम्बा है। इसके अतिरिक्त कुछ अच्छी नौकाएँ भी हैं। एक बड़ी नाव पर १५ फुट का खुला हुआ कुँआ है, जिसमें पानी भरा रहता है। मछुओं द्वारा पकड़ी जाने वाली मछलियाँ इसी कुएँ में पहुँचा दी जाती हैं। इस कुएँ में ऐसी व्यवस्था रहती है, जिससे जल का प्रवाह बराबर रहता है। जब मत्स्यालय को बड़ी मछलियों की आवश्यकता होती है तो गोताखोर मूँगों की चट्टानों से घिरे समुद्री क्षेत्र में जाते हैं। यहाँ पर पलंग डालकर वे चट्टानों के बीच मछलियाँ पकड़ते हैं। बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में मछुए तारपीन, अम्बरजैक, डौल्फिन, मैकरेल, बैरा सूडा, एल्बाकोर और बोनिटो आदि कई प्रकार की मछलियाँ पकड़ते हैं।

सितम्बर और अक्टूबर में मछुए नदियों और किनारों पर 'रेज', 'बास' 'ट्राउट' तथा अन्य प्रकार की छोटी मछलियों को पकड़ने के लिये जाल का उपयोग करते हैं। इस मत्स्यालय की स्थापना १९३८ में की गई थी। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने पर यह मत्स्यालय बन्द कर दिया गया था और भयंकर मछलियों का छोड़ कर सभी मछलियाँ समुद्र में छोड़ दी गई थीं। १९४६ में यह मत्स्यागार पुनः खोल दिया गया और अब इसमें समुद्र में पाई जाने वाली असंख्य प्रकार की मछलियों को स्वच्छन्द विचरण करते हुए देखा जा सकता है।

———

सोवियत कृषि के चमत्कार

क्रास्नोयार्स्क (साइबेरिया) के इन्जीनियरों ने ट्रैक्टरों के रेडियो नियंत्रण की एक विधि निकाली है। यह इस प्रकार है :—

चलना आरम्भ करने का संकेत ट्रैक्टर पर लगा हुआ एक रिसीवर पकड़ता है और वह इसे अनुनाद योजित्र (रेसोनैंस रिले) को भेज देता है जहाँ यह प्रवर्धित होकर एक और अधिक शक्तिशाली बिजली के योजित्र को बन्द कर देता है। यह योजित्र-कड़ी एक संवादी विद्युत-चुम्बक के संस्पर्शस्थान हैं। चुम्बक से एक कार्य-संचालक हाइड्रो-सिलिंडर विद्युतयुक्त हो जाता है और वह क्लच को चला देता है जिससे ट्रैक्टर चलने लगता है।

रेडियो-नियंत्रित ट्रैक्टर न केवल जुताई में, बल्कि बुवाई, कटाई, कतारों वाली फसलों की खेती और बर्फ हटा कर जमा करने में भी काम आ सकता है। रेडियो संकेतो पर यह चलना प्रारम्भ कर देगा, रुक जाएगा, दायें या बायें घूम जायगा और किसी लटके हुए उपकरण को ऊँचा या नीचा कर देगा।

संसार का पहला स्वचालित ट्रैक्टर

संसार का पहला स्वचालित ट्रैक्टर कजाखस्तान में परीक्षाओं में सफल उतरा। शरद ऋतु की जुताई में एक साथ बारह स्वचालित कालर ट्रैक्टरों की परीक्षा की गयी थी। उन पर कन्ट्रोल करने वाला कोई नहीं था—केवल एक ट्रैक्टर ड्राइवर उन्हें पूरी दूरी तक चले जाने पर मोड़ने के लिए था।

ट्रैक्टर ड्राइवर ईवान लोजीनोवने बिना ड्राइवर की जुताई के लिए बनाई गयी मशीन और दूर से नियंत्रण करने के यंत्रों के आधार पर यह स्वचालित ट्रैक्टर बनाया है। इस समय लोजीनोव कजाख कृषि अकादमी की कृषियंत्रीकरण तथा विद्युतीकरण संस्था के कर्मचारी मंडल में है।

चुकन्दर की फसल काटने वाला स्वयंचालित कम्बाइन

यूक्रेन की सामूहिक और राज्य कृषिशालाओं में चुकन्दर के बड़े-बड़े खेतों पर धुँधलका उतर आया था। एक भी व्यक्ति नजर न आता था। रात होने के साथ-साथ

काम बन्द हो गया। लेकिन यह क्या बात है? कहीं दूर पर मोटर के चलने की आवाज सुनायी पड़ रही है। अंधेरे को चीरती हुई रोशनी की एक किरण खेत के दूसरी तरफ जाती जान हुई पड़ती और शीघ्र ही हमें चुकन्दर की फसल काटने वाले कम्बाइन की रूपरेखा दिखायी पड़ रही है।

रात में चुकन्दर उखाड़ना खेती के लिए नयी चीज है। परन्तु यह जानकर हमें और भी अचरज हुआ कि यह कम्बाइन अपने आप काम करता है, कोई उसे चलाने या देख-रेख करने के लिए नहीं है।

इस साल यूक्रेन के नित्रोपेत्रोटस्की के खेती मशीन कारखाने ने कई सौ ऐसे स्वयं-चालित चुकन्दर फसल कटाई कम्बाइन बनाये। ये कम्बाइन पहले के बने कम्बाइनों से इस प्रकार भिन्न हैं कि ये कम्बाइन बिना चालक के काम करते हैं। कम्बाइन एक विशेष विधि (हाइड्रोकापीइंग विधि) के द्वारा अपने आप चुकन्दर की कतारों में अपनी दिशा पा लेता है। चालक की आवश्यकता तब पड़ती है जब कम्बाइन को मुड़ना होता है और नयी कतार में काम शुरू करना होता है। यह नया कम्बाइन रात में भी उसी तरह काम करता है, जिस तरह दिन में। कापी विधि को रोशनी की जरूरत नहीं पड़ती।

चुकन्दर की फसल काटने वाले नये सैकड़ों कम्बाइनों का फसल कटाई परीक्षण इस साल यूक्रेन की सामूहिक और राज्य कृषिशालाओं में किया गया। अगले फसल कटाई के मौसम में ऐसी कई हजार मशीनें सोवियत संघ के चुकन्दर के खेतों में दिखायी पड़ेगी।

राजकीय फार्मों की स्थापना

सोवियत संघ में इस वर्ष ३०० नये बड़े राजकीय फार्म स्थापित किये गये हैं। इस समय सोवियत संघ में ६३०० से अधिक ऐसे फार्म हैं। ये फार्म तथा सामूहिक फार्म मिलकर अनाज, पशुजनित उत्पादन, औद्योगिक फसलों, सब्जियों, फलों और समूरों के मुख्य उत्पादक हैं।

१६५६ के आरम्भ में सरकार द्वारा खरीदे गये कुल अनाज का ३६ प्रतिशत, और मांस तथा दूध का २३ प्रतिशत राजकीय फार्मों में खरीदा गया था। पिछले वर्ष उन्होंने २.२५ करोड़ टन अनाज पैदा किया था। यह मात्रा १६४० की अपेक्षा आजकल छः गुनी है। इतने ही काल में उनका रुई और दूध का उत्पादन पाँच गुना बढ़ गया। राजकीय फार्मों का खेती वाला क्षेत्र ५.३ करोड़ हेक्टर है (सोवियत संघ में खेती का कुल क्षेत्र १६.५६ करोड़ हेक्टर है)। राजकीय फार्मों की संख्या ही नहीं, आकार भी बढ़ रहे हैं। इससे कार्य का संगठन अधिक दक्ष, मशीनरी का प्रयोग अधिक प्रभावकारी हो रहा है और श्रम उत्पादकता की वृद्धि के लिए उपयुक्त अवस्थाएँ बन रही हैं।

'ट्रेकोमा' की रोकथाम के लिए नई वैक्सीन

फारमोसा में चीनी चिकित्सकों के साथ मिल कर काम करने वाले अमेरिकी नौसेना के चिकित्सकों के एक दल ने एक ऐसी वैक्सीन का विकास किया है, जो 'ट्रेकोमा' नामक एक संक्रामक नेत्र रोग के प्रसार को रोकने के लिए बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हो सकेगी। तीन अमेरिकी और दो चीनी चिकित्सकों के एक दल ने 'ट्रेकोमा' के विषाणुओं को पृथक करके तथा मनुष्यों के नेत्रों में परीक्षण के लिए रोग उत्पन्न करके एक ऐसी वैक्सीन का विकास किया है, जो मानवीय प्रयोग के लिए हानिकारक नहीं है।

शिकागो विश्वविद्यालय में चिकित्सा सम्बन्धी सहायक प्रोफेसर डा० जे० टामस ग्रेसन ने वैक्सीन के विकास सम्बन्धी कार्य का विवरण देते हुए कहा है कि इस सम्बन्ध में अब तक जो परीक्षण किये गये हैं, वे बड़े ही उत्साहवर्द्धक रहे हैं। इस नई वैक्सीन में ट्रेकोमा को रोकने की अपार क्षमता है। इसके प्रयोग से एक ऐसे रोग के उपचार की सम्भावना है, जिसके कारण मनुष्य बिल्कुल अन्धा हो जाता है। उन्होंने यह भी बताया कि इसके सम्बन्ध में परीक्षण करने में एक और वर्ष लग सकता है।

प्लुटोनियम के आविष्कर्ता को एनरिको फर्मी पुरस्कार

अमेरिका के प्रमुख अणुशक्ति वैज्ञानिक डा० ग्लेन टी० सीबोर्ग को वाशिंगटन में १ दिसम्बर को ५० हजार पौण्ड का एनरिको फर्मी पुरस्कार प्रदान किया गया। डा० सीबोर्ग प्लुटोनियम नामक आणविक तत्व के सहआविष्कर्ता हैं। इसके अलावा उन्होंने स्वयं अथवा अन्य वैज्ञानिकों के सहयोग से ७ अन्य रासायनिक तत्वों की भी खोज की है। यह पुरस्कार अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन की ओर से इटालवी-अमेरिकी वैज्ञानिकों की स्मृति के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए प्रारम्भ किया गया है और इस पर प्रेसिडेण्ट आइजनहोवर की स्वीकृति प्राप्त है। डा० सीबोर्ग को यह पुरस्कार उनकी वैज्ञानिक सफलताओं तथा शिक्षा के क्षेत्र में दिये गये योगदानों के उपलक्ष्य में प्रदान किया गया है। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन की पुरस्कार कमेटी ने सर्वसम्मति से उनके नाम का चुनाव किया है।

डा० सीबोर्ग पिछले वर्ष बर्कली के केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के कुलपति बनाये गये। उन्होंने हाई स्कूल टेलिविजन विज्ञान-कार्यक्रम में भी काफी योग प्रदान किया है। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन की पुरस्कार-समिति के अध्यक्ष डा० वारेन सी० जान्सन ने डा० सीबोर्ग को पुरस्कार प्रदान करते हुए कहा कि डा० सीबोर्ग ने तत्वों विषयक रसायन विज्ञान में जितना योग प्रदान किया है, उतना किसी अन्य ने नहीं किया।

मांसपेशियों के रोगों सम्बन्धी अध्ययन के लिए नया अनुसन्धान-केन्द्र

न्यूयार्क में १२ दिसम्बर को मांसपेशियों सम्बन्धी रोगों के अध्ययन के लिए एक संस्थान 'दि इन्स्टीट्यूट ओव् मसल डिजीज', का उद्‌घाटन किया गया है। यह अनुसन्धान

केन्द्र नाड़ियों और मांसपेशियों सम्बन्धी रोगों के विरुद्ध अभियान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

११ मंजिल के अनुसन्धान-केन्द्र में प्रयोगशालाओं, अनुसन्धान-कक्षों और विशेष उपकरणों की पर्याप्त व्यवस्था है। यह संसार का प्रथम अनुसन्धान-केन्द्र है, जो एकमात्र मांसपेशियों सम्बन्धी अध्ययन के लिए बनाया गया है। इसके निर्माण पर ५० लाख डालर से अधिक धन व्यय हुआ है। यह धन अमेरिका से मस्कुलर डाइस्ट्रोफी असोसियेशन्स के अनुरोध पर जनता से चन्दे के रूप में प्राप्त हुआ है।

इस नवीन अनुसन्धान-केन्द्र के डाइरेक्टर डा० एड टी० मिलहोराट ने कहा कि इसका उद्देश्य 'मांसपेशियों' सम्बन्धी हमारे ज्ञान में वृद्धि करना तथा तत्सम्बन्धी रोगों के कारणों की सूक्ष्म छानबीन करना है। यह केन्द्र इन रोगों के कारणों की जाँच करके उनके उपचार की सही विधियों का भी पता लगायेगा।

भारत में मछली पालन

भोजन के रूप में मछली का उपयोग बहुत पुराना है। मछली पकड़ने का कार्य समुद्र, नदियों और तालाबों में किया जाता है। आज भी जब यह व्यवसाय पर्याप्त विकसित हो चुका है देश में जितनी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं उनकी एक तिहाई केवल नदियों और तालाबों से प्राप्त की जाती है।

सन् १९४४ ई० में "अधिक अन्न उपजाओ" आन्दोलन चला। इसी समय से सरकार का ध्यान इस उद्योग की ओर बढ़ा। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद मछली उद्योग का वैज्ञानिक रीति से विकास किया गया। भारत के पास ३ हजार ५३५ मील लम्बा समुद्र तट है और सैकड़ों नदियाँ और हजारों तालाब हैं। इन साधनों के उचित उपयोग से मछली पालने और पकड़ने का काम बहुत बढ़ाया जा सकता है। मछली उद्योग के विकास के लिए सरकार ने मंडपम में "सेण्ट्रल मेरीन फिशरीज रिसर्च स्टेशन", कलकत्ता में "सेण्ट्रल इनलैण्ड फिशरीज रिसर्च स्टेशन" और बम्बई में "सेण्ट्रल डीप सी फिशिंग स्टेशन" स्थापित किये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में अधिक मछली पकड़ने का लक्ष्य था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में मछली का व्यवहार बढ़ाने और मछली उद्योग का आधुनिक ढंग से संगठन करने पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रथम योजना के फलस्वरूप मछली पकड़ने में १० प्रतिशत की वृद्धि हुई।

इस समय सबसे अधिक मछली पकड़ने वाले देशों में भारत का आठवाँ स्थान है। केवल समुद्र तट पर ही लगभग १० लाख मछुये ७३ हजार से अधिक नावों द्वारा दिन रात मछली पकड़ा करते हैं। देश में प्रति वर्ष १० लाख टन से अधिक मछली पकड़ी जाती है। इस उद्योग में सरकार ने ४ लाख ११ हजार के लगभग लोग लगा रखे हैं जिनसे सरकार को प्रति वर्ष २८ करोड़ रुपये की आय होती है। विदेशों को मछली का निर्यात भी किया जाता है और विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाती है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के विकास के लिये १२ करोड़ रुपया व्यय करने की योजना बनाई गई है इसमें से ३ करोड़ ६८ लाख रुपया केन्द्रीय योजनाओं पर और ६ करोड़ रुपया मत्स्य पालन के कार्य बढ़ाने पर व्यय किया जायेगा। इसके अतिरिक्त २५ लाख रुपया राज्य सरकारों को अनुदान के रूप में दिया जावेगा। इस उद्योग की शिक्षा की व्यवस्था के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिये भारत सरकार ने सन् १९५८ ई० में एक समिति नियुक्त की थी जिसने कोचीन में मछियारी की केन्द्रीय शिक्षा संस्था खोलने की संस्तुति की है और तालाबों आदि में मछली पालनें और पकड़ने के प्रशिक्षण के लिये भुवनेश्वर के समीप कौशल्या-गंगा क्षेत्र में एक उपकेन्द्र खोलने की भी सिफारिश की है। समिति ने इस उद्योग के विकास के लिए और मछली विभागों के संगठन के विषय में भी अनेक सुझाव दिये हैं। दूसरी योजना में प्रति वर्ष १४ लाख ५० हजार टन मछली पकड़ने का लक्ष्य रखा गया है।

भारत का मछली उद्योग धीरे-धीरे विकसित होता जा रहा है। इस उद्योग के पूर्ण विकसित हो जाने पर भारत की खाद्य समस्या इतनी उग्र नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त मछली के निर्यात से विदेशी मुद्रा भी प्राप्त हो सकेगी और देश निर्भरता की ओर बढ़ सकेगा।

अंतरिक्ष में ब्रह्माण्ड किरण अंकन हेतु फोटो ब्लाक युक्त गुब्बारे

अमेरिका के राष्ट्रीय विज्ञान अधिष्ठान तथा सैन्य विभाग ने घोषणा की थी कि १९६० की जनवरी के दूसरे सप्ताह में कैरिबियन क्षेत्र में एक विमान द्वारा दो विशाल गुब्बारे उड़ाये जायेंगे, जिनमें अत्यधिक शक्तियुक्त ब्रह्माण्ड किरणों के अंकित करने के लिए वैज्ञानिक यन्त्र-पुंज लगे होंगे।

पूर्ण रूप से फूल जाने पर प्रत्येक गुब्बारे का व्यास ४०० फुट होगा। प्रत्येक में नारंगी रंग के इस्पात का एक विशाल बेलनाकार पीपा होगा, जिसमें फोटोग्राफी की चद्दरों का ८०० पौंड वजनी एक ब्लाक होगा। फोटोग्राफी की ये चद्दरें १,००० खरब इलेक्ट्रोन वोल्ट तक की ऊँची शक्ति वाली ब्रह्माण्ड किरणों को अंकित कर सकती हैं। अभी तक इतनी ऊँची शक्तियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान नहीं हुए हैं। आशा है कि इस योजना के फलस्वरूप भौतिक विज्ञान में एक नये क्षितिज का उद्घाटन होगा।

अनुमान है कि ये गुब्बारे अन्तरिक्ष में पृथ्वी से १८ और २२ मील के बीच की ऊँचाई तक उड़ कर जायेंगे और वहाँ दो दिनों तक रुक सकेंगे।

प्रत्येक गुब्बारा २,५०० पौंड भार वहन करेगा। इसमें से १,५०० पौंड वजन बेलनाकार पीपे, गुब्बारे को सन्तुलित करने के लिए उसकी पेंदी में रखे गये सीसे और रेडियो उपकरण का होगा। अमेरिका द्वारा इतने विशाल बेलनाकार पीपे अभी तक अन्तरिक्ष सम्बन्धी खोज के सिलसिले में प्रयुक्त गुब्बारों द्वारा ऊपर नहीं भेजे गये हैं।

वेस्ट इण्डीज क्षेत्र के अमेरिकी हवाई सैनिक अड्डे से 'स्काई हुड-६०' नामक इस उड़ान-कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जायेगा। इस कार्यक्रम में अमेरिका, यूरोप, एशिया, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के विश्वविद्यालय और वैज्ञानिक संस्थान भाग ले रहे हैं।

गुब्बारों द्वारा अन्तरिक्ष में भेजे जाने वाली फोटोग्राफी की चद्दरें उसी प्रकार की हैं, जिनका उपयोग सामान्य फोटोग्राफी की फिल्मों में होता है। जब शक्ति-कण इन चद्दरों में प्रवेश करेंगे, तो वे उनके मूल केन्द्र से टकरायेंगे। इसके फलस्वरूप तीव्र गति वाले कणों की वर्षा होगी जिससे क्रिया-प्रतिक्रिया का एक क्रम प्रारम्भ होगा। यह क्रम फोटोग्राफी के ब्लाक पर अंकित हो जायेगा। वैज्ञानिकों को आशा है कि इनकी सहायता से ये न्यूनतम कण की गतिविधियों से लेकर ब्रह्माण्ड विकिरण के उद्भव तक के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

(शेष पृष्ठ १७३ का)

सदैव प्रत्येक वस्तु को अपने केन्द्र के निकट लाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। तलों नीचे पर स्थित जगहें केन्द्र के निकट पड़ती हैं, अतः यदि जमीन में ढाल है तो प्रत्येक वस्तु जो गतिशील है, नीचे जाने का प्रयत्न करेगी जिससे वह पृथ्वी के केन्द्र के अधिक से अधिक निकट रह सके। पानी ठोस की अपेक्षा अधिक आसानी से बह सकता है, अतएव यदि ढाल बहुत कम भी है तो भी वह नीचे की ओर बहने लगता है।

पानी सदैव से ही हमारी सहायता करता रहा है। दुनिया में मनुष्य की उत्पत्ति के बहुत पहले से ही पानी ने भूमि को समतल बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। आज भी हम देखते हैं कि किस तरह पानी ऊँची जगहों से मिट्टी बहा लाकर नीची भूमि पर एकत्रित करता रहता है। जिस समतल भूमि पर हम रहते हैं, उसे पानी ने ही बनाया है, इस सत्य को हम सभी जानते हैं। मनुष्य ने पानी की शक्ति का बहुत प्रकार से उपयोग किया है। भोजन बनाने, कपड़ा साफ करने, और पीने के अतिरिक्त पानी की भाप रेल, जहाज और बड़े बड़े कारखाने चलते हैं। पानी की शक्ति से बिजली बनाई जाती है, जो हमारे सैकड़ों काम करती है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि आज की सभ्यता बहुत कुछ पानी पर आश्रित है।

परमाणु-ऊर्जा उत्पादन और भारत :

बम्बई के पास स्थित ट्राम्बे केन्द्र में डा० एच० जे० भाभा के निर्देशन में परमाणु ऊर्जा के सम्बन्ध में वृहत पैमाने पर कार्य हो रहा है। इस कार्य की प्रगति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि भारतीय वैज्ञानिकों ने अपने अनुभवों एवं ज्ञान के आधार पर "अप्सरा" परमाणु-प्रतिकारी का निर्माण कर लिया है, जो सफलता पूर्वक कार्य कर रहा है। इस प्रतिकारी के द्वारा रेडियसक्रिय समस्थानिकों का निर्माण किया जा रहा है जो विभिन्न रासायनिक तथा कृषि अनुसन्धानों में प्रयुक्त किये जा रहे हैं। भारतीय कृषि-अनुसन्धान-शाला दिल्ली में ऐसे समस्थानिकों का प्रयोग उर्वरकों की उपयोगिता के पता लगाने, उनके शोषण तथा वनस्पतियों के भीतर उनके संचालन की गतिविधि को जानने के लिए किया गया है। इस दिशा में भारतीय वैज्ञानिकों को आशातीत सफलता भी मिली है।

किन्तु परमाणु ऊर्जा के उत्पादन एवं शान्तिपूर्ण उपयोगों की यहीं इतिश्री नहीं हो जाती। परमाणु-ऊर्जा का उत्पादन आज समस्त सभ्य राष्ट्रों के लिए जीवनदायिनी शक्ति है। उसेक अभाव में कोई भी राष्ट्र प्रगति-पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। सुरक्षा के लिये परमाणु-ऊर्जा का उत्पादन जिस गति से रूस तथा अमेरिका द्वारा हो रहा है, उसके कारण सारे विश्व में चिन्ता की लहर व्याप्त है कि युद्धास्त्रों के निर्माण पर यदि रोकथाम न की गई तो सम्भव है कि किसी समय इन परमाणु अस्त्रों द्वारा विश्व का संहार हो जावे। सचमुच ही मानवता के लिये परमाणु-ऊर्जा का यह विध्वंसकारी पक्ष शापमय है। उसी से बचने के लिये शान्ति-शिखर-सम्मेलन की पूर्व योजनायें हो रही हैं। सौभाग्य-वश हमारा देश पंचशील में विश्वास करने के कारण तथा अहिंसा नीति को पालन करने के कारण परमाणु-ऊर्जा के ऐसे प्रयोगों का प्रारम्भ से ही घोर विरोधी रहा है और हर्ष का विषय है कि अब उसे अन्य तमाम राष्ट्रों का समर्थन भी प्राप्त हो रहा है।

अतः स्पष्ट है कि हमारे देश में परमाणु ऊर्जा का प्रयोग सदैव ही शान्तिपूर्ण उपयोगों के लिये होगा। भारत को इस दिशा में जो दैवी वरदान प्राप्त है वह है थोरियम अयस्क का अक्षय कोष। अनुमान लगाया जाता है कि त्रवाँकुर क्षेत्र में ५००,००० टन उच्चकोटि का थोरियम अयस्क उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त पिछले तीन वर्षों में बिहार में ३०००००० टन कोष का और पता लगा है। ये थोरियम कोष ही यूरैनियम तत्व के

मुख्य स्रोत हैं जिनसे प्लुटोनियम का उत्पादन करके रेडियधर्मी समस्थानिकों का वृहत पैमाने पर निर्माण किया जाता है।

कैनाडा के सहयोग से ट्राम्बे में एक थोरियम यन्त्र तथा केनाडा-इण्डिया प्रतिकारी का निर्माण हो रहा है जो प्रायः पूर्ण हो गया है। बन जाने पर यह विश्व के महानतम प्रतिकारियों में से एक होगा जिसमें समस्थानिकों का निमाण होगा। यही नहीं, दिल्ली के पास भारी-जल निर्माण का भी एक कारखाना स्थापित होगा।

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के १२ वर्षों के बाद ही भारत में परमाणु-ऊर्जा के उत्पादन एवं उसके शान्तिपूर्ण उपयोगों में पर्याप्त सफलता मिली है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत जैसे देश के लिए परमाणु-ऊर्जा अत्यन्त हितकर सिद्ध होगी, यदि उसका समुचित एवं सही प्रयोग किया गया। हमारा विश्वास है कि विकिरणों तथा रेडियधर्मिता के हानिकारक प्रभावों के प्रति जागरूक रहते हुये हमारी सरकार परमाणु-ऊर्जा को बहुजन-हिताय प्रयुक्त करेगी। देश के वैज्ञानिकों को भी इस नवीन प्रयोगास्त्र के द्वारा नई नई सफलतायें मिलेंगी।

'विज्ञान' के कलेवर में वृद्धि:

'विज्ञान' के पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि अब इस अंक से 'विज्ञान' की पृष्ठ संख्या ३२ से ४० कर दी गई है। ऐसा करने से हम अधिकाधिक लेखकों की रचनाओं को स्थान देते हुये विज्ञान के स्तर में सुधार ला सकेंगे, हमें विश्वास है। नवोदित लेखकों के साथ साथ हमें अपने पुराने लेखकों के सहयोग की अपेक्षा है। अच्छे लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था भी कर दी गई है।

"विज्ञान प्रगति" का कायाकल्प :

दिल्ली से निकलने वाली प्रमुख वैज्ञानिक मासिक पत्रिका "विज्ञान प्रगति" ने फरवरी अंक में नवीन आकार के साथ अपने दर्शन दिये हैं। न केवल उसके वाह्य रूप में परिवर्तन आया है वरन् अब "विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" की शैली पर उसमें शोध निबन्धों की अंग्रेजी संक्षिप्तियाँ भी दी जाने लगी हैं। परन्तु जो त्रुटि स्पष्ट लक्षित होती है वह है विभिन्न प्रकार के टाइपों को न प्रयुक्त करते हुये केवल मोटे टाइप का अंग्रेजी में प्रयोग। शोध-निबन्ध के शीर्षक, लेखक के नाम एवं सरांश में ऐसी सम्बद्धता दिखाई गई है कि प्रथम दृष्टिपात पर कुछ भी समझ में नहीं आता। अन्त में अंग्रेजी में ही विषय सूची का दिया जाना युक्ति संगत नहीं जान पड़ता। संदर्भों में तो अंग्रेजी शोभा पाती है किन्तु विषय सूची में नहीं। फिर भी हम सम्पादकों को इस नवीन सद्प्रयास के लिए वधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे अपनी पत्रिका में न केवल औद्योगिक या प्राविधिक शोधों को स्थान देंगे वरन् विज्ञान की अन्य शाखाओं पर होने वाली शोधों को स्थान देकर वैज्ञानिक साहित्य का सफल प्रसार करेंगे।

"विज्ञान लोक" का प्रकाशन :

"विज्ञान लोक" अपने रंग-विरंगे प्रथम अंक के साथ वसन्त की सुषमा के साथ ही साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित हुआ है। यह एक सचित्र मासिक वैज्ञानिक पत्र है जिसका मुख्य उद्देश्य बालक-बालिकाओं के लिये सुरुचिपूर्ण वैज्ञानिक साहित्य प्रस्तुत करना है। यह आगरा से प्रकाशित होता है। इसके सम्पादक आर० डी० विद्यार्थी है। हम वैज्ञानिक क्षेत्र में इस नवीन पत्रिका के प्रकाशन का स्वागत करते हैं और आशा करते है कि अनवरत रूप से स्तरीय साहित्य का प्रचार करते हुये यह पत्रिका अपने आलोक को बिखेरने में समर्थ होगी। परन्तु पृष्ट ४२ पर व्यक्त भावों से हम कदापि सहमत नहीं। विज्ञान का मूल मन्त्र है सत्य का उद्घाटन एवं स्थापन परन्तु प्रथम अंक में ही "विज्ञान लोक" में निम्न अंश देखकर हमें निराश होना पड़ा :

"लेकिन विज्ञान लोक तुम्हारी अब इस दिक्कत को दूर करने जा रहा है। यह तुम्हारी अपनी भाषा में निकलने वाला पहला वैज्ञानिक पत्र है।"

हिन्दी संसार में अब सभी को यह भली-भांति ज्ञात है कि "विज्ञान परिषद्" द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका "विज्ञान" गत ४६ वर्षों से हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार एवं प्रसार करती रही है। आश्चर्य है कि इतनी पुरानी पत्रिका का न उल्लेख करते हुये "विज्ञान लोक" को एकमात्र एवं प्रथम सचित्र मासिक घोषित किया गया है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—श्री रामदास गौड़, प्रो० सालिगराम भार्गव	३७ नये पैसे
२—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी	१ रु०
३—समीकरण मीमांसा भाग १—पं० सुधाकर द्विवेदी	१ रु० ५० नये पैसे
४—समीकरण मीमांसा भाग २—पं० सुधाकर द्विवेदी	६२ नये पैसे
५—स्वर्णकारी—श्री गंगा शंकर पचौली	३७ नये पैसे
६—त्रिफला—श्री रमेश वेदी	३ रु० २५ नये पैसे
७—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी	३७ नये पैसे
८—व्यंग चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका—डा० रत्न कुमारी	२ रुपया
९—वायुमंडल—डा० के० बी० माथुर	२ रुपया
१०—कलम पैवन्द—श्री शंकरराव जोशी	२ रुपया
११—जिल्द साजी—श्री सत्य जीवन वर्मा एम० ए०	२ रुपया
१२—तैरना—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०	१ रुपया
१३—वायुमंडल मी सूक्ष्म हवायें—डा० संत प्रसाद टंडन	७५ नये पैसे
१४—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकार नाथ पर्ती	७५ नये पैसे
१५—फोटोग्राफी—डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
१६—फल संरक्षण—डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी०, वीरेन्द्र नारायण सिंह	२ रु० ५० न० पै०
१७—शिशु पालन—श्री मुरलीधर बौड़ाई	४ रुपया
१८—मधुमक्खी पालन—श्री दयाराम जुगड़ान	३ रुपया
१९—घरेलू डाक्टर—डा० जी० घोष, डा० उमाशंकर प्रसाद, डा० गोरख प्रसाद	४ रुपया
२०—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश	३ रु० ५० नये पैसे
२१—फसल के शत्रु—श्री शंकर राव जोशी	३ रु० ५० नये पैसे
२२—सांपों की दुनिया—श्री रामेश वेदी	४ रुपया
२३—पोर्सलीन उद्योग—श्री हीरेन्द्र नाथ बोस	७५ नये पैसे
२४—राष्ट्रीय अनुसंधान-शालायें	२ रुपया
२५—गर्भस्थ शिशु की कहानी—अनु० प्रो० नरेन्द्र	२ रु० ५० नये पैसे
२६—रेल इंजन, परिचय और संचालन—श्री ओंकारनाथ शर्मा	६ रुपया
२७—भौतिक रसायन की रूपरेखा—डा० रामचरण मेहरोत्रा	७ रु० ५० नये पैसे

मिलने का पता :

विज्ञान परिषद्

विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड

इलाहाबाद—२

विज्ञान परिषद् के अभिनव प्रकाशन

की प्रतीक्षा करें

भारतीय कृषि का विकास

(सचित्र)

लेखक: डा० शिवगोपाल मिश्र

पृष्ठ संख्या २५०

मूल्य ४ रु०

इस पुस्तक में प्राचीन भारतीय कृषि के विकास की वैज्ञानिक परम्परा का इतिहास तथा आधुनिक कृषि शास्त्र की चतुर्दिक उन्नति का सविस्तार वर्णन होगा। यह पुस्तक सभी विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के लिये उपयोगी होगी।

अपने आर्डर भेज कर प्रतियाँ सुरक्षित करा लें।

मन्त्री

विज्ञान परिषद्

इलाहाबाद।

प्रकाशक—डा० आर० सी० कपूर, प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद।
मुद्रक—हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञान जानेतानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तै० उ० ।३।५।

भाग ९० | २०१६ विक्र०; फाल्गुन १८८१ शाकाब्द; मार्च १९६० | संख्या ६

ट्रांसिस्टर के बारह वर्ष

कुलदीप चड्ढा

जी नहीं—ट्रांसिस्टर अभी पूरे १२ वर्ष का नहीं हुआ। इसके जन्म की घोषणा ३० जून १९४८ को हुई थी। इसके आविष्कार का श्रेय, अमेरिका के प्रख्यात विज्ञान-संस्थान, 'बेल टेलीफोन लेबॉरेटरीज' के दो अनुसन्धानकर्ताओं, बारडीन और ब्राट्टेन को मिला।

११-१२ वर्ष का यह बालक, अब किशोरावस्था की ओर अग्रसर है। उसकी क्षमता बढ़ रही है और चर्चा का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। पर देखने में वह बढ़ा नहीं—आकार में, परिमाण में अथवा भार में। इस दृष्टि से तो वह कुछ छोटा ही हुआ होगा।

पर, बढ़ कर उसे लाभ भी क्या? उसका सम्मान तो उसके छोटे आकार के कारण ही है। ११-१२ वर्ष की आयु पाकर भी वह छोटा ही है—अत्यन्त छोटा।

……अब आपके धैर्य की परीक्षा करने के स्थान पर, आइए आपको यह बतलाएँ कि यह ट्रांसिस्टर है क्या वस्तु? हो सकता है आप में से कुछ इसके नाम से भी परिचित न हों।

आपने शायद कभी अपने रेडियो को खोल कर, उसके आन्तरिक ढाँचे पर दृष्टि डाली हो—और नहीं तो केवल कौतूहल वश ही। या फिर सम्भवतः किसी रेडियो की

दुकान पर खुला हुआ रेडियो सेट ही देखा हो। यदि आपने यह व्यापार कुछ रुचि लेकर किया था, तो आपको याद होगा कि इस विचित्र से ढांचे में ५-७ नलिकाएँ सी थीं, शीशे की अथवा लोहे के आवरण की। इन्हें प्रदीप या रेडियो की बत्ती कहा जाता है। ये ही पदार्थ रेडियो का हृदय हैं। सैकड़ों अथवा हजारों मीलों की यात्रा करके आने वाली क्षीण रेडियो तरंगों का संवर्धन करना—और अन्य तत्सम व्यापार, जिनके द्वारा अन्त में आप मधुर संगीत अथवा ज्ञानवर्धक सामग्री आदि स्पष्ट सुन पाते हैं—इन्हीं प्रदीपों द्वारा साध्य है।

पर इनका प्रयोग केवल आपके रेडियो तक ही सीमित हो, ऐसी बात नहीं। ये तो सैकड़ों-हजारों वैज्ञानिक, औद्योगिक और चिकित्सा संबन्धी कार्यों में भी प्रयुक्त होते हैं।

१२ बरस का अल्पवय ट्रांसिस्टर, इसी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, प्रौढ़ वय के प्रदीप को, स्थानान्तरित करने की धृष्टता लेकर पैदा हुआ है। पर भला किस बल-बूते पर ? सो भी सुन लीजिए।

लगभग सभी प्रदीपों में बिजली के लट्टू के प्राज्वलनीय तंतु की भाँति ही, एक छोटा सा तंतु (filament) होता है; जिस समय आप अपना रेडियो चलाते हैं—अथवा दूसरे उपकरणों में, ज्यों ही आप विद्युत का संचार करते हैं—यह तंतु भी, बिजली के लट्टू की तरह प्रकाश देता है। पर इसके साथ ही, इलेक्ट्रान (electrons) नामक अत्यन्त क्षुद्र कणों को भी उगलता है। शीशे के आवरण में से आप प्रकाश का तो प्राय: आभास पा सकते हैं, पर इलेक्ट्रान अत्यन्त लघु आकार के होने के कारण देखे भी नहीं जा सकते। ये ऋणाणु ही, विशेष नियंत्रण द्वारा, प्रदीपों से साध्य, सभी व्यापारों का आधार होते हैं। ट्रांसिस्टर में भी, इस प्रकार के व्यापार, इक्लेट्रान द्वारा होते हैं। पर यहाँ उन्हें उत्पन्न करने के लिए किसी तंतु को प्रज्ज्वलित करने की आवश्यकता नहीं।

जिस प्रकार आपके घर में, बिजली का बल्व, पंखा, कपड़े प्रेस करने की इस्त्री आदि, विद्युत शक्ति का व्यय करते हैं, उसी प्रकार आपका रेडियो भी करता है। रेडियो के प्रदीपों द्वारा व्यय की जाने वाली विद्युत का मुख्य अंश, उक्त तंतुओं को जलाने में उपयुक्त होता है। अतः प्रदीपों के स्थान पर ट्रांसिस्टर के प्रयोग से, इस मात्रा का विद्युत व्यय बचाया जा सकता है। अधिक क्षमता (efficiency) के कारण शेष बिजली का भी व्यय, ट्रांसिस्टर वाले उपकरणों में कम होता है। इस प्रकार, एक ही प्रकार के उपकरणों, और उनसे समान क्षमता प्राप्त करने के लिए, ट्रांसिस्टर वाले उपकरण से केवल आधी अथवा तिहाई विद्युत ही व्यय होगी। ट्रांसिस्टर से इस गुण का लाभ ऐसे स्थलों अथवा स्थानों पर, और भी उपयोगी सिद्ध होता है, जहाँ हम बैटरी का प्रयोग करने पर बाधित हों।

नगरों में विद्युत शक्ति का मूल्य कम होता है। इसलिए बिजली के खर्च में बचत केवल भीमकाय मशीनों आदि में ही चिन्त्य है। पर बैटरी के उपकरणों का प्रयोग करने वाले जानते हैं कि उन्हें बैटरी की विद्युत प्रयोग करने का क्या मूल्य देना पड़ता है।

यही नहीं, ट्रांसिस्टर के लिए प्राय: बहुत कम विभव (voltage) की बैटरी चाहिए—बहुधा ६ वोल्ट से ही काम चल जाता है। अत: विशेष प्रकार की और महँगी बैटरी के स्थान पर, टार्च में इस्तेमाल होने वाले डेढ़ वोल्ट के चार सैल ही काफी होते हैं। जरा तुलना करिए, बैटरी के रेडियो के साथ प्रयुक्त होने वाली बैटरी से? और फिर ट्रांसिस्टर का आकार? जितना घनफल आपके रेडियो का एक प्रदीप घेरता है, उसमें तो २-३ सौ ट्रांसिस्टर समा जावें। क्या यह कम कौतुक नहीं?

लघु आकार, कम विभव और कम शक्ति की आवश्यकता, ये तीन गुण जिस पदार्थ में एक साथ हों, उसके आविष्कार की उपयोगिता में संदेह को स्थान कहाँ? प्रत्युत इन गुणों से ही उसकी लोक-प्रियता, दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ रही है। प्रत्यक्षे किम् प्रमाणम्? लीजिए उसके समर्थन में कुछ आँकड़े प्रस्तुत हैं:—

एक अनुमान के अनुसार, सन् १६५५ ई० में लगभग १ करोड़ ३० लाख ट्रांसिस्टर निर्मित किए गए। दो साल बाद, १६५७ में यह संख्या, दोगुनी से भी बढ़ कर २ करोड़ ६० लाख हो गयी। अगले वर्ष, १६५८ में ट्रांसिस्टर के उत्पादन का अनुमान है साढ़े सात करोड़।

—ट्रांसिस्टर आविष्कार के केवल दस साल बाद!

न केवल उत्पादन संख्या में, प्रत्युत प्रयोग की विविधता में भी ट्रांसिस्टर ने आशातीत उन्नति की। इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि प्रारम्भ में ट्रांसिस्टरों का प्रयोग निम्न आवृत्तियों (low frequencies) तक ही सीमित था—श्रव्य (audio) आवृत्तियों तक। अर्थात् वे मुख्यतया केवल ध्वनि संवर्धन (amplification) के व्यापार के लिए ही प्रयुक्त हो सकते थे। इस क्षेत्र में भी, वे अधिक से अधिक कुछ मिली-वॉट (शक्ति की इकाई, वॉट का हजारवाँ भाग) श्रव्य-शक्ति ही उपलब्ध करा सकते थे। पर अब क्रमशः उन्नति करके ट्रांसिस्टर के कुछ प्रकार ३००० मेगासाइकल (अर्थात् ३००,००,००,००० स्पन्दन प्रति सैकेंड) तक की आवृत्तियों पर प्रयुक्त हो सकते हैं। स्मरण रहे कि श्रव्य-आवृत्तियाँ प्राय: १०-१५ हजार स्पन्दन प्रति सैकेंड तक सीमित हैं। इस प्रकार, जहाँ तक उच्च-आवृत्तियों पर प्रयोग की क्षमता का सम्बन्ध है, ट्रांसिस्टर ने दो लाख गुनी प्रगति की है। इसके साथ ही उसकी शक्ति की सीमाएँ भी बढ़ी हैं और कुछ सौ वॉट शक्ति देने वाले उपकरण असंभव नहीं।

प्रयोग की इस विविधता के अनुरूप, ट्रांसिस्टर के प्रकार भी बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरणार्थ १६५६ में लगभग ढाई-तीन सौ प्रकार के ट्रांसिस्टर बनते थे। अगले वर्ष १६५७ में यह विविधता बढ़कर सात आठ सौ हो गयी। और अब तो, हजार क्या हजारों प्रकार के ट्रांसिस्टर बन रहे हैं। यह आँकड़े अमेरिकन सूचनाओं पर आधारित हैं। पर आजकल इस क्षेत्र में अमेरिका के अतिरिक्त रूस, जर्मनी, हालैंड, जापान, चैकोस्लोवाकिया, इंगलैंड आदि देश भी प्रवेश कर चुके हैं।

अमेरिका की भाँति रूस की प्रगति का गणनाओं में उल्लेख तो संभव नहीं। पर इस संबन्ध में कुछ चर्चा करना रोचक होगा। राकेट प्रक्षेपण और अन्तरिक्ष विहार में अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों के द्वारा, रूस ने इस क्षेत्र में अपने नेतृत्व की धाक जमा दी है। ट्रांसिस्टर, राकेट और तत्सम व्योम विहारियों की काया की आवश्यक नस-नाड़ियों का एक प्रमुख अंग है। इसका कारण भी स्पष्ट है। राकेट आदि के भार में विशेष वृद्धि किए बिना, रेडियो संबंधी यन्त्र स्थापित कर पाना, इन छोटे-छोटे ट्रांसिस्टरों के प्रयोग द्वारा ही संभव हो सका। तथात्र, गतिशील और प्रकंपित वाहनों में, रेडियो की बत्तियों का खराब हो जाना असम्भव नहीं। पर ट्रांसिस्टर इस प्रकार की धक्का-मुक्की को सहज ही झेल लेता है। हजारों मील प्रति सैकेंड की गति से दौड़ने वाले आयोजनों में, ट्रांसिस्टर के इस गुण ने, वैज्ञानिकों की बड़ी सहायता की है। प्रदीप वाले उपकरणों की अपेक्षा ट्रांसिस्टर वाले उपकरणों में विद्युत शक्ति का प्रबन्ध भी नितान्त सरल है। छोटे-छोटे टार्च-सैल ही पर्याप्त होते हैं। और व्योमविहारियों में तो इनकी भी इतनी आवश्यकता नहीं। इनमें आजकल सौर (solar) बैटरियाँ प्रयोग की जाती हैं, जो सूर्य की धूप को विद्युत शक्ति में परिवर्तित कर सब प्रकार के काम चलाती हैं। राकेट विज्ञान के विकास में सर्वोच्च स्थान पाने वाला रूस, ट्रांसिस्टर के क्षेत्र में भी अमेरिका से बाजी ले चुका हो, यह असम्भव नहीं।

जिन तत्वों का ट्रांसिस्टर के निर्माण में प्रयोग किया जाता है, उन्हें वैज्ञानिक भाषा में अर्धचालक (Semi-conductor) कहा जाता है। इनका विद्युत-स्वभाव, चालक (conductors) और पृथक्कारी (Insulators) के बीच का होता है। आधुनिक विचारों के अनुसार, विद्युत्-धारा (current), इलेक्ट्रान का प्रवाह मात्र है। अपने विशेष स्वभाव के कारण, अर्ध चालकों में विद्युत-धारा क्षीण सी होती है और इसका सहज ही नियंत्रण हो सकता है। इसी नियम को, ट्रांसिस्टर का आधार बनाया गया है।

ट्रांसिस्टर के निर्माण में, मुख्यतया जर्मेनियम और सिलिकन नामक तत्वों का प्रयोग होता है। इन तत्वों में अन्य तत्वों की अत्यल्प मात्रा मिला देने से उपर्युक्त अवस्था उत्पन्न की जाती है। इस अल्पता की परिभाषा सम्भवतः रोचक हो। जर्मेनियम या सिलिकन के परमाणुओं (Atoms) में विजातीय तत्वों का परिमाण औसतन एक करोड़ में एक का होता है। इसके लिए पहिले, मूल तत्वों को इतना शुद्ध किया जाता है उनके एक अरब (१,००,००,००,०००) अणुओं में, विजातीय तत्वों का एक अणु भी नहीं रहने पाता। इस शोधन के लिए जोन रिफाइनिंग (Zone Refining) नामक प्रक्रिया का १९५४ में आविष्कार किया गया।

विशेष प्रकार की मिलावटों से, अर्ध-चालकों के P—प्रकार और N—प्रकार बनाये जाते हैं। दो विरोधी पदार्थों के टुकड़े परस्पर मिला देने से ऋजुकर (Rectifier) नामी उपकरण बन जाता है। विशेष रीति से एक टुकड़ा P या N का और जोड़ देने से N—P—N या P—N—P प्रकार का ट्रांसिस्टर बन जाता है। इन ट्रांसिस्टरों की

बीच वाली परत प्राय: बहुत पतली होती है। उच्च आवृत्तियों में प्रयोग के लिए यह परत जितनी पतली हो उतना ही उत्तम होगा। आजकल विशेष प्रणालियों द्वारा इस परत को इंच के लाखवें भाग तक का परिमाण दिया गया है।

प्रारंभ में जिस ट्रांसिस्टर का आविष्कार हुआ था, उसकी संरचना के कारण उसे विंदु संपर्क ट्रांसिस्टर (Point Contact) की संज्ञा मिली। पर १९५१ में शाँक्ले ने संयुज ट्रांसिस्टर का आविष्कार किया, जिसकी रचना पूर्ववर्ती उपकरण की अपेक्षा अधिक सरल है। अब अपने विशेष गुणों के कारण, कुछ सीमित प्रयोगों को छोड़ कर, आजकल प्राय: संयुज ट्रांसिस्टर ही अधिक इस्तेमाल होते हैं। इनके सम्बन्ध में यह तथ्य मनोरंजक है कि इनके आविष्कार से ३ वर्ष पूर्व स्वयं शाँक्ले ने ही, गणितीय आधार पर उस आविष्कार की भविष्यवाणी की थी।

ट्रांसिस्टर के विकास का इतिहास रोचक है। अर्ध चालकों की विद्यमानता का आभास, विख्यात वैज्ञानिक फैराडे को सिलवर सलफाइड पर परीक्षण करते समय, सन् १८३३ में ही मिल गया था। १८५५ तक तो ऐसे पदार्थों के अनेक लक्षण प्रकट हो चुके थे। २० वीं शती के प्रारम्भ में इनका ऋजुकरण (Rectification) के लिए प्रयोग किया जाने लगा—विशेष रूप में उच्च आवृतियों पर। गत महायुद्ध में, ऐसे ऋजुकरों की बड़ी आवश्यकता पड़ी और उन पर काम करने के बीच ही, ट्रांसिस्टर की संभावना का आभास मिलने लग गया था।

प्रारम्भ में ट्रांसिस्टर के निर्माण में इतनी अनिश्चितता थी कि लगभग तीन चौथाई इकाइयाँ रद्द करनी पड़ती थीं। पर उत्पादन के साधनों में शोध और परिष्कार के परिणाम-स्वरूप, वर्तमान स्थिति बहुत सुधर चुकी है। अपने छोटे आकार तथा कम विभव पर प्रयुक्त होने की क्षमता के कारण, ट्रांसिस्टरों का राकेटों और व्योमयानों में अवश्य ही प्रयोग होता है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि ट्रांसिस्टर केवल अन्तरिक्ष में ही लटक रहे हैं। नीचे धरती पर भी उनकी उपयोगिता की घनी छाया पड़ रही है।

उदाहरणार्थ अमेरिका, यूरोप तथा जापान में ऐसे रेडियो सैटों की आज कमी नहीं जो केवल ट्रांसिस्टरों का प्रयोग करते हैं। कहना न होगा कि ये रेडियो अत्यन्त छोटे और हल्के होते हैं। ट्रांसिस्टर के कारण "जेबी रेडियो" लोकप्रिय हो रहे हैं, और भारत के बाजारों में भी प्रकट हो रहे हैं। अनेक रेडियो तो आकार में इतने छोटे बने हैं कि दियासलाई की डिबिया में समा सकते हैं। अमेरिका, जापान और रूस में, टेलीविजन के सैटों को भी ट्रांसिस्टरों से बनाने के यत्न हो रहे हैं। जिन लोगों को सुनाई कम देता है, उनके लिए विज्ञान ने (श्रवण-साधन) हियरिंग एड का आयोजन कर रखा है। ट्रांसिस्टर द्वारा आजकल ये साधन, ऐनकों की कमानी में ही फिट किए जा सकते हैं।

[शेष पृष्ठ २०३ पर]

सर्पगन्धा

श्री रामेश वेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

सर्पगन्धा के नाम

संस्कृत में सर्प गन्धा, चन्द्रिका; हिन्दी में छोटी चांद, धवल बरुवा, सचाँद भरुवा, धनभरवा; हरिद्वार में सेत बड़वा; उड़िया में सानो चादो; बंगाली में चाँदड़, चन्द्रा; आसामी में अरचोन-तीता; मराठी में अडकई, करकई, हरकाई; कन्नड़ में गरुड़ पतुला, शिवनाभि; मलयालम में चुवन्न-एविलपोरी; तामिल में चिषान, अम्पेलपोदी, सोपन्ना मिल बोरी; तेलगू में पाताल गन्धी और लैटिन में राँउल्फिया सर्पेण्टाइना (Rauwolfia Serpentina Benth ex Kurz).

सोलहवीं शती के जर्मन चिकित्सक और पर्यटक राँवुल्फ के नाम पर इस पौदे का यह नाम पड़ा है।

परिचय

सर्प गन्धा का बहु वर्षी क्षुप सीधा, झाड़ीदार छः से अठारह इंच तक ऊँचा होता है। कहीं-कहीं दो से तीन फीट तक ऊँचा देखने में आता है। इसका काण्ड स्वात्रयी है। लाल रंग के पुष्प दण्डों पर सफेद फूल खिलते हैं। धीरे-धीरे फूलों का रंग लाल हो जाता है। दो-दो फल इकट्ठे जुड़े हुए पकने पर चमकीले काले रंग में परिणत हो जाते हैं। फल चौथाई इंच व्यास का होता है। फल के अन्दर एक या दो बीज होते हैं।

पत्ते तीन से सात इंच लम्बे, डेढ़ से ढाई इंच चौड़े, भाले की सी नोक वाले और चिकने होते हैं। इनके ऊपर का पृष्ठ चमकीला हरा तथा नीचे का पीला सा होता है। बगीचों में लगाये जाने वाले चाँदनी फूल के पत्तों के सदृश इसके पत्ते दीखते हैं। शाखा पर एक ही स्थान पर तीन-चार पत्ते गोलाई में लगते हैं। कभी-कभी पत्ते एक दूसरे के सम्मुख भी लगते हैं।

प्राप्ति स्थान

हिमालय की तलहटी में चार हजार फीट की ऊँचाई तक सर्पगन्धा का क्षुप मिलता है। पंजाब में यह हिमालय की तलहटी में सतलज से लेकर यमुना तक गरम और नम स्थानों में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में देहरादून से लेकर गोरखपुर तक ठंडे और छायादार स्थानों में, विशेष कर साल जंगलों में तथा देहरादून, शिवालक पर्वत श्रेणी और

रुहेलखण्ड के सब-हिमालयन भागों में उगता है। इन स्थानों में यह चार हजार फीट की ऊँचाई तक पहुँच गया है। पटना तथा भागलपुर इसके प्राप्ति स्थान कहे जाते हैं परन्तु प्रतीत होता है कि नेपाल की तराई से यह जड़ी इन स्थानों में जाती थी। सर्पगन्धा की जड़ों की ये मंडियाँ थीं और यहाँ से यह हमारे देश में फैल जाती थी। इसी से व्यापार में इसका स्रोत पटना और भागलपुर समझे जाते रहे। उड़ीसा में यह पौदा पुरी में पाया गया है। विलासपुर में कहीं-कहीं मिला है। बंगाल के उत्तरी भाग में जड़ें इकट्ठी की गई हैं। आसाम में यह कामरूप, नौगाँव, उत्तरी कछार, गोला पाड़ा, खासी तथा जयन्तिया पार्वत्य अंचल में और गारो पहाड़ में पाया गया है। पेगू और तेनास्सेरिम में ४००० फीट की ऊँचाई तक मिलता है। मद्रास में पश्चिमी घाट के प्रायः सारे जिलों में और आन्ध्र राज्य में जहाँ छाया और नमी है यह पौदा तीन हजार फीट तक पाया जाता है। बम्बई में कोकण, दक्षिण महाराष्ट्र देश और कनाडा के नमी वाले जंगलों में पाया जाता है। भारत के बाहर पाकिस्तान, अण्डमान, लंका, ब्रह्मा, स्याम, थाइलैण्ड, जावा तथा मलय प्रायद्वीप, कोचीन-चीन, फिलिपाइन द्वीपपुंज तक इस पौदे का विस्तार है।

इतने व्यापक क्षेत्र में फैला हुआ होने पर भी यह पौदा कहीं भी साधारण नहीं है और यह केवल असामूहिक रूप में उगता है। इसकी उत्पत्ति बहुत कम है। किसी भी स्थान से यह इतने परिमाण में नहीं मिलता कि व्यापारियों की माँग की पूर्ति कर सके। इसकी बढ़ती हुई माँग को ध्यान में रखते हुए इसकी खेती करना लाभदायक है।

लाभदायक धन्धा

अनुमान है कि एक एकड़ भूमि में दो हजार पौंड जड़ें प्राप्त की जा सकती हैं। प्रति पौंड तीन रुपये के हिसाब से इस उपज का दाम छह हजार रुपये बैठता है। किसानों और बाग बगीचे वालों के लिये सर्पगन्धा की खेती का धन्धा बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। अमेरिका तथा दूसरे देशों में इसकी बढ़ती हुई माँग को देखकर कहा जा सकता है कि अभी बीसों वर्षों तक चाहे जितनी पैदावार हो सब अच्छे दामों में खपती रहेगी। उत्पादकों को अपनी उपज को बेचने के लिये मण्डियों की खोज में जरा भी कठिनाई नहीं होगी।

पहिचान

बाजार में मिलने वाली सर्पगन्धा की जड़ें दो से छः इंच लम्बी और प्रायः एक इंच मोटी होती हैं। रंग मटमैला पीला सा भूरा। ऊपर की छाल कार्क की तरह नरम होती है जिस पर लम्बाई के रुख सीधी दरारें पड़ी रहती हैं। तोड़ने से जड़ छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटती है। अन्दर की सफेद लकड़ी में स्पंज की तरह बहुत छिद्र दीखते हैं। गंध कोई नहीं होती। स्वाद कड़वा है।

खेती

सर्पगन्धा की खेती के लिये नमीदार गरम स्थान अच्छा है। उत्तर भारत में हिमालय की तलहटी में और दक्षिण में नमी वाले गरम प्रदेशों में यह क्षुप अच्छा पनप

सकता है ।।मूली के लिये जिस तरह भूमि तैयार की जाती है उसी प्रकार इसकी खेती के लिये भूमि बनानी चाहिये। सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध हो तो मार्च में बीज बो देना चाहिए। सिंचाई की सन्तोषजनक व्यवस्था न होने पर पहली बार वर्षा होने पर ही नरसरियों में बीज डाल देने चाहिए। पन्द्रह दिन में बीज उग आते हैं। एक एकड़ के लिए चार पौंड बीजों की आवश्यकता होती है। सारे बीज उग आयें तो चार पौंड में अड़तीस हजार चार सौ पौधे निकल आयेंगे। बीस दिन में पौधों पर चार-चार पत्ते निकल आते हैं। स्थानान्तरित करने का ठीक समय यही है। पौधे लगाने से पहले अच्छी तरह जुताई करके खेत की मिट्टी भुरभुरी बना लेनी चाहिये। शाखाओं की कर्तनों से भी यह पौधा उग आता है। ताजी जड़ों के दो-तीन इंच लम्बे टुकड़े करके बो देने से भी पौधे जम जाते हैं। इसलिए, यदि बीज सुलभ न हों तो जड़ों और शाखाओं से उत्पत्ति की जा सकती है। बन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून के गौण वन सम्पत्ति उद्यान में पौधों को बन्नों पर और समतल भूमि में उगा कर देखा गया। परीक्षणात्मक खेती में दो साल के बाद पौदों को खोद लिया गया। श्री एस० वी० पुलाम्बेकर ने इनके विभिन्न भागों की तौल में अन्तर इस प्रकार पाया है।

पौदे के भागों की उपज (ग्राम में भार)

	पत्ते	मुख्य तना	शाखाएँ	जड़ें	योग
बन्ने पर उगाया हुआ पौधा	४.५	३.५	३.२	६.०	२०.२
समतल जमीन में उगाया पौधा	३.५	३.७	१.५	१४.०	२२.७

इस परीक्षण में यह देखा गया कि समतल जमीन पर उगाये गये पौधे की जड़ की अपेक्षा बन्ने पर उगाये पौधे की जड़ पचास प्रतिशत अधिक बैठी, यद्यपि पौधे का कुल भार दोनों उदाहरणों में लगभग एक समान है। चिकित्सा की दृष्टि से जड़ का विशेष महत्व है। इसलिये अधिक उपज प्राप्त करने के लिये हमारी सम्मति में बन्नों पर बोना अधिक अच्छा रहेगा। अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में जोर की वर्षा बन्ने की मिट्टी को बहा कर भूमि को समतल कर देती हैं और जड़ें नंगी कर देती है। इसमें पौधे को हानि से बचाने के लिए मिट्टी को बार-बार जड़ों के चारों ओर चढ़ा देना चाहिए। हमारी सम्मति में, पैदावार अधिक उन्नत और प्रचुर प्राप्त करने के लिये इस्तेमाल किये गये खेती के विविध तरीकों का बहुत महत्व है। इसलिये बन्ने पर और समतल पर बोने के परीक्षणों को अधिक बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए। पौधे लगाने के बाद खेत को सींचना चाहिए। पहले साल ऋतु में तीन निलाइयों की आवश्यकता होगी। दूसरे बरस पौधे संभल जाते हैं और निलाई तथा सिंचाई की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। सूखे मौसम में सींचना अत्यावश्यक होता है। भूमि अच्छी हो और सार संभाल ठीक हो तो दो वर्ष में जड़ें खोदने योग्य हो जाती हैं। बरसात की समाप्ति पर खोदना अच्छा रहता है। सर्दियों के सूखे मौसम आने से पूर्व भूमि में जब तक वर्षा की नमी विद्यमान हो तभी जड़ें खोद लेनी चाहिए क्योंकि तब नरम भूमि को खोदना सरल होता

है। बाजार में यद्यपि मोटी जड़ों की माँग है परन्तु बारीक जड़ों को भी इकट्ठा कर लेना चाहिए क्योंकि उनमें भी क्रियाशील तत्व विद्यमान होते हैं।

वन-अनुसन्धान-शाला में किये गये बाद के परीक्षण बताते हैं कि पत्तों में तथा पौधे की डंडियों में भी क्रियाशील तत्व विद्यमान हैं। इसलिए खेती में ये भी सम्भावनाएँ हैं कि जड़ें खोदने के स्थान पर पत्ते और टहनियों को समय-समय पर औषध प्रयोजन के काट लिया जाय। इस प्रकार सम्भवतः अधिक पैदावार प्राप्त की जा सके।

इतिहास

चिकित्सा की भारतीय पद्धति के ग्रंथों में सम्भवतः केवल सुश्रुत संहिता में एक स्थान पर सर्पगंधा का उल्लेख मिलता है। अमानुषोपसर्गाध्याय में मानसिक रोगों को दूर करने वाले अपराजित गण में सुश्रुत ने इसे पढ़ा है। बनारस, बिहार और बङ्गाल के साधारण लोग प्राचीन काल से उन्माद और अनिद्रा में यद्यपि इसका उपयोग करते रहे हैं परन्तु प्रतीत होता है कि आयुर्वेद के विद्वान लेखकों का ध्यान इसने आकर्षित नहीं किया क्योंकि चिकित्सा साहित्य में यह प्रवेश नहीं पा सकी।

विषैले सरीसृपों के दंश और कीड़ों के डंक, ज्वर, पेचिश और आँतों के दूसरे वेदनामय रोगों में भी सर्पगंधा का भारत और मलय प्रायद्वीप में प्राचीन समय से बहुत उपयोग होता रहा है। १५६३ में गार्सिया दा आर्टा ने इसे भारत की अग्रणी और प्रशंसनीय औषधि लिखा था। दीपक रूप वह इसकी संतुति करता है। वह बताता है कि सर्पदंश में यह विशेष उपयोगी है और इस प्रयोजन के लिए यह यूरोप को ले जाई जाती है।

सर्पदंश में प्रयुक्त होने वाली जड़ियों में सर्पगन्धा यद्यपि भारत की पुरानी जड़ी है और इसके अतिरिक्त भी यह अनेक रोगों में उपयुक्त होती थी। परन्तु प्रतीत होता है कि पुर्तगालियों के व्यापार में यह यूरोप नहीं पहुंची थी, यद्यपि वे इसे उन बहुत से स्थानों से प्राप्त कर सकते थे जहाँ उनका व्यापार था। बाद में, डच लोग इसे मलक्का ले गये और यह रम्फियस की "मस्तिलो की जड़ी" बन गई। रम्फियस कहता है कि उसके समय में यह भारत और जावा में प्रत्येक प्रकार के विष के उपचार हेतु दी जाती थी। अन्तः और वाह्य दोनों दोनों तरह से इसका प्रयोग होता था। जड़ का काढ़ा बना कर भीतरी प्रयोग में और जड़ का तथा ताजे पत्तों का लेप बना कर बाहरी प्रयोगों में पैरों के तलवों पर लगाया जाता था। वह कहता है कि साँपों के विषों के लिए यह उपयोगी है और यहाँ तक कि यह आश्चर्यजनक जड़ी पिलाने से फनियर के दंश को भी विष रहित कर देती है। उसने कहा है कि ज्वरों में, हैजे और पेचिश में इस दवा का व्यापी रूप से अन्तः प्रयोग किया जाता है। फूले की औषधि के रूप में पत्तों का रस आँखों में डाला जाता था।

बर्मन ने अपने थिजौरस जिलेनिकस में सर्पगंधा का विवरण दिया है। द बौन्द (De Bondt) बताता है कि वह बुखारों को उतारती है।

सोलहवीं-सत्रहवीं शती के युरोपियनों ने सर्पदंश में इसकी जो ख्याति सुनी थी वह धीरे-धीरे लुप्त होती गई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी यद्यपि हमारे देश के वैद्य इसका उपयोग जानते थे परन्तु सर्वथा भिन्न रूप में। पागल की जड़ी के नाम से इसने उनमें अच्छी प्रसिद्धि पा ली थी और उन्माद में इसका प्रयोग जो जान गये थे उन्होंने इसे गोपनीय रखा। बिहार और उत्तर प्रदेश में यह "पागल की दवा" के नाम से बिकती थी और पन्सारियों तथा देशी चिकित्सकों में इसका व्यवहार साधारण बात थी। १६३१ में इंडियन मेडिकल वर्ल्ड (जुलाई, जिल्द २, अंक ५) में कलकत्ते के प्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक डा० गणनाथ सेन और डा० कार्तिकचन्द्र बोस के नाम से एक लेख छपा था जिसमें डा० सेन ने उस रहस्यपूर्ण जड़ी के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण बातें का उद्घाटन करते हुए बताया था कि कठिनाई से उन्होंने इसका रहस्य जाना था। यह जड़ जिस पौधे से प्राप्त की जाती थी उसे उन्होंने कई वर्ष पूर्व ठीक ठीक पहिचान लिया था। तभी से वे उसे अपने रोगियों पर उल्लेखनीय सफलता के साथ खूब प्रयोग करते रहे। अत्यन्त कड़वी होने के कारण वे उसे गोली या टिकिया के रूप में देते थे। उसका नाम उन्होंने महेश्वर चक्रिका रखा हुआ था। रक्त दबाव की इस मूल्यवान और सुरक्षित दवा को ढूँढने में मालूम होता है कि डा० सेन को सब से पहले सफलता मिली। यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्व या पश्चिम की किसी भी दवा से इस रोग में लाभ नहीं होता। डा० सेन के निर्देश पर डा० बोस ने अपने सहयोगिओं के साथ उस दवा के द्रव्यगुण सम्बन्धी कार्यों का अध्ययन प्रारम्भ किया। इस प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा में सर्पगन्धा को समाविष्ट करने का श्रेय डा० गणनाथ सेन और डा० कार्तिक चन्द्रबोस को मिलता है। बाद में कर्नल रामनाथ चोपड़ा, डा० मुकर्जी आदि ने भी इस पर गवेषणा की और सभी ने जड़ को उच्च दबाव के लिए उपयोगी स्वीकार किया।

उपयोगी भाग

चिकित्सा में मुख्यतया मूल काम आती है परन्तु पत्ते तथा शाखाएँ भी काम में लायी जा सकती हैं। मात्रा मूल-रक्त का दबाव कम करने के लिए दो से पाँच रत्ती, नींद लाने के लिए आठ से पन्द्रह रत्ती, पागलपन के लिए डेढ़ से तीन माशा है। पत्ते और शाखाओं में क्रियाशील तत्व जड़ों की तुलना में लगभग आधे परिमाण में होता है। इस लिये उन्हें जड़ से दुगुने परिमाण में देना चाहिए।

रासायनिक संरचना

आशुतोष दत्त, जे० सी० गुप्त, सुधामयी घोष और बी० एस० कोहली (इण्डि०, जर्न० फार्मे०, जि० ६, अंक २, १६४७, पृ० ५४-५७) ने कलकत्ता के स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसन में की गई परीक्षाओं के आधार पर विश्लेषण के तुलनात्मक अध्ययन में दिखाया है कि आसाम से प्राप्त सर्पगन्धा में एलकोहल में विलेय निस्सार उच्चतम थे और बंगाल

के नमूने में निम्नतम। एलकोहलीय निस्सारों के जलीय विलेय निस्सारितों में सब एल्कॉलाइड विद्यमान थे और जलीय अविलेय भाग में तैलोद्यास (ओलियोरेजिन्स) थे। जलीय निस्सारण में से एल्कॉलाइड और उद्यास (रैजिन्स) पृथक कर लिए जाने पर यह औषधीय गुणों से शून्य हो जाता है। तैलोद्यासों (ओलियोरेजिन्स) को फिर पेट्रोलियम ईथर की सहायता से उद्यासमय (रेजिन्स) और तैलीय खण्डों में अलग किया गया। तैलीय खण्ड में कुछ क्षोभक गुण देखे गये जब कि उद्यास (रेजिन्स) खण्ड ने औषध का अपना प्रारूपिक (टिपिकल) शामक और निन्द्राजनक कार्य दिखाया। उद्यास (रैजिन) खण्ड फिर दो खण्डों में विभक्त किया गया।

सिद्दीकी और सिद्दीकी (जर्नल इण्डि० केमि० सोसा०, १६३१ जि० ८, पृ० ६६७) ने रासायनिक विश्लेषण से सूखी जड़ में पाँच मणिभीय एल्कॉलाइड प्राप्त किये जिनका दो समूहों में श्रेणीकरण किया। इन अन्वेषकों ने इन को विशिष्ट नाम भी दे दिये। पहला अजमलीन समूह है जिसमें तीन सफेद मणिभीय निर्बल भस्में थीं। उस समूह के तीनों एल्कॉलाइड के भौतिक गुण इस प्रकार हैं :—

१. अजमलीन—१५८-°६०° पर पिघलता है। यह ०.१ प्रतिशतक पाया गया है।

२. अजमलिनीन—१७०°-८१° पर पिघलता है। ०.०५ प्रतिशतक पाया गया।

३. अजमलिसीन—इसका गलनांक २५०°-५२° है। यह ०.०२ प्रतिशतक मिला।

दूसरा सर्पेण्टाइन समूह है जिसमें दो चमकीली पीली मणिभीय तीव्रतर भस्में थीं। इनके भौतिक गुण ये हैं :—

१. सर्पेण्टाइन -१५३°-५४° पर पिघलता है। ०.०८ प्रतिशतक प्राप्त किया गया।

२. सर्पेण्टाइनीन—२६३°-२६५° पर पिघलता है और विवद्ध हो जाता है। यह भी ०.०८ प्रतिशतक मिला।

इनके साथ ही निम्नलिखित संघटक भी ज्ञात किये गये—(क) एक तरुसान्द्रव (Phytosterol) (ख) अम्लिक अम्ल। (oleic acid)

कार्नल रा० ना० चोपड़ा के अनुसार एल्कालाइडों के अतिरिक्त जड़ में उद्यास (Resin) का काफी परिमाण और निशास्ता होते हैं। राख लगभग आठ प्रतिशतक प्राप्त होती है जिसके मुख्य घटक पोटासियम कार्बोनेट, फासफेट, सिलीकेट और अत्यल्प लौह तथा मैंगनीज हैं। बाद के अन्वेषकों ने बताया है कि अजमलीन और सर्पेण्टाइन समूहों में उपर्युक्त एल्कालाइडों के अतिरिक्त कुछ और भी एल्कालाइड विद्यमान हैं। अमेरिका तथा दुनियाँ की अन्य अनेक प्रयोगशालाओं में अभी बड़े परिमाण में शोध कार्य हो रहा है।

स्विस प्रयोगशाला में १९४७ से १९५२ तक जड़ पर शोध करते हुए डॉक्टर इ० एम० श्लिटलर और उनके सहयोगियों ने रिसर्पीन नाम का एक नया एल्कालाइड पृथक किया है। यह मणिभीय है। इसका विश्लेषण एक पेचीदी प्रक्रिया है। प्राप्त दवा जड़ की अपेक्षा एक हजार गुणा अधिक क्रियाशील है। रक्त दबाव को नीचे लाने में रिसर्पीन का प्रभाव यद्यपि मन्द है परन्तु इसका कोई विषैला प्रभाव नहीं होता।

सिद्दिकी और सिद्दिकी (जर्नल ऑफ इण्डिकेमि सोसा०, ८, १९३१) ने सूखी जड़ों में एल्कलॉइडों का कुल परिमाण ०.५ प्रतिशत प्राप्त किया था। दत्त और दूसरों (इण्ड० ज० आफ फार्मेसी, जि० ९, १९४७, पृ० ५५) के अनुसार १·२१ से १·३६ प्रतिशतक तक भिन्न-भिन्न होता है। बम्बई (१९४८-४९) में औषधि के एल्कलाइडों पर कार्य किया गया। अलग-अलग किये गये तीन परीक्षणों में एल्कलाइडों का कुल परिमाण १. ४५ प्रतिशत, १·५ प्रविशत और १·४ प्रतिशत पाया गया। बिहार के प्राप्त जड़ों में एल्कलाइडों का कुल परिमाण १·४ से १·५ प्रतिशतक पाया गया और देहरादून से प्राप्त जड़ों में परिमाण १·९ प्रतिशतक था। संपूर्ण जड़ की अपेक्षा जड़ की छाल में एल्कलायड सामान्यतया आठ से दस गुना अधिक होता है।

विश्लेषणों की इन रिपोर्टों में जड़ों का प्राप्ति स्थान दिया है वह सम्भवतः उनके व्यापारिक स्रोत का सूचक है और इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि परीक्ष्य जड़ें किस किस स्थान पर उगे हुए पौधों से ली गई थीं। सम्भव है कि स्थान भेद से एल्कलॉयडों की प्रतिशतकता में अन्तर पड़ जाय। देहरादून की वन अनुसन्धानशाला (१९५०) ने अपनी वाटिका में उगाई दो वर्ष की आयु की जड़ों को सुखा कर विश्लेषण किया था जिसमें एल्कलॉयडों का कुल परिमाण ०.३६ प्रतिशत ही निकला था। प्रतिशतत्व में इस कमी का कारण सम्भवत यह था कि ये जड़ें बहुत पतली थीं व्यास में केवल १/८ इच, जब कि बाजार में सामान्यता एक इंच व्यास की मिलती हैं।

कार्य तथा भाव-प्रयोगशालाओं के परीक्षण

दवा के क्रियाशील पदार्थों के द्रव्यगुण सम्बन्धी कार्य अब तक सन्तोषजनक रूप से नहीं जाने जा सके हैं। सिद्दिकी के अनुसार जड़ों से पृथक प्राप्त किये गये सफेद और पीले क्रियाशील तत्वों के शरीर पर कार्य करने की दृष्टि से दो भिन्न-भिन्न समूह बनते हैं। पहला अजमलीन समूह हृदय, श्वसन और चेताओं पर सामान्य अवसादक का कार्य करता है। दूसरा सर्पेण्टाइन समूह श्वसन को स्तम्भित (पैरालाइज) करता है और चेताओं को अवसन्न करता है परन्तु हृदय को उद्दीप्त करता है। ये पर्यवेक्षण मेंढकों पर हुए परीक्षणों से प्राप्त किये गये हैं और इसलिये उच्चतर प्राणियों पर ये परिणाम उसी रूप में पूर्णतया लागू नहीं हो सकते। सर्पेण्टाइन समूह के एल्कलायडों की घातक मात्रा वही पाई गई जो अजमलीन समूह की थी। यह मात्रा मेंढक के प्रति किलोग्राम भार के लिये थी। चूहों के लिये घातक मात्रा चार गुना अधिक थी। सेन और बोस (इण्डि० मेडि० वर्ल्ड, १९३१, जि० २, पृ १९४) ने दवा के भैषजिकीय प्रभाव का बिल्ली

जैसे बड़े प्राणियों पर अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि सम्पूर्ण औषधि का जलीय निस्सार जब प्राणियों की शिरा के अन्दर सुई द्वारा डाला गया तो कोई विशेष प्रभाव नहीं पैदा हुआ। उद्यास (रेजिन्स) को भी अकेले दिया गया परन्तु गर्भाशय की मांस पेशियों को हलका सा उद्दीपन देने के अतिरिक्त इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं देखा गया। उनके द्वारा पृथक किये एल्कलाइडों ने बहुत सुनिश्चित परिणाम दिखाये। रक्त दबाव कुछ गिर गया, श्वसन कुछ तेज हो गया, हृदय की मांसपेशी अवसन्न हो गई और छोटी आँतों को तथा गर्भाशय की मांसपेशियों जैसी सरल मांसपेशियाँ शिथिल हो गई। मुख द्वारा लेने पर या अन्तस्त्वक् और अन्तर्मांस सूचीवेधों द्वारा शरीर में डालने पर दवा क्षोभक नहीं है। राय (पटना ज० ऑफ़ मेडि०, १९३१, अक्टूबर) ने पाया कि दवा की साधारण मात्राओं से प्रतिक्षेपों (रिफ़लेक्सेज) पर वेदना की अनुभूति पर कोई प्रभाव नहीं होता। यदि मात्रा बड़ी है तो इससे गहरी नींद आती है। प्रतिक्षेपों तथा वेदना की अनुभूति कम हो जाती है और श्वास-केन्द्र के स्तम्भ के कारण श्वासावरोध से मृत्यु हो जाती है। श्वसन के बन्द होने के बाद भी कुछ समय तक हृदय धड़कता रहता है।

अजमलीन, सर्पेण्टीन और सर्पेण्टाइन एल्कलाइडों के भेषजिकीय कार्य का तुलनात्मक चौपड़ा और घोष ने किया। इन के द्वारा प्राप्त हुए परिणाम महत्वपूर्ण हैं। रासायनिक अध्ययन रचना में अजमलीन जैसे सर्पेण्टाइन सादृश्य रखती है भेषजिकीय कार्य में भी वैसी ही है। केन्द्रीय चेता-संहिति पर दोनों का अवसादक कार्य होता है और ये रक्त दबाव को गिराते हैं, जब कि सर्पेण्टनाइन बढ़ाता है। विशेष रूप के बनाये गये एक प्रदोललिख (औसिलोग्राफ) से किये गये परीक्षण दिखाते हैं कि चेता की प्रेरणा की बारम्बारता के निर्मोचन को अजमलीन कम करती है।

बिल्लियों को खिलाने के परीक्षण दिखाते हैं कि पृथक-पृथक किसी एक एल्कलाइड की अपेक्षा संकलित एल्कलाइडों का निद्राकर प्रभाव अधिक स्पष्ट है।

नींद लाने वाली दवा

उन्माद, रक्तचाप और वहम की दवा के रूप में इस पौदे ने महत्व प्राप्त कर लिया है। उन्माद की रामबाण दवा के रूप में जनसाधारण में इस की लोकप्रियता यह बताती है कि इस में शामक गुण पर्याप्त है। प्रतीत होता है कि बिहार के लोगों को इस दवा का निद्राकर प्रभाव ज्ञात था। कहते हैं कि शिशुओं को नींद लाने के लिये इस दवा को देने की प्रथा अब भी उस प्रदेश में कई स्थानों पर है। अमेरिका में जहाँ रक्त का उच्च दबाव किसी भी देश की तुलना में अधिक है सर्पगन्धा का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक पाया गया है।

रक्त के उच्च दबाव में

तीव्र मतिविभ्रम लक्षणों के उन्माद और उच्च दबाव के रोगियों पर सैन और बोस ने इसकी परीक्षा की। जड़ के चूर्ण की बीस से तीस ग्रैन की मात्राएँ दिन में दो बार देने

से न केवल शामक प्रभाव देखा गया परन्तु रक्त दबाव भी घट गया था। एक सप्ताह में ही रोगी की संज्ञाएँ फिर पहले की भाँति साधारण अवस्था में आ जाती हैं यद्यपि किसी-किसी उदाहरण में चिकित्सा अधिक दीर्घ काल तक करनी होती है। उच्च दबाव के रोगियों में इस दवा को सेन-बोस ने बहुत सन्तोषजनक पाया और उनका कहना है कि इस के प्रयोग में वाहिनियों के अन्दर परिवर्तन भी नहीं देखे गये।

चिकित्सा सम्बन्धी गुणों में सर्पगन्धा की प्रतिनिधि सर्पीना टिकियें डाक्टर आर० डब्ल्यू० विल्केन्स और डा० डब्ल्यु० ई० जइसन ने उच्च तनाव के सौ से अधिक रोगियों को खिलाई। इन की रिपोर्ट आठ जनवरी १९५३ के न्यू इंग्लैंड जर्नल आफ मेडिसिन में प्रकाशित हुई हैं। रिपोर्ट सूचित करती है कि टिकिएँ शयन पैदा करती है और नींद को सुखद बनाती हैं। यह देखा गया कि इन के प्रयोग में कभी-कभी दुःस्वप्न हो जाते हैं। प्रतीत होता है कि टिकियें सुचारू रूप से सहन हो जाती हैं। दवा के स्थायी प्रभाव छह सप्ताह से कम समय में पूर्णतया नहीं प्रगट होते। प्रगट रूप में यह ऐसी दवा नहीं है कि सेवन की आदत पड़ जाय। उच्च तनाव की अधिक शक्तिशाली दवाओं के सहायक के रूप में भी इसे दे सकते हैं। इसके सेवन काल में अन्य किसी प्रकार के भी गम्भीर प्रभाव उत्पन्न होते हुए रिपोर्ट नहीं किये गये यद्यपि इन अन्वेषकों ने पाया कि यह दिल की धड़कन और नाक में अधिरक्तता (congestion) पैदा कर देती है, भार बढ़ाती है और आँतों का कार्य जरा सा बढ़ा देती है।

पागलपन के कैसे रोगियों को दें ?

उन्माद से सब रोगियों को सर्पगन्धा से लाभ नहीं होता। खूब उत्तेजित और बलवान रोगी पर उसका प्रयोग करना चाहिए। दुर्बल, निस्तेज और मनोवसादग्रस्त रोगी पर सावधानी से इसका प्रयोग करना चाहिए। इन रोगियों के रक्त के दबाव की परीक्षा पहले करनी चाहिए। दबाव यदि अधिक हो तभी सर्पगन्धा देनी चाहिए। जिन उन्माद रोगियों का रक्त दबाव कम हो उनको इससे लाभ नहीं होता।

अब तक प्राप्त विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्माद में और केन्द्रीय वात-संस्थान की विक्षुब्ध अवस्थाओं में दिये जाने वाली शामक दवाओं की सूची में यह मूल्यवान सिद्ध होगी। दवा की उपयोगिता को पूर्णतया स्थापित करने से पूर्व इसका द्रव्य गुण सम्बन्धी तथा प्रयोगशाला सम्बन्धी अध्ययन बड़े परिमाण में करना आवश्यक है।

बुखार, गर्भाशय के रोग

ज्वरहर के रूप में यह बहुत से स्थानों पर दी जाती है। बुखार और पैत्तिक विकारों में पानी के साथ दी जाती है। प्रबल ज्वर में देने से बैचैनी और मोह दूर होते हैं, अच्छी नींद आती है, प्रलाप दूर होता है, आँखों का वर्ण स्वाभाविक होता है और साथ ही ज्वर का वेग भी कम होता है। यह भी कहा जाता है कि गर्भाशयिक संकोचों को यह बढ़ाती है

और गर्भ को निकालने में सहायता करती है। बुखारों में और प्रसवोत्तरकालीन अवस्थाओं में इसकी उपयोगिता के दावों की पूर्णतया पुष्टि नहीं हुई। इस दवा को और अधिक बड़े पैमाने पर परीक्षा करना उपयोगी होगा।

पेट के रोग

जावा में यह पुतेपन्दक के नाम से बेची जाती है। यहाँ पर उसे पान में रख कर पेट के दर्द और अन्य कष्टों में चबाते हैं। यह उदर कृमिहर समझी जाती है।

विषों में

पैमल (ए मैनुअल आफ पायजनस प्लाण्ट्स, १६११) ने मत्स्याविष के लिए इस पौधे के प्रयोग का उल्लेख किया है परन्तु चोपड़ा और दूसरे लेखकों ने भारत में इस औषधि को इस प्रयोजन के लिए व्यवहार करते हुए नहीं पाया। कहते हैं कि सर्पगन्धा को खाकर नेवला अपने को साँप से युद्ध में प्रतिरक्षित बना लेता है।

त्वचा के रोगों में यह अनेक तरह से बरती जाती है।

(शेष पृष्ठ १६३ का)

गणित के जटिल प्रश्नों आदि के उत्तर प्राप्ति के निमित्त बने कम्प्यूटरों में, आधुनिक वायु परिवहन संबंधी यंत्रों और सैनिक उपयोग के अनेक उपकरणों में भी ट्रांसिस्टरों का बहुलता से प्रयोग हो रहा है। स्मरण रहे कि ट्रांसिस्टर रेडियो की बत्तियों की अपेक्षा महँगे हैं।

पर उधर ट्रांसिस्टर के निर्माण के क्षेत्र में, यांत्रिक साधनों के समावेश के कारण, कुछ ही वर्षों में, प्रदीपों से भी सस्ते ट्रांसिस्टरों की उपलब्धि नितान्त प्रत्याशित है।

भास्कराचार्य और लीलावती

विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री एम० एस-सी०, साहित्यरत्न, साहित्य सुधाकर

आजकल के प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में भी बड़े बूढ़े अक्सर यह कहते हुये हुये पाये जाते हैं कि "बेटा लीलावती पढ़ लो तो न केवल पेड़ों की पत्तियाँ वरन् आकाश के तारे और सर के बाल तक गिन सकते हो। यदि भृगुसंहिता पढ़ लो तो भूत के और भविष्य के सात-सात जन्मों तक का हाल जान सकते हो। जो लोग ये दोनों ग्रन्थ पढ़ लेते हैं वे मानों सर्वज्ञ ही हो जाते हैं।" इन शब्दों से इन ग्रन्थों के प्रति भारतीय जनता की श्रद्धा एवं आदर की भावना आंकी जा सकती है। वस्तुतः मेधावी आचार्य भास्कर ने अपने ज्ञान एवं प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व एवं पांडित्यपूर्ण अपूर्व ग्रन्थों के सृजन द्वारा भारतीय जनता के हृदय पर श्रद्धा एवं विश्वास की ऐसी धाक जमा दी थी कि ये ग्रन्थ सात शताब्दियों तक अर्थात् अंग्रेजों के आने तक अनवरत रूप से जन-मानस पर ज्योतिष एवं गणित के क्षेत्र में एकछत्र शासन करते रहे। परवर्ती पंडितों द्वारा इनके ग्रन्थ के कई भाष्य किये गये एवं संसार की विभिन्न भाषाओं में उनके अनुवाद भी हुये। विशेषतः लीलावती की जितनी टीकाएं एवं अनुवाद हुए उतने सम्भवतः किसी भी अन्य भारतीय ज्योतिष ग्रन्थ के नहीं हुये। इन ग्रन्थ में भास्कराचार्य द्वारा अत्यंत कुशलतापूर्वक प्रस्थापित सूत्रों एवं सिद्धान्तों का लोग अन्धानुकरण करने लगे एवं उनके समस्त सिद्धान्त असंशोधनीय माने जाने लगे। डा० गोरख प्रसाद के मतानुसार एक समय ऐसा भी आया जब कि "गणित में उन्नति करना ही पाप माना जाने लगा।" यही कारण है कि भास्कराचार्य के पश्चात् भारतीय गणित के क्षेत्र में कोई भी नवीन आविष्कार नहीं हुआ और हम लोग पाश्चात्य विज्ञान से कोसों दूर पिछड़ गये। प्रश्न है कि क्या वास्तव में "लीलावती" एवं अन्य ग्रन्थ इतने सम्मान, श्रद्धा एवं विश्वास के पात्र हैं ? आखिर इसमें क्या विशेषता है ? तो, आइये हम इस प्रश्न का समालोचनात्मक हल खोजें।

लीलावती का विषयवस्तु एवं आधुनिक दृटिकोण से इसकी समालोचनाः—

आजकल गणित ही क्या, विज्ञान के सभी क्षेत्रों में कल्पनातीत उन्नति हो जाने से प्राचीन ग्रन्थों की कई बातें हमें उपेक्षणीय एवं महत्वहीन प्रतीत होती हैं। लीलावती भी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है, वह दशवीं शताब्दी में उस समय लिखा गया था जब कि गणित अपने शैशवकाल में था। अतएव लीलावती के महत्व का यदि अनुभव करना हो तो हमें अपने आपको दसवीं शताब्दी के एक पाठक या विद्यार्थी के रूप में रखना

होगा। इस कल्पना के संदर्भ में ही हम इस ग्रन्थ में आये वाक्यों, सिद्धान्त एवं सूत्रों तक पहुँचनेकी की गई अपने महर्षियों एवं स्वयं भास्कराचार्य की कठिन साधना एवं अध्य-वासाय का आधुनिक दृष्टिकोण से समन्वयात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे। उस समय,जबकि विश्व के अन्य भागों में गणित एवं अन्य विषय शैशव अवस्था में थे, भास्कराचार्य ने गणित के पूर्वसंचित उत्कृष्ट भारतीय ज्ञान को अपनी प्रतिभा से गौरवान्वित कर एवं लीलावती आदि ग्रन्थों में इसे श्रेष्ट रूप में प्रस्तुत कर ऐतिहासिक दृष्टि से वास्तव में अद्वितीय कार्य किया है। इतना ही नहीं, गणित के उन कई सिद्धांतों को एवं अध्यायों को जिन्हें साधारण जनता एवं विद्यार्थीगण आधुनिक समझते हैं, भास्कराचार्य, दसवीं शताब्दी में ही या तो स्पष्ट एवं विस्तृत रूप में अथवा बीजात्मक एवं सांकेतिक रूप में अपने अमर ग्रन्थों में अभिव्यक्त कर चुके थे। आइये, हम इस तथ्य का दिग्दर्शन करें।

साधारण विद्यार्थी समझते हैं कि क्रमचय-उपचय (Permutations, Combinations), अंकगणितात्मक एवं ज्यामितीय श्रेढ़ियाँ (Progression), ठोस ज्यामितीय पदार्थों के आयतनों एवं क्षेत्रफलों का आनयन (Mensuration of Solids) आदि विषय या तो आधुनिक हैं या पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ही हमें प्राप्त हुए हैं। लेकिन यह सत्य नहीं है।

निम्नलिखित मनोरंजक उदाहरण भास्कराचार्य की प्रभावशाली कवित्वपूर्ण शैली का तो परिचय देता ही है किन्तु उनके क्रमचय-उपचय विषयक ठोस ज्ञान को भी प्रदर्शित करता है।

पाशांकुशाहि डमरूककपालशूलैः
खट्वाङ्गशक्तिशरचापयुतैर्भवन्ति।
अन्योन्य हस्त कलितैः कतिमूर्ति भेदाः
शंभोर्हरेरिव गदारि सरोज शंखैः ॥१३५ उदाहरण॥

अर्थात् महादेवजी की मूर्ति की दस भुजाएँ हैं। इन भुजाओं में पाश, अंकुश, सर्प, डमरू, कपाल, त्रिशूल, खट्वाँग, शक्ति, वाण एवं चाप, ये दस शस्त्र हैं। यदि मूर्ति इन शस्त्रों को भिन्न प्रकार के उलटपलट कर विभिन्न हाथों में धारण करे तो कुल कितने भेद होंगे। इसी प्रकार चतुर्भुज विष्णु के शंख, चक्र, गदा एवं पद्म के परिवर्तन से मूर्ति के कितने संभाव्य भेद होंगे।"

उत्तर प्राप्त करने के लिये भास्कराचार्य ने सूत्र दिया है। इस प्रणाली का अनुगमन करने पर उत्तर क्रमशः शिवजी की मूर्तियां ३६२८८०० एवं विष्णुजी जी की २४ मूर्तियां आती हैं।

आगे चल कर भास्कराचार्य ने उपचय के प्रश्नों में संशोधनात्मक सूत्र दिया है जिसमें दो या अधिक समान वस्तुओं अथवा समान अक्षरों एवं संख्याओं की उपस्थिति से होने वाली अशुद्धि को हटा दिया गया है। यह सूत्र उनकी तीक्ष्ण बुद्धि की गहराई का प्रतीक है तथा ये प्रश्न आधुनिक प्रश्नों से किसी भी दशा में हीन नहीं हैं। इस संबन्ध में और कई मनोरंजक प्रश्न दिये गये हैं। पाठकगण मूल ग्रन्थ में इन्हें पा सकते हैं।

श्रेढ़ियाँ (Progressions)

अंकगणितात्मक एवं ज्योतिषीय श्रेढ़ियों पर सूत्र दिये गये हैं। इन सूत्रों की सहायता से प्रश्नों के उत्तर ठीक निकलते हैं। हाँ, इनके आधार पर की गई गणना कुछ क्लिष्ट और आज के सूत्रों की अपेक्षा अधिक लम्बी है। उदाहरणार्थ, ज्यामितिक श्रेणी पर किये गये एक प्रश्न का अनुवाद देखिये।

"किसी दाता ने प्रथम दिन दो कौड़ी देकर यह प्रतिज्ञा की कि बीस दिन तक प्रतिदिन दूना धन दूँगा तो बताओ उसने कुल कितना धन दिया।"

भास्कराचार्य ने स्वयं इसका लम्बा चौड़ा हल प्रस्तुत किया है। सूत्र की उपपत्ति नहीं दी है। इस प्रश्न का उत्तर २१४७४८३६४६ कौड़ियां हैं। अथवा यदि कौड़ियों को तत्कालीन वित्त इकाइयों में परिवर्तित किया जाय तो १०४७५७ निष्क, ६ द्रम्भ, ६ पण २ काकिणी एवं ६ कौड़ी यह उत्तर हुआ। इसी प्रकार अन्य प्रश्न भी हैं।

पायथागोरस का प्रमेय तथा सापेक्ष गति

गणित के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक श्री केजोरी (Cajori) ने एक स्थल पर लिखा है कि भास्कराचार्य ने दो स्थानों पर पायथागोरस के समकोण त्रिभुज के प्रमेय पर स्वयं की पूर्णतया मौलिक किन्तु केवल रचनात्मक उपपत्तियां दी हैं। बाद में चलकर उन्होंने अपने इस कथन पर शंका भी प्रगट की है किन्तु जहाँ तक लीलावती ग्रंथ का प्रश्न है, इसमें इस प्रयोग विशेष से सम्बन्धित बहुत से प्रश्न दिये गये हैं। उपपत्तियां तो लीलावती में नहीं हैं लेकिन प्रश्नों की प्रचुर संख्या भास्कराचार्य की मौलिकता को प्रतिपादित करती हैं। इन प्रश्नों में से दो मनोरंजक एवं आपेक्षिक रूप से कठिन प्रश्नों को देखिये।

"एक, सौ हाथ ऊँचा ताड़ का वृक्ष था। उस पर दो बन्दर बैठे हुए थे। उस वृक्ष की जड़ से २०० हाथ दूरी पर एक बावड़ी थी। बन्दरों को प्यास लगी। उनमें से एक बन्दर तो वृक्ष से उतर कर सीधा बावड़ी को गया और दूसरा बन्दर ऊपर उछला और कर्णगति से बावड़ी से कूद पड़ा। दोनों बन्दरों को यदि समान दूरी पार करनी पड़ी तो बताओ (दूसरा) बन्दर कितना ऊपर उछला था और उसके कर्णात्मक मार्ग की लम्बाई क्या है? उत्तर (१) ५० हाथ उछला (२) कर्ण की लम्बाई २५० हाथ। इससे भी अधिक मनोरंजक सवाल है सांप एवं मोर का।

"नौ हाथ ऊँचे एक स्तम्भ पर एक मयूर बैठा था। उसी स्तंभ के ठीक नीचे एक एक सर्प का बिल था। सत्ताईस हाथ की दूरी पर बिल की ओर आते हुए सर्प को मोर ने देखा और एकदम कर्णगति से उस पर टूट पड़ा। दोनों की मति समान थी। बताओ मोर ने बिल से कितनी दूरी पर सर्प को पकड़ लिया।

उत्तर :—बिल से १२ हाथ की दूरी पर।

यदि समान गति वाले तथ्य की जानकारी न हो तो प्रश्न का हल नहीं हो सकता। निश्चय ही प्रश्न की रचना के पूर्व भास्कराचार्य ने सापेक्ष गति की इस समस्या पर सम्यक विचार किया होगा। प्रसिद्ध विद्वान श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है "परन्तु मोर का गमन मार्ग वृत्त परिधि से भिन्न एक वक्र रेखा होती है। ऐसे महत्व का विचार अन्य किसी गणित ग्रंथ में नहीं है। भास्कराचार्य के मस्तिष्क में यह आया था। वह ध्यान देने योग्य है।"

इसी प्रकार के अन्तर्गत केवल छाया मात्र देख कर दीपक की ऊँचाई प्राप्त करना, कमल नाल की तालाब में गहराई का पता चलाना आदि विषय दिये गये हैं।

शून्य के गुण धर्म (Indeterminants) अज्ञेय का ज्ञान

शून्य को किसी राशि में जोड़ने-घटाने से कोई अन्तर नहीं होता। शून्य के वर्ग-घन-मूलादिक शून्य ही होते हैं। शून्य का किसी राशि में भाग देने से वह खहर (Infinite) अनन्त होती है। "खभाजितो राशी खहरः स्यात्"। शून्य से गुणा करके पुनः शून्य से भाग देने पर राशि में कोई अन्तर नहीं होता। अर्थात् $\frac{अ \times ०}{०} = अ$। यह निर्णय भास्कराचार्य का $\frac{०}{०}$ के अज्ञेय होने के ज्ञान का प्रतीक है।

क्षेत्र व्यवहार

इस प्रकार के अंतर्गत भास्कराचार्य ने बहुभुज, त्रिभुज, वृत एवं अन्य आकृतियों के क्षेत्रफलों से संबंधित विभिन्न समस्याएं और उनके हल प्रस्तुत किये हैं। त्रिभुज के क्षेत्र फल प्राप्त करने की विधि निम्नलिखित श्लोक में विवद्ध है।

त्रिभुजे भुजयोर्योग..............
लम्ब गुणं भूम्यर्द्धं स्पष्टं त्रिभुजं फलं भवति ॥७६॥

इसकी प्रथम तीन पंक्तियों में त्रिभुज की यदि तीनों भुजाओं की लम्बाई दी हो तो शीर्ष से आधार पर डाले गये लम्ब को जानने का प्रकार दिया गया है। अन्तिम पंक्ति में स्पष्ट तथा आज के प्रसिद्ध सूत्र को वाक्यों में प्रस्तुत किया है। त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \frac{१}{२} \times$ आधार $\times$ लम्ब (भूम्यर्ध $= \frac{आधार}{२}$, लम्ब गुणं = लम्ब से गुणित किया जाय)।

यह स्पष्ट है कि भास्कराचार्य ने आज के त्रिकोणमिति अथवा बीजगणित के जैसे सरल एवं संक्षिप्त सूत्र नहीं दिये हैं लेकिन अविकसित ज्ञान के युग में किये गये उनके ये प्रयास कम सराहनीय नहीं माने जा सकते।

अब एक दूसरा उदाहरण देखिये। यह उदाहरण इसलिये विशेष ध्यान देने योग्य है कि इसके द्वारा भास्कराचार्य द्वारा बड़ी संख्याओं का विशिष्ट प्रणाली द्वारा नाम-करण करने की शैली का पता चलता है। तत्कालीन एवं बाद के भी सभी ग्रन्थों में इसी प्रकार की प्रणाली का अनुगमन किया गया है।

"व्यासे भनन्दाग्नि हते विभक्ते
ख बाणसूर्यैः परिधिस्तु सूक्ष्मः।
द्वाविंशतिघ्ने विहृतेऽथ शैलैः
स्थूलोऽथवा स्याद्व्यवहारयोग्यः ॥६८॥

अर्थात् वृत्त के व्यास को भनन्दाग्नि (३६२७) भ = नक्षत्र = २७, नन्द = नौ नन्द = ६, अग्नि = तीन अग्नि = ३ इन्हें क्रमशः दाहिनी ओर से लिखा तो भनन्दाग्नि = ३६२७) से गुणा किया और खबाण सूर्य (ख = आकाश = ०, बाण = कामदेव के बाण = ५, सूर्य = द्वादश मासों के द्वादश सूर्य = १२, इन्हें दाहिनी ओर से लिखा तो ख बाण सूर्य = १२५०) अर्थात् १२५० से भाग दिया तो सूक्ष्म परिधि ज्ञात होती है अर्थात् सूक्ष्म परिधि = व्यास $\times \frac{३७२७}{१२५०}$

यदि स्थूल परिधि लाना हो तो $\frac{२२}{७}$ [शैल = पर्वत = ७] से व्यास का गुणा करना चाहिए।

आर्यभट्ट ने तो अंक संख्या व्यक्त करने की उक्त प्रणाली को अत्यधिक अपनाया है।

दूसरा महत्पूर्ण तथ्य है, भास्कराचार्य द्वारा $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ (जिसे आज कल "π" द्वारा प्रदर्शित करते हैं) का सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों प्रकार का मान बताया जाना।

प्रकीर्ण विषय

अभी तक समस्त ग्रन्थों में आये हुए विशेष ध्यान देने योग्य स्थलों का हमने सिंहावलोकन किया है। इसके अतिरिक्त और भी महत्वपूर्ण सामग्री इसमें हैं।

खात व्यवहार, चिति व्यवहार एवं क्रकच व्यवहार पर किये गये प्रश्नोत्तर भास्कराचार्य के ठोसाकृतियों के आयतन एवं क्षेत्रफलों के आनयन सम्बन्धी उन्नत ज्ञान के प्रतीक हैं। इनमें खाद भरने के गढ़ों, होम कुंडों, अनाज की कोठियों एवं ढेरियों आदि पर प्रश्न हैं। लकड़ी चीरने पर उसके संभावित टुकड़ों एवं टुकड़ों के आयतनों पर भी प्रश्नोत्तर हैं।

उन्होंने घनमूल एवं वर्गमूल निकालने के स्वयं के कई प्रकार बतलाये हैं। निस्संदेह ये विधियां आधुनिक दृष्टिकोण से कठिन हैं। उन्होंने आजकल के बीज-गणित के प्रसिद्ध सूत्र $अ^2 - ब^2 = (अ + ब)(अ - ब)$ का रूप परिवर्तन करके निम्नलिखित प्रयोगात्मक एवं अंकगणितात्मक सूत्र दिया है।

"वर्गान्तरम् राशि वियोग भक्त ।
यौगस्ततः प्रोक्तवदेव राशिः ॥२६॥

पाठकों को इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त हो जाये कि किस प्रकार बिना मूल कारण को सोचे समझे लोग इन सूत्रों का तोते के समान उपयोग किया करते थे। इसका अर्थ होता है :—

"राशियों के वर्गों के अन्तर में राशि के अन्तर का भाग देने से राशियों का योग आता है।"

इसी प्रकार के कई अन्य सूत्र हैं।

विलोम पद्धति के अध्याय में भास्कराचार्य की कवित्व शक्ति विशेष रूप से मुखरित हुई है। इतिहासज्ञों ने इस प्रणाली को भारत की विशेषता माना है। इस पद्धति से सम्बन्धित कई मनोरंजक प्रश्न लीलावती में हैं।

भास्कराचार्य का व्यक्तित्व, उनकी रसिकता, कवित्व एवं शैली

भास्कराचार्य के ग्रन्थों में उनका अन्तर्व्यक्तित्व मिलता है। अंदर से तो वे निस्संदेह महान थे ही, उनका वाह्य व्यक्तित्व भी अत्यन्त प्रभावशाली रहा होगा, तभी वे साधारण जनता को अत्याधिक प्रभावित करने में समर्थ हुए होंगे। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित उनके सम्बन्ध में लिखते हैं, "भास्कराचार्य के ग्रन्थों का प्रचार भारत के कोने कोने तक है। इतना ही नहीं विदेशी भाषाओं मे भी इनके अनुवाद हो चुके हैं, परन्तु इतने बड़े कल्पक ने आधुनिक यूरोपीय अन्वेषकों सरीखा कोई प्रभाशाली अन्वेषण नहीं किया और न हीं किसी आविष्कार की नींव ही डाली, यह हमारे देश का दुर्भाग्य है। भास्कर ने शोध सम्बन्धी प्रयत्न कुछ भी नहीं किया। इन्होंने अपनी सम्पूर्ण बुद्धि विवेचन में ही लगा दी जो कि केवल एक टीकाकार का कार्य है। मुझे स्वकीय अत्यल्प अनुभव से ज्ञात होता है कि वे यदि इस कार्य को छोड़कर अनुसन्धान करते तो इनका झुकाव नवीन आविष्कार की ओर अवश्य हुआ होता। नवीन विशेषताओं का सर्वथा अभाव होते हुये भी उपपत्ति में सम्पूर्ण बुद्धि लगा देने के कारण इनके ग्रन्थ में वेध-साध्यता तो नही, केवल विचार साध्य कुछ नवीन बातें आई हैं।

भास्कराचार्य में एक गणितज्ञ और एक कवि दोनों का ही अपूर्व संगम था। प्रसाद एवं माधुर्य गुणमयी श्लोक शृंखलाओं में उन्होंने गणित के कई मौलिक सूत्रों को इस प्रकार बांधा है कि अध्ययनकर्ता के पास से वे कभी भी छूट कर नहीं जा सकते। इन सूत्रों के प्रयोगार्थ जो प्रश्न उन्होंने दिये हैं वे तो सूत्रों से भी अधिक बढ़-चढ़ कर हैं। रसिकता एवं मनोरंजनपूर्ण कठिन प्रश्नों को भी हल करने में एक विशेष आनन्द मिलता है। शृङ्गार-क्रीड़ा-रत-कामिनी के मोतियों के हार के टूटने के कारण बिखरे हुए

मोतियों पर, भंवरों एवं हाथियों के भंवरियों एवं हथिनियों के साथ केलिरत समूहों इत्यादि पर प्रश्न करके निस्संदेह गणित जैसे शुष्क विषय को उन्होंने अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। कुछ अन्य मनोरंजक प्रश्न देखिये। श्लोकों का केवल भावानुवाद है :

जातिचतुष्टय नामक अध्याय से लिये गये इस उदाहरण में एक भिखारी एक अत्यंत कृपण पुरुष से भी दान मांग रहा है। भिखारी कंजूस से कहता है—हे महानुभाव "आप मुझे एक द्रम्म दें अथवा इतना नहीं दे सकें तो द्रम्म का आधा ही दें। आधा नहीं तो $\frac{२}{३}$ ही दे दीजिये। कुछ।नहीं तो इस हिस्से का $\frac{३}{४}$ ही दो। कम से कम इस $\frac{३}{४}$ का $\frac{१}{५}$ तो दे ही दीजिये। अच्छा इतना भी नहीं तो $\frac{१}{५}$ का $\frac{१}{१६}$ और इस $\frac{१}{१६}$ का चौथाई हिस्सा तो दो। बताओ भिखारी को कितना दान मिला ?

उत्तर एक कौड़ी। {क्योंकि $\frac{१}{१}$ का $\frac{१}{२}$ का $\frac{२}{३}$ का $\frac{३}{४}$ का $\frac{१}{५}$ का $\frac{१}{१६}$ का $\frac{१}{४}$= $\frac{१}{१२८०}$=द्रम्म एक कौड़ी ∵ १२८० कौड़ी=एक द्रम्म}

देखिये भिन्न के इस प्रश्न को कितने मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसे कोष्ठक में दिये गये आधुनिक तरीके से भी प्रस्तुत किया जा सकता था। लेकिन क्या तब वह इतना आकर्षक रह पाता ?

अब आप दूसरा प्रश्न देखिये। विलोम पद्धति पर किये गये इस उदाहरण स्वरूप प्रश्न में मानों कुरुक्षेत्र के युद्ध का चित्र आंखों के सामने आ जाता है। अर्जुन एवं कर्ण का युद्ध हो रहा है।

पार्थः कर्ण वधाय मार्गणगणं......यानर्जुनः सन्दधे ॥२६॥

"अर्जुन अत्यंत क्रोधित होकर कर्ण को मारने के लिये तत्पर हुआ। उसने अपने कुल बाणों के आधे बाणों से तो कर्ण के बाणों को रोका। चौथाई बाणों से उसने घोड़ो को रोक कर कर्ण के रथ को आगे नहीं बढ़ने दिया। कर्ण के सारथी शल्य को दो बाणों से आच्छादित कर दिया और तीन बाणों से एक-एक करके उसने कर्ण के धनुष, छत्र और ध्वज को नष्ट कर दिया। अब केवल एक ही बाण बचा। इस बाण से उसने, कर्ण का सर काट डाला। बताओ अर्जुन के पास कितने बाण थे ? भास्कराचार्य ने स्वयं इस प्रश्न का हल प्रस्तुत किया है। उनके सूत्रों का अनुगमन करने पर उत्तर=१०० बाण आता है।

तीसरा प्रश्न कुछ कठिन और विचारणीय है। लेकिन उसे भी मनोरंजन के कवच में प्रस्तुत किया गया है।

"चार जौहरी थे। वे परस्पर परम मित्र थे। उनमें से एक के पास ८ मणि, दूसरे के पास १० नीलम, तीसरे के पास १०० मोती तथा चौथे के पास ५ हीरे थे। प्रेम के आवेश में आकर प्रत्येक व्यापारी ने अपने-अपने पास का एक-एक रत्न अपने मित्रों को दे दिया। ऐसा करने पर प्रत्येक के पास समान मूल्य के रत्न हो गये। बताओ रत्नों का अलग-अलग मूल्य क्या था जिससे कि पारस्परिक आदान-प्रदान से वे समधन हो गये ?" (श्लोक ४७ का अनुवाद)

अब आपके सामने भास्कराचार्य का स्वयं का किया हुआ हल प्रस्तुत करता हूँ ताकि आपको उनकी प्रणाली का आभास प्राप्त हो जाये।

न्यास :—। मा० ८। नी० १०। मु० १००। व० ५। नरा: ४ नरगुणित दानेन ४ रत्न संख्या सूनितासु............जातान्यभिन्नावि ५७६। ३८४। २४। २३०४। तेषामेते द्रम्माः संभाव्यन्ते ५५९२।"

भावानुवाद :—न्यास :—दी हुई संख्या निम्नानुसार है। मा० ८। नीलम १० मुक्ता १००। हीरे ५। कुल मनुष्य ४। मनुष्यों की कुल संख्या चार है। प्रत्येक व्यापारी ने एक-एक रत्न दिया है। अतएव प्रदत्त रत्न की संख्या को मनुष्यों की संख्या से गुणा करने पर ४×१=४ आया। इस '४' को रत्नों की पूर्व संख्या में से घटाने पर क्रमशः मा० ४। नी० ६। मु० ९६। ही० १। आया। इन शेष अंकों का इष्ट संख्या में भाग देने पर प्रत्येक रत्न का मूल्य आयगा। परन्तु मनमानी इष्ट संख्या कलित नहीं कर सकते क्योंकि भिन्न मूल्य आयेंगे। अतः सर्वोच्च संख्या ९६ को इष्ट माना। इस '९६' में उपर्युक्त शेषांकों का अलग-अलग भाग देने पर प्रत्येक रत्न का मूल्य प्राप्त हो जायेगा। भाग देने पर मा० २४। नी० १६। मु० १ और ही० ९६। यह मूल्य आये। अतएव समधन=२४+१६+१+९६=२३३।

अथवा—४। ६। ९६। १ ये जो शेष रहे हैं इनके गुणनफल को अर्थात् २३०४ को इष्ट मान कर इसमें उपर्युक्त शेषांकों का भाग दिया तो क्रमशः उत्तर मा० ५७६। नी० ३८४। मो० २४ और ही २३०४। यह सिद्ध हुआ। अतएव दूसरा संभाव्य उत्तर समधन=५५९२ द्रम्म है।"

यह हल भास्कराचार्य ने अपने पूर्व लिखित सूत्र श्लोक (४२) के आधार पर प्रस्तुत किया है। सूत्र श्लोक में 'ऐसा क्यों किया ?' इसके लिये कोई तर्क या उपपत्ति नहीं दी गई है। बस इसी प्रकार की प्रणाली लीलावती ही क्या अन्य ग्रन्थों में भी सर्वत्र पाई जाती है।

गणित की शुष्क एवं कठिन समस्याओं और सिद्धांतों को भास्कराचार्य ने न केवल आकर्षक एवं मनोरंजक ही बनाया है, वरन् भाषा को भी सरस तथा ललित पदावली युक्त श्लोकों के द्वारा अलंकृत किया है। भास्कराचार्य एक गणितज्ञ-कवि थे। निम्नलिखित पदांशों को देखिये—

"लीला गललुलल्लोल कालव्याल विलासिने"

(स्वेच्छा से कण्ठ में लोटते हुए सांपों से विलसित)

"वाले वाल कुरंग लोल नयने लीलावती प्रोच्यतां"

बाल-मृग के विशाल चंचल नेत्रों के समान नेत्रों वाली किशोरी वाले लीलावती!"

वाले-बाल मृणाल शालिनि जले केलि क्रिया लालसं"
द्रष्टं हंस-युग त्रयं च सकलां यूथस्य संख्यां वद" ।।

"हे बाल ! आकाश के मेघाच्छादित हो जाने पर कुछ हंस तालाब से उड़ कर मानसरोवर चले गये, कुछ हंस स्थलकमलिनी के वन को चले गये और बाकी बचे तीन जोड़े उसी तालाब में केलि करते पाये गये तो बताओ कुल कितने हंस थे ।"

कई उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिसमें शब्द और अर्थालंकारों का बाहुल्य तो है ही, साथ ही उच्च कवियों की टक्कर का रसोद्रेक भी हुआ है ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भास्कराचार्य एवं उनके ग्रन्थ अपने आप में अद्वितीय थे किन्तु उनके ग्रंथों में कुछ न्यूनताएँ भी पाई जा सकती हैं ।

लीलावती की नामकरण प्रणाली एक विशिष्टता लिये हुए है। भनन्दाग्नि = ३६२७ वाले उदाहरण से यह स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त सिद्धांतों को सूत्र रूप में प्रगट करने की रीति भी साधारण जनों के लिये ग्राह्य नहीं है। बिना विशेष अर्थों के जाने एक संस्कृत साहित्य का विद्वान भी प्रश्नों को एवं उनके हलों को नहीं समझ सकता। फिर बेचारे साधारण विद्यार्थियों की क्या बात। इसके अतिरिक्त एक ही मूल सिद्धांत पर आधारित प्रश्नों की समस्याओं के हल के लिये उन्होंने अलग-अलग अंकगणितात्मक सूत्र प्रस्तुत किये हैं। एक अन्धानुयायी छात्र के लिये इस प्रकार लीलावती का अध्ययन कठिन हो जाता है। अलग-अलग सूत्रों के स्थान पर भास्कराचार्य मूल सिद्धांत भी दे सकते थे। इतना ही नहीं, भास्कराचार्य ने कहीं भी अपने सूत्रों के लिये उपपत्तियां नहीं दी हैं। सूत्रों के पक्ष में तर्क एवं गणितात्मक प्रमाण भी नहीं दिये हैं। श्रद्धालु लोग इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते थे। भास्कराचार्य ने जो कुछ लिखा वह ईश्वर वाक्य; यह प्रवृत्ति जो चल पड़ी थी। किन्तु चंद्रमा के धब्बे उसके शीतल प्रकाश की तुलना में नगण्य हैं। यही हाल भास्कराचार्य के ग्रंथों का भी है।

आइये, अब हम लीलावती का एक पूर्णतया नवीन प्रकार से संक्षिप्त सिंहावलोकन करते हैं। मेरे विचार से निम्नलिखित दृष्टिकोण से शायद अभी तक किसी भी विद्वान् ने भास्कराचार्य के ग्रंथों का ऊहापोह नहीं किया है।

लीलावती का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

"साहित्य समाज का दर्पण होता है," इस उक्ति के प्रकाश में लीलावती के द्वार हम दसवीं शताब्दि के भारतीय समाज एवं संस्कृति के सम्बन्ध में पर्याप्त तथ्य एकत्र कर सकते हैं।

जहां तक माप तौल की इकाइयों का प्रश्न है, उस समय द्रम्म-पण, कुडव, अंगुल आदि इकाइयां व्यवहृत थीं। वस्तु विनिमय के विषय पर काफी प्रश्न दिये गये हैं जिससे विदित होता हैं कि उस समय वस्तु विनिमय की प्रथा प्रचलित थी। रुपयों का आज

जैसा महत्व एवं चलन नहीं था। एक स्थल पर दिये गये प्रश्न से दास एवं दासी प्रथा के प्रचलन का संकेत मिलता है।

"प्राप्नोति चेत् षोढ़षा वत्सरा स्त्री
द्वात्रिंशतं विंशति वत्सरा किंम"......॥३२॥

अर्थात १६ वर्ष की स्त्री ३२ निष्क में मिलती है तो २० वर्ष की स्त्री कितने में मिलेगी?" इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय स्त्रियों का व्यापार होता था।

उस समय व्याज पर रुपये दिये जाते थे किन्तु चक्रवृद्धि व्याज का चलन नहीं था। सुनार लोग सोने में झूठी मिलावट करते थे। चन्द्रगुप्त का समय बहुत पीछे बीत चुका था। मोती, हीरक आदि रत्नों एवं उत्तम धातुओं का बड़े पैमाने में व्यापार होता था।

भास्कराचार्य के समय में समाज में कुट्टक प्रश्नों एवं कठिन समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रचलन था। इन समस्याओं का हल करने वाला यश-सम्मान एवं उच्च स्थान का भागी होता था। इस तथ्य का आभास देने वाले कई श्लोक लीलावती में उपस्थित हैं। ये श्लोक भारतवर्ष की तत्कालीन उच्च समाजिक सुरुचि के भी परिचायक हैं।

दशवीं शताब्दि में भारतीयों का ज्ञान गणित विषय में अन्य देशों की तुलना में काफी बढ़ा चढ़ा और गहरा था। हमें ($१०^{१७}$) तक की संख्याओं के नाम मालूम थे। इसे भी ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय विशेषता माना जाता है।

इसी प्रकार अन्य कई तथ्य को हम इस ग्रन्थ में खोज सकते हैं। वस्तुतः भास्कराचार्य के समस्त ग्रन्थों का आधुनिक दृष्टिकोणों से उहापोह होना चाहिए एवं इस सम्बन्ध में अनुसन्धान की दिशा में भारतीय विद्यार्थियों की प्रवृत्ति होना चाहिए। श्री गिरजाप्रसाद द्विवेदी ने लिखा "अत्रेदं सूक्ष्म दृष्टि्या सुधिभीर्खेवधातुं..........तेषां प्रतिपादन कौशलं त्रिकोणमिति (Trigonom Dietry). शंकुच्छेदं (Conic section) चलगणितान्तं (Calculus-fferential) धावति।"—

अर्थात लीलावती आदि ग्रन्थों में भास्कराचार्य द्वारा प्रतिपादित विषयों में त्रिकोणमिति, शंकुच्छेद एवं चलनकलन आदि के उच्च सिद्धांतों के बीज उपस्थित हैं। श्रीकृष्ण वल्लभ द्विवेदी ने तो एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि भास्कराचार्य ने चलन-कलन का बीज रूप से आविष्कार किया था।

विभक्ति दृष्टिकोणों से लीलावती एवं भास्कराचार्य के अन्य ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन नितान्त अपेक्षित है।

———

सार संकलन

आणविक शक्ति का स्वर्ण युग

आणविक विखण्डन के विकास ने अणुशक्ति के शान्तिकालीन उपयोगों का मार्ग प्रशस्त किया, जिनके फलस्वरूप आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी एवं आश्चर्य-जनक प्रभाव उत्पन्न हो रहे हैं। शान्तिकालीन विकास दो प्रकार के हैं : औषधि अनुसन्धान और उद्योग के क्षेत्रों में रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों का उपयोग और आणविक बिजली का उत्पादन।

अधिकांश रासायनिक तत्वों का आविर्भाव अनेक भिन्न-भिन्न रूपों में, जिन्हें आइसोटोप कहते हैं, हो सकता है; ये आइसोटोप रासायनिक दृष्टि से एक दूसरे के समान होते हैं, किन्तु इनके अणुभार भिन्न-भिन्न होते हैं। सिलिकान में ३, चांदी में ७ और टिन में १० आइसोटोप होते हैं। इसका आशय यह है कि इन तत्वों के अणुओं के ३ या ७, या १० भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं, जिनमें रासायनिक दृष्टि से तो सादृश्य होता है, किन्तु जिनके अणुभार भिन्न-भिन्न होते हैं। इनमें से कुछ का उद्भव स्वभावतः—प्राकृतिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप—हो जाता है : उदाहरण के लिए, साधारण पारद भिन्न-भिन्न प्रकार के ४ आइसोटोपों का मिश्रण होता है।

कई वर्ष हुए, भौतिकशास्त्रियों ने देखा कि साइक्लोट्रानों और ऐटमबर्स्टरों में रूपान्तरण करके अत्यन्त न्यून मात्राओं में आइसोटोपों का उत्पादन हो सकता है। किन्तु, अब आणविक भट्ठियों में, जो यूरेनियम को प्लूटोनियम में परिणत कर देती हैं, आइसोटोपों का उत्पादन इतने विविध रूपों और मात्राओं में हो सकता है, जितना पहले सम्भव नहीं था। अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन के पास ही अनेक तत्वों वाले लगभग ३०० किस्मों के आइसोटोप उपलब्ध हैं।

आइसोटोपों से विकिरण का प्रादुर्भाव होता है, जिसका उपयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। १६५४ में अमेरिकी कृषि विभाग ने एक टन ऐसा उर्वरक तैयार किया, जिसमें सामान्य फास्फोरस के कुछ अंश के स्थान पर रेडिय-सक्रिय आइसोटोप का प्रयोग किया गया। जब उस उर्वरक को मिट्टी में छोड़ा गया. तो देखा गया कि पौधों ने रेडिय-सक्रिय फास्फोरस को आत्मसात कर लिया। थोड़े ही समय में 'गीगर' गणक-यन्त्रों की सहायता से विकिरण का पता लगाना और इस बात का निर्धारण करना सम्भव हो गया

कि पौधों में रेडिय-सक्रिय अणु कहाँ पहुँच गये थे, और उनका वितरण किस प्रकार हुआ। अन्य शब्दों में, यह जाना जा सका कि फास्फोरस से पौधों को भोजन किस प्रकार प्राप्त होता है और अधिक प्रभावकारी ढंग पर उर्वरक का उपयोग करने की विधि क्या हो सकती है। इस नवीन ज्ञान के व्यवहार से बर्जिनिया के तम्बाकू बोने वाले किसानों को अब प्रति वर्ष कम से कम १० लाख डालर की बचत होने लगी है।

कुछ रेडिय-सक्रिय् आइसोटोप विकिरण के बहुत ही सशक्त स्रोत होते हैं। यदि किसी आइसोटोप-स्रोत के सामने से अनाज की राशि को भेजा जाये तो उस अनाज में पड़े हुए सभी कीड़े मर सकते हैं। बीजों पर विकिरण का प्रयोग करने से उनका कुछ रूपान्तर सा हो सकता है, जिसके कारण पौधों की जाति में कुछ भिन्नता उत्पन्न हो सकती है।

विकिरण के ऐसे प्रयोग के फलस्वरूप नये किस्म के आड़ू उत्पन्न किये गये हैं, जो साधारण किस्म के आड़ू की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से पक जाते हैं। गेहूँ, जई, पटुआ और ऐसे जौ के रोग-निरोधक बीज विकसित किये गये हैं, जो अधिक शीघ्रता से पक जाते हैं और छोटे फसली मौसम वाले जलवायु के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं। आलू और प्याज पर विकिरण का प्रयोग करने से उनके पौधे बहुत फैलनेनहीं पाते। कृषि सम्बन्धी इन विकासों के फलस्वरूप करोड़ों डालर का लाभ हुआ है।

चिकित्सा के क्षेत्र में

चिकित्सा और औषधि के क्षेत्र में विकिरण के उपयोग की प्रगति बहुत सन्तोषजनक रही है। आणविक भट्टी के भीतर अधिक देर तक विकिरण-सक्रिय होने के बाद कोबाल्ट अत्यधिक रेडिय-सक्रिय हो उठता है। मुट्ठी में रखा जा सकने वाला नन्हा सा पिण्ड भी १० लाख बोल्ट की एक्सरे मशीन जितना शक्तिशाली विकिरण उत्पन्न कर सकता है। अब शारीरिक विकारों के गहरे उपचार में एक्सरे या रेडियम के स्थान पर इन छोटे विकिरण उत्पादक-यन्त्रों का व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा है। इन्हें उपचार के लिए प्रयुक्त करते समय 'थेराट्रोन' नामक संरक्षक-होल्डरों पर चढ़ा लिया जाता है।

मस्तिष्क में फास्फोरस के रेडियो-सक्रिय आइसोटोपों की सुई देने पर वे एक गिल्टी में एकत्र हो जाते हैं, जिसके कारण विकिरण-अन्वेषक यन्त्र द्वारा गिल्टी की जगह का ठीक ठीक पता लगा लेना सम्भव होता है। ऐसी स्थिति में उसका आपरेशन अधिक आसान हो जाता है, और उसमें अधिक भय भी नहीं रहता। कुछ अन्य आइसोटोपों का प्रयोग रक्त की मात्रा और रक्त-संचार का माप करने तथा गुर्दे की क्रियाशीलता का निर्धारण करने के लिए किया जाता है। आज तो स्थिति यह हो गयी है कि यदि किसी चिकित्सक को उपचार में आइसोटोपों के उपयोग का ज्ञान न हो तो उसे पूर्ण प्रशिक्षित नहीं समझा जाता। इसी प्रकार, यदि आधुनिक अस्पताल में आइसोटोपों के उपयोग की सुविधा उपलब्ध न हो तो उसे पूर्ण रूप से सुसज्जित नहीं समझा जाता।

उद्योगों में आइसोटोपों के उपयोग के आर्थिक लाभ बहुत ही अधिक हैं। उद्योगों में आइसोटोपों का उपयोग करने वाले ८५० अमेरिकी उद्योगपतियों ने १९५४ में अमेरिकी

अणुशक्ति संस्थान को सूचित किया था कि ऐसा करने से उन्हें प्रतिवर्ष कम से कम १० करोड़ डालर की बचत हो रही है। १९५७ तक उद्योगों में आइसोटोपों का उपयोग करने वालों की संख्या दूनी हो गयी। उनके अनुमान के अनुसार, ऐसा करने से उन्हें प्रतिवर्ष ५० करोड़ डालर की बचत हुई। संस्थान का पूर्वानुमान यह है कि १९६२ तक उद्योगों और कृषि में आइसोटोपों के उपयोग से प्रतिवर्ष ५ अरब डालर की बचत होने लगेगी।

विभिन्न रेडिय-सक्रिय अणुओं से उत्पन्न विकिरणों की शक्ति और पदार्थ में प्रविष्ट हो सकने की क्षमताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इससे पदार्थ की पतली पट्टियों की मोटाई नापने की विधि का पता चल जाता है। इस प्रकार, उसी आइसटोप को चुना जा सकता है, जिसका विकिरण ठीक-ठीक वांच्छित मोटाई तक ही प्रविष्ट हो सकता है। जब पट्टी रेडिय-सक्रिय स्रोत के ऊपर से हो कर जाने लगती है, तो 'गीगर' गणक-यन्त्र उसके बीच से होकर आ रही विकिरण की मात्रा को नाप लेता है; यह मात्रा ठीक मोटाई के अनुपात से ही परिवर्तित होती रहती है।

'दि यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन' ने इस्पात की पट्टियो को चीरने वाले अपने नवीनतम कारखाने में इस्पात की चद्दरों की मोटाई को नापने और नियंत्रित करने के लिए रेडिया-सक्रिय मापक-यन्त्रों का उपयोग किया है। कागज, टायर आदि की मोटाई को नापने और नियंत्रित करने के लिए भी इसी प्रकार के मापक यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। अमेरिका के ५००-से अधिक कारखानों में रेडिय-सक्रिय मोटाई-मापक-यन्त्रों का उपयोग हो रहा है। ऐसा करने से उन्हें प्रति वर्ष लगभग १० करोड़ डालर से अधिक की बचत हो रही है।

धातुओं को जोड़ने, ढालने आदि की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनियमितता या दोष की जांच करने के लिए रेडिय-चित्र लेने में एक्स-रे के स्थान पर विकिरण के पदार्थों में प्रविष्ट हो सकने के गुण का उपयोग होने लगा है। जिस पदार्थ की परीक्षा करनी हो, उसके पीछे थोड़ी मात्रा में रेडिय-सक्रिय आइसोटोप रखने और दूसरी ओर फोटोग्राफी का प्लेट लगा देने से अत्यन्त शीघ्रता और सरलता के साथ रेडियोग्राम उपलब्ध हो जाते हैं। अब विकिरण द्वारा मशीन के पुर्जों, धातु के जोड़ों, सीमेन्ट की ढलाई तथा अन्य वस्तुओं की जांच उनके स्थान पर ही हो सकती है।

अमेरिका में इस प्रकार के रेडियो-चित्रण के लिए ५५० से अधिक फर्मों को लाइसेंस दिये जा चुके हैं। पेट्रोलियम उद्योग में आइसोटोपों का व्यापक रूप से उपयोग होने लगा है। इस उद्योग का अनुमान है कि इस प्रकार उसे प्रति वर्ष लगभग २० करोड़ डालर की बचत हो रही है।

नया ईंधन

आणविक भट्ठी में यूरेनियम-अणुओं के विखण्डन से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होती है। वस्तुतः २५,००,००० पौण्ड कोयला जलाने से जितना ऊर्जा उत्पन्न होती

है, उतना एक ही पौण्ड यूरेनियम के सभी अणुओं का विखण्डन कर देने पर उत्पन्न हो जाती है। यूरेनियम एक ऐसा ईंधन है जो लगभग भारहीन होता है। इस कारण कोयले और खनिज तेल की तुलना में उसके यातायात का व्यय नगण्य होता है। अतः, संसार के किसी भी भाग में हम असीम मात्रा में ईंधन प्राप्त कर सकते हैं। जब अणुशक्ति से उत्पन्न बिजली, कोयले या पानी से उत्पन्न बिजली जैसी सस्ती हो जायगा, तो संसार के सभी भागों में लगभग एक सी ही सस्ती दर पर बिजली मिलने लगेगी।

इस समय अमेरिका में प्रति व्यक्ति ८ टन से अधिक कोयले के वार्षिक ईंधन के बराबर, अथवा ६२,००० किलोवाट-घण्टे बिजली उपलब्ध है। अफ्रीका और एशिया के कुछ देशों में तो प्रति व्यक्ति केवल .०२ टन कोयले के वार्षिक ईंधन के बराबर ही बिजली उपलब्ध है। विभिन्न देशों के बीच इस प्रकार की असमानता का एक प्रमुख कारण यह है कि अनेक क्षेत्रों में कोयले के ईंधन या जल-विद्युत का अभाव है। बर्मा, अधिकांश अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका के एक बहुत बड़े भाग और इसरायल में शक्ति के बहुत ही कम स्रोत उपलब्ध हैं। अनुमान है कि स्वीडन, जापान और इटली १० वर्ष के भीतर अपने जल विद्युत और ईंधन के साधनों की चरम सीमा तक पहुँच जायेंगे। इंग्लैंड में कोयला उत्तरोतर अधिक दुर्लभ होता जा रहा है और उसे खानों से खोद कर निकालने में अधिक व्यय हो रहा है। यद्यपि अमेरिका में कोयले, खनिज तेल और गैस से अन्य देशों की अपेक्षा अधिक सस्ती दर पर बिजली सुलभ है, किन्तु उसके इन ठोस ईंधनों का साधन असीम नहीं है। एक ही पीढ़ी के भीतर अमेरिका को आणविक बिजली का उपयोग करना पड़ेगा, और उसने ऐसा करना प्रारम्भ भी कर दिया है।

अमेरिका की प्रारम्भिक आणविक भट्टियां को सुरक्षा और सुविधा की दृष्टि से निम्न तापों के अन्तर्गत संचालित किया गया। उन्हें ठंढा करते समय बहुत बड़ी मात्रा में ऊष्मा को हटाना पड़ा। यह सारी ऊष्मा व्यर्थ चली गयी। फिर, द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन ने ऐसी आणविक भट्टियों को विकसित करना प्रारम्भ किया जिन्हें भाप उत्पन्न करके बिजली तैयार करने के लिए पर्याप्त ताप के अन्तर्गत संचाचित करना सम्भव हो। इस प्रकार, बिजली उत्पन्न करने वाली प्रथम आणविक भट्टी १९५३ में आर्को (इडाहो) नामक स्थान पर संचालित हुई। यह आणविक शक्ति से संचालित 'नौटिलस' नामक पनडुब्बी के लिए बिजली तैयार करने वाले पूरे आकार के विद्युत कारखाने का नमूना थी। इस पनडुब्बी का जलावतरण जनवरी, १९५४, में हुआ। पुरानी पनडुब्बियों के विपरीत यह पनडुब्बी पुनः ईंधन लिए बिना, पानी के नीचे असीमित काल तक अत्यन्त वेग से चल सकती है। जहां पुरानी पनडुब्बियां बहुत ही मन्द गति से अपनी बैटरियां के बल पर अधिक से अधिक २०० या ३०० मील ही पानी के भीतर चल सकती हैं, और फिर उन्हें पुनः ईंधन लेने के लिए पानी के ऊपर आना अनिवार्य होता है, वहां 'नौटिलस' बहुत ही तीव्र-गति से एक बार के ईंधन पर ७० हजार मील की दौड़ कर सकती है।

इस समय अमेरिकी नौ-सेना के पास अणुशक्ति संचालित तीन और पनडुब्बियां हैं, जिनका जलावतरण हो चुका है। इनके अतिरिक्त, उसके तत्वावधान में अणुशक्ति द्वारा संचालित होने वाली १६ अन्य पनडुब्बियों, एक क्रूज़र तथा एक विमान का भी निर्माण हो रहा है। जब आणविक बिजली तैयार करने की लागत घट कर वर्तमान तैल संचालित विद्युत कारखानों की लागत के बराबर हो जाएगी तो महासागरों में भेजने के लिए अणुशक्ति-संचालित सामान्य जहाजों का निर्माण किया जाएगा। पनडुब्बियों के सम्बन्ध में उनके संचालन की लागत उतनी महत्वपूर्ण नहीं, जितनी तीव्र-गति से दूर तक दौड़ सकने की उनकी क्षमता।

आणविक बिजली के कारखाने

अमेरिका में आणविक बिजली तैयार करने वाला प्रथम विशाल कारखाना पेन्सिल्वेनिया राज्य के शिपिंगपोर्ट नामक स्थान पर १६५७ में संचालित हुआ। यह स्थान पिट्सबर्ग के निकट स्थित है। इस कारखाने की बिजली की विनियोजित पूँजी इस समय पिट्सबर्ग के पुराने प्रकार के बिजली के कारखानों की बिजली की लागत से १० गुनी है। किन्तु इसे संचालित करने से इस दिशा में महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हो रहे हैं। आशा है कि अगले १० या १५ वर्षों के भीतर जो आणविक बिजली के कारखाने स्थापित होंगे, उनकी बिजली सस्ती होगी।

नये विकासोन्मुख तथा शक्ति-साधन विहीन राष्ट्रों के लिए भी आणविक बिजली तैयार करने वाले कारखानों का महत्व बहुत ही अधिक है। किन्तु आणविक भट्टी सम्बन्धी प्राविधिक जानकारी और यूरेनियम की पूर्ति कुछ देशों-मुख्यतः अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत रूस—तक ही सीमित है। अमेरिका स्वतन्त्र संसार के राष्ट्रों को यूरेनियम, प्राविधिक सहायता तथा अंशतः अनुसन्धान सम्बन्धी आणविक भट्टियों की लागत प्रदान करके अणुशक्ति के शान्तिकालीन उपयोग के विकास में सहायता करना चाहता है। इस सम्बन्ध में ४३ देशों के साथ अमेरिका ने द्विपक्षीय समझौते कर रखे हैं। इस प्रकार के १५ समझौतों के अन्तर्गत अमेरिका आणविक बिजली के कारखानों के नमूने तैयार करने और उनकी स्थापना में सहायता देने के लिए बचनबद्ध है। अन्य समझौतों का सम्बन्ध अनुसन्धान सम्बन्धी आणविक भट्टियों और अनुसन्धान-कार्यक्रमों से है।

प्रेसिडेण्ट आइजनहौवर ने आणविक अनुसन्धान और अणुशक्ति के विकास सम्बन्धी सभी पदों में विश्वव्यापी सहयोग और विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी की स्थापना का भी सुझाव दिया था। इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श और पत्र-व्यवहार हुए। अन्त में, सितम्बर-अक्तूबर, १६५६ में न्यूयार्क में तत्सम्बन्धी एक सम्मेलन हुआ, जिसमें ८० देशों ने एजेंसी की नियमावली के मसविदे पर हस्ताक्षर कर दिये। इस नियमावली के स्वीकृत हो जाने पर अब यह एजेंसी चालू हो चुकी है। अमेरिकी कांग्रेस ने १६५७ में एक कानून स्वीकृत करके अमेरिका को इस

(शेष पृष्ठ २२५ पर)

पुस्तक समीक्षा

१. विज्ञान प्रगति : पौष १८८१, दिसम्बर १९५९ जनवरी १९६०। कौंसिल आफ साइण्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली। मूल्य ५०न० पै०।

प्रतिमास प्रकाशित इस सरकारी पत्रिका के इस अंक में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख "भारत में घरेलू ईंधन का उपयोग" प्रकाशित हुआ है। इसमें उपलब्ध आँकड़ों से ज्ञात होता है कि भारत में देहाती क्षेत्रों में प्रतिवर्ष ९९,५१,४०,००० टन गोबर पशुओं से प्राप्त होता है जिसमें से ५०% गोबर उपलों के रूप में जला दिया जाता है। इसके द्वारा जो अपार क्षति होती है उसे रोकने के लिये लकड़ी का कोयला, साफ्ट कोक, बिजली, मिट्टी का तेल तथा कृषि के अवशेषों को प्रयुक्त करने की सलाह दी गई है। उपलों के द्वारा प्रायः ५०% ईंधन की पूर्ति की जाती है। शहरी क्षेत्रों में कुल ईंधन का ६९% लकड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है। किसानों को चाहिये कि इन आँकड़ों को ध्यान में रखते हुये उपलों का प्रयोग जलाने के लिये न करके खाद के निर्माण के लिये करें। पत्रिका में प्रस्तुत अन्य सामग्री भी महत्वपूर्ण है।

भाषा के सम्बन्ध में हमें विशेष रूप से कुछ कहना है। "कृषि और पौधाई व्यर्थ (पृ० ४१२)", जल सहनीयता (पृ०४२५)" जादूई (पृ० ४२६), "जीवों में प्रतिक्रिया की एक जंजीर चल निकलेगी" (पृ०४२९), केतली (पृ० ४·४), पौधाई प्रसार (पृ०४३६), "पौधों की वृद्धि के लिये निलाई" (पृ०४४१) आदि शब्द या वाक्य विचारणीय हैं। "पौधाई व्यर्थ से लेखक का तात्पर्य कृषि के वानस्पतिक अवशेष से है। इसके लिये पौधाई व्यर्थ बिल्कुल गलत प्रयोग होगा। "जल सहनीयता" के स्थान पर "जल प्रतिरोधिता" "प्रतिक्रिया की जंजीर के स्थान पर" प्रतिक्रिया शृंखला, निलाई के स्थान पर निराई होना चाहिये। केतली वास्तव में अंग्रेजी शब्द केटल का हिन्दी रूपान्तर है परन्तु यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। आशा है अगले अंकों में सम्पादक इस प्रकार की त्रुटियों के प्रति सतर्क रहेंगे।

२. Provisional list of Technical terms in Hindi—Meteorology II, Ministry of Education, Government of India, 1959.

मौसम विज्ञान सम्बन्धी यह दूसरी शब्दावली है जिसमें १०११ पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्या दिये गये हैं। इसमें प्रयुक्त निम्न हिन्दी पर्याय या तो वास्तविक अर्थ नहीं

वहन करते, या अन्य विषयों की स्वीकृत शब्दावली से भिन्न हैं अथवा क्लिष्ट या अत्यन्त सरल पर्यायों को इंगित करते हैं।

noise (शोर), Collision (टक्कर),anamoly (विसंगति), Polarisation (ध्रुवण), line (लाइन), flash (दमक), Inferior (अवर), standard time (मानक समय) distribution (बण्टन), concentration (जमाव), degree (संख्या), interval (अंतराल), range (परास), moisture (नमी,) technical (तकनीकी),Soil Chemistry (मृद् रसायन), neutral (उदासीन), Phase (अवस्था)।

इनके लिये, क्रमशः कोलाहल, संघात, असंगति, ध्रुवीयणता, रेखा, दीप्ति, इवर, प्रामाणिक समय, विभाजन, सान्द्रण, अंश, अवकाश, परिधि, आर्द्रता, प्राविधिक, मृत्तिकारसायन, निरपेक्ष तथा कला प्रस्तावित किये जाते हैं। इनमें से सान्द्रण, आर्द्रता, निरपेक्ष तथा कला तो रसायन की शब्दावली में इनके इन्हीं अंग्रेजी पार्यायों के लिये स्वीकृत भी हैं। पता नहीं प्रस्तुत सूची में उनके स्थान पर दूसरे शब्द क्यों गढ़े गये जो सर्वथा अनुपयुक्त भी हैं।

३. Provisional list of Technical terms in Hindi—Physics II वही।

भौतिकी की इस द्वितीय सूची में यांत्रिकी और द्रव्य के गुणधर्म सम्बन्धी शब्द दिये गये हैं। ज्ञात हो कि प्रथम सूची के ४ वर्ष बाद यह सूची प्रकाशित हुई है। इसमें निम्न शब्दों के हिन्दी पर्याय रसायन में प्रयुक्त उन्हीं अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्यायों से न जाने क्यों बदल दिये गये हैं।

Dialysis पार विश्लेषण, efficiency दक्षता, neutral उदासीन। उनके लिये रसायन में अपोहन, क्षमता तथा निरपेक्ष स्वीकृत किये जा चुके हैं।

प्रस्तुत शब्दावली के निम्न हिन्दी पर्याय अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ होने के साथ ही वे पाठकों के लिये सहजगम्य नहीं।

falling plate पतन्त पट्टिका rolling लुठन, लुठन्त, rim प्रधि, spin भ्रमि अथवा Applied Science अनुप्रयुक्त विज्ञान, Asttophysics तारा भौतिकी meniscus नवचन्द्रक, system संघ, insensitive मन्द्रग्राही, forced प्रणोदित, rectifying दिष्टकारी, standard मानक आदि। rate के लिये "दर", Collision के लिये "टक्कर" या Cup के लिये "कप" अत्यन्त सरलीकरण की ओर ले जाते हैं। एकाध स्थान पर छापे की भूलें हैं यथा दाब के लिये दब तथा भंगुरता के लिये भंगुगता। हमें विश्वास है कि उक्त पर सम्बन्धित अधिकारी ध्यान देंगे।

४. Provisional test of Technical terms in Hindi-Advanced Economic theory and Thought 1959.

अर्थशास्त्र की यह सातवीं सूची है जिसमें ५१४ शब्द हैं। इसके प्राक्कथन में यह व्यक्त किया गया है कि हिन्दी की चालू शब्दावली का विशेष उपयोग इसलिये नहीं किया

जा सका क्योंकि आर्थिक विचार धारा का जो विकसित रूप आज हमारे सामने है उसका उद्भव भूल रूप से पाश्चात्य देशों में हुआ। इन आर्थिक विचारों को व्यक्त करने वाले प्रचलित शब्द बहुत थोड़े हैं। यदि इस तथ्य को स्वीकार भी कर लिया जाय तो एक विशिष्टता जो इस सूची में देखने को मिलती है वह यह है कि अंग्रेजी में पारिभाषिक शब्दों की विवेचना तो दी गई है परन्तु हिन्दी में केवल पर्याय पारिभाषिक शब्द रखकर हिन्दी में विवेचना नहीं की गई है। जानबूझ कर उर्दू के ऐसे शब्दों को रखा गया है, जिनके प्रयोगों को सरलता से हिन्दी शब्दों द्वारा पूरा किया जा सकता था। अर्थशास्त्र में भाषा विषयक यह मनोवृत्ति राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में नहीं है। उदाहरणार्थ Venture Capital (जोखिम पूँजी), profit (मुनाफा), forced (जबरी), thrift (किफायत), middle price (दरम्यानी कीमत) recession (सुस्ती) produce net (बेशी उपज) आदि। आश्चर्य तो यह है कि पृष्ठ ३६ पर profit के लिये लाभ भी दिया गया है जब कि अन्यत्र 'मुनाफा' स्वीकृत है। pooling के लिये "पूलन" जैसे शब्द का निर्माण भ्रामक होगा। अर्थशास्त्र विशेषज्ञ की समिति में डा० दीनदयालु गुप्त के होते हुये भी इस प्रकार की त्रुटियाँ शोभा नहीं देतीं।

५. काला सोना—कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली।

भारत में कोयले के अनेक भंडार हैं। इस्पात के कारखानों के खुल जाने से कोयले की उत्तम कोटियों की खोज, उनका वर्गीकरण तथा निम्नकोटियों से उपयोगी पदार्थों के निर्माण की ओर हमारी राष्ट्रीय सरकार का ध्यान जाना आवश्यक ही है। कोयले पर विशेष प्रकार से अनुसन्धान करने के लिये जियलगोरा स्थित केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान-शाला खोली गई है जिसने इस अल्पावधि में ही विभिन्न दिशाओं में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। 'लिगनाइट' तथा पीट का सदुपयोग, कोयले से पेट्रोल जैसा तरल ईंधन, तारकोल से रंगीन पदार्थ एवं कोयले को आक्सीकृत करके नाइट्रोजन-प्रचुर ह्यूमस के निर्माण इस शाला के प्रमुख कार्य हैं।

कोयले से सम्बन्धित समस्त जानकारी 'काला सोना' नामक इस पुस्तिका में उपलब्ध है। जनसाधारण में कोयले के महत्व को समझाने में यह पुस्तिका अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

६. अच्छी सड़कों की ओर—वही। किसी भी देश के यातायात को सुलभ बनाने में सड़कों का बड़ा महत्व है। भारत में अभी भी तमाम सड़कों के बनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है। किन्तु सड़कों के बनाने के लिये जिन सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है, वे यहां सहज उपलब्ध नहीं। यही कारण है कि कुछ नवीन सामग्रियों को खोज निकाला गया है और नवीन पदार्थों से सड़कों का निर्माण किया जा रहा है।

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान समिति, नई दिल्ली के द्वारा प्रकाशित "अच्छी सड़कों की ओर" नामक आकर्षक पुस्तिका देश में सड़कों के निर्माण की विविध

समस्याओं का विशद चित्रण करती हैं। सस्ती बारहमासी सड़कों के निर्माण की मेहरा-विधि सचमुच ही देहाती क्षेत्रों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

प्रस्तुत पुस्तिका जन-साधारण को सड़कों के निर्माण, उनकी सुरक्षा, सड़कों पर चलते समय सतर्कता आदि विषयों पर पूरी-पूरी जानकारी देती है। ऐसे प्रकाशनों से जनता में वैज्ञानिक विषयों के प्रति श्रद्धा एवं जिज्ञासा बढ़ेगी।

७. The Bulletin of the Allahabad Mathematical Association, 25 th Conference of the Indian Mathematical Society' Allahabad Session 1959 : पृष्ठ सं० २८, मूल्य केवल पांच रुपये डाक खर्च-अधिक

२५ दिसम्बर १६५६ को प्रयाग विश्वविद्यालय में भारतीय गणित परिषद् के पचीसवें अधिवेशन का उद्‌घाटन भारत के प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल,नेहरू ने किया। इस अवसर पर गणित विभाग के डा० श्रीराम सिनहा ने श्री डी० जी० दीक्षित तथा कुमारी सरला शर्मा के सहयोग से २८ पृष्ठों की एक सचित्र पत्रिका प्रकाशित की है। वे इलाहाबाद मैथमेटिकल एसोशियन के मंत्री भी हैं। अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के स्वागत में यह पत्रिका प्रकाशित की गई है और भविष्य में भी प्रतिवर्ष जनवरी मास में प्रकाशित होती रहेगी (जैसा कि अन्य त्र दी गई सूचना से विदित होता है)। जैसा कि सम्पादकीय में बताया गया है प्रयाग विश्वविद्यालय के लिये यह अभूतपूर्व घटना है कि ५१ वर्षों के बाद प्रयाग को गणित परिषद के अधिवेशन को यहां सम्पन्न देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रयाग विश्वविद्यालय का गणित विभाग भारतवर्ष भर में सबसे बड़ा विभाग माना जाता है।

पत्रिका के प्रथम भाग में सन् १८६२ से १६५६ तक के गणित विभाग की प्रगति का इतिहास, विभाग द्वारा बनाये गये डाक्टरों की सूची, अध्यापक मंडल, तथा शोध छात्रों का विस्तृत एवं अतिरंजित वर्णन है। दूसरे भाग में प्रयाग विश्वविद्यालय गणित एसोशिएशन (१६२४-१६५६) की गतिविधि का वर्णन एवं अन्त में श्रीराम सिन्हा द्वारा लिखित इलाहाबाद गणित परिषद की स्थापना से सम्बद्ध एक विस्तृत लेख भी है। पत्रिका में विश्व-विद्यालय सम्बन्धी ४ चित्र भी हैं।

सम्पूर्ण पत्रिका को ध्यान पूर्वक पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पादक ने तथ्यों के प्रस्तुत करने में अतिशयोक्ति का आश्रय किया है और व्यक्ति विशेष की श्लाघा एवं सराहना की है। प्रयाग में ही दो प्रकार की गणित परिषदों का एक साथ कार्य करना साधारण पाठक को भ्रम में डाल देता है।

अच्छा हो, यदि इस अल्पकाय पुस्तिका का मूल्य पाँच रुपये से घटाकर कम कर दिया जाय।

सत्यानासिन-असाधारण गुण वाला पौधा

सत्यानासिन का पौधा, जो सड़कों और नालों के किनारे बेहद उगा रहता है, क्षारीय भूमियों को सुधारने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। सत्यानासिन को उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में भड़भाड़ भी कहते हैं। वैसे खाद के रूप में इसका कुछ प्रयोग किसान जानते थे, पर इसका असली गुण अभी तक छिपा ही था। वास्तव में इसकी अंधाधुन्ध पैदावार के कारण इसे किसी ने विशेष महत्व नहीं दिया और इसका सही उपयोग नहीं हो सका।

लखनऊ के राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की प्रयोगशाला में हुए परीक्षणों से पता चला है कि सत्यानासिन से भूमि की क्षारीयता को समाप्त किया जा सकता है। क्षार के कारण देश की कृषि योग भूमि का एक बहुत बड़ा भाग बेकार पड़ा है। अत: सत्यानासिन का महत्व बहुत बढ़ जाता है, क्योंकि इससे लाखों एकड़ ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकेगा।

सत्यानासिन को खाद के रूप में प्रयुक्त करने की विधि अत्यन्त सरल है। पहले सत्यानसिन के पौधों को सुखाया जाता है, फिर इन्हें पीस या कूटकर सिंचाई के पानी में मिलाकर खेतों में डाला जाता है।

लखनऊ के राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की एक टोली ने बनथरा में अपने खेत में इसका परीक्षण किया और लगभग ६५० एकड़ ऊसरों को खेती के योग्य बनाने में सफल हुई। इस भूमि में धान की पैदावार बहुत अच्छी हुई। यहां पर एक एकड़ जमीन में लगभग १५ मन धान हुआ, जबकि ऊसर में धान की औसत उपज १० मन एकड़ है। बनथरा में अभी इस पौधे पर काम समाप्त नहीं हुआ। वहां अभी भी सत्यानासिन पर परीक्षण जारी हैं।

सस्ती पवन-चक्की

बंगलौर की राष्ट्रीय हवाई प्रयोगशाला (नेशनल एरोनाटिकल लैबोरेटरी) ने छोटी सिंचाई और घरेलू काम के लिए पानी निकालने की सस्ती पवन-चक्की का

नमूना बनाया है। यह पवन-चक्की देशी सामान से ही बनाई गई है। इस पवन-चक्की का नमूना बनाते समय देश के अधिकांक भागों में चलने वाली हवाओं को ध्यान में रखा गया है। यह भी ध्यान रखा गया है कि कम हवा में भी यह पवन-चक्की अच्छी तरह से काम कर सके। पवन-चक्की का डिजाइन सीधासाधा है। इसे आसानी से बनाया जा सकता है। इसकी मरम्मत में भी कठिनाई नहीं पड़ती। अनुमान है कि पूरी चक्की पर लगभग २॥ हजार रु० लागत जाएगी। पहले-पहल २०० पवन-चक्की बनाकर देश के विभिन्न भागों में इस्तेमाल करने का प्रस्ताव है।

घासपात की रोकथाम की दवा

नई दिल्ली की भारतीय कृषि अनुसंधानशाला में हाल ही में किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि रबी की फसलों के साथ पैदा होने वाली घासापात को २, ४—डाइक्लोरोफिनोक्सी-एसीटिक अम्ल के प्रयोग से नष्ट दिया जा सकता है। घासपात को नष्ट करने का यह तरीका बहुत सस्ता भी है। सामान्यतः अनाज की फसलों के साथ उगने वाली घासें, बाथू, पियाजी, हिरनखुरी, पौहली और कृष्णा नील हैं। घासपात से अनाज की पैदावार ५ प्रतिशत से ४० प्रतिशत तक कम हो सकती है। यदि इस हानि को १० प्रतिशत भी लगाएँ तो सिर्फ गेहूँ की फसल में ही ८ लाख टन अनाज की हानि होती हैं। इस प्रकार लगभग ३१ करोड़ ३० लाख रु० वार्षिक की क्षति होती है।

स्लैग से सीमेंट

लोहा और इस्पात बनाते समय वमन-भट्टियों से जो 'स्लैग' निकलता है, अब उससे सीमेंट बनाया जा सकेगा। सीमेंट बनाने का यह तरीका रुड़की की केन्द्रीय इमारत अनुसंधान संस्था ने निकाला है। एक टन लोहे के ढोके बनाने में आधा टन 'स्लैग' निकलता है।

सीमेंट तैयार करने के लिए 'स्लैग' पर पानी छिड़का जाता है, जिससे दानेदार पदार्थ मिलता है। इस पदार्थ को गीला ही पीस लिया जाता है। इसमें उचित मात्रा में चूना और रेत मिलाकर इसे सीमेंट के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। १ भाग चूना, २ भाग स्लैग और ६ भाग रेत के मिश्रण को ७ दिन तक साधारण ताप और १०० प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर रहने से १,२०० पौंड प्रति वर्ग इंच शक्ति का सीमेंट प्राप्त होता है।

यह सीमेंट चिनाई के गारे और पलस्तर के काम में लाया जा सकता है।

साबुन बनाने की नयी विधि

न्यूयार्क में साबुन बनाने की एक नयी, सस्ती और अच्छी विधि निकाली गयी है। साबुन बनाने की इस विधि में सब क्रिया बन्द यंत्रों द्वारा ही नियंत्रित होती है। इस विधि की सबसे बड़ी अच्छाई यह है कि इसमें साबुन बनाते समय हवा के सम्पर्क

में नहीं आता, जिससे आक्सीकरण नहीं हो पाता। इस विधि से बढ़िया और घटिया दोनों प्रकार के साबुन बनाये जा सकते हैं। साथ ही इस विधि से साबुन बनाने में लागत भी कम आती है और बढ़िया माल बनता है।

कश्मीर में जिप्सम के भंडार

भारतीय भूगर्भ सर्वे ने कश्मीर में जिप्सम के बहुत बड़े भंडारों का पता लगाया है। ये भंडार बारामूला जिले में झेलम नदी के उत्तरी किनारे पर हैं। सौ फुट गहराई पर लगभग २ करोड़ ५५ लाख टन जिप्सम का भंडार है, जिसमें से लगभग १ करोड़ ५३ लाख टन जिप्सम निकाला जाएगा।

जिप्सम, सीमेंट और प्लास्टर-आफ-पेरिस बनाने में काम आता है।

(पृष्ठ २१८ का शेष)

एजेंसी में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी। इस कानून में यह व्यवस्था भी की गयी है कि अमेरिकी अणुशक्ति कमीशन अन्तर्राष्ट्रीय अणुशक्ति एजेंसी को आणविक भट्ठी के ईंधन के लिए पर्याप्त मात्रा में यूरेनियम प्रदान कर सकता है। यह एजेंसी अन्य विकसित देशों में अणुशक्ति सम्बन्धी अनुसन्धान, प्रशिक्षण, अध्ययन आदि के कार्यक्रम चालू कर रही है। इसके अतिरिक्त जिन देशों में आणविक भट्ठियों के लिए यूरेनियम उपलब्ध नहीं है, उन्हें यह यूरेनियम भी बांटती है। वस्तुतः, विश्व भर में आणविक बिजली और अणुशक्ति के विकास को प्रोत्साहित करना इस एजेंसी का एक प्रमुख कार्य है। अब अणु युग की क्रांतिकारी प्रगतियों से कोई भी देश अछूता नहीं रह सकता।

१. सहारा का परमाणवीय विस्फोट

१३ फरवरी को फ्रांस ने सहारा मरुस्थल में अपने प्रथम परमाण्वीय परीक्षण को सफल देखकर जो हर्षातिरेक व्यक्त किया है वह किसी भी प्रकार युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। उल्लास का जो मूल कारण बताया जाता है वह "परमाण्वीय वर्ग" में फ्रांस के सदस्य बनने की बात है। अब संयुक्त राष्ट अमेरिका, रूस तथा ब्रिटेन की ही पंक्ति में फ्रांस भी अपने को आसीन देखकर प्रसन्न है। परन्तु क्या यह सच नहीं कि इस प्रकार से वर्ग में सम्मिलित होने की कामना करने वाले राष्ट्रों का अभाव नहीं ? वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अब भविष्य में जितने भी परमाण्वीय परीक्षण किये जावेंगे वे मानव मात्र के लिये अहितकर ही होंगे। न तो उनके द्वारा नवीन वैज्ञानिक तथ्य सामने आने की आशा है और न उनके उत्पादन में व्यय अपार धन राशि की पूर्ति ही सम्भव है। यह भी बहुत तर्क संगत नहीं प्रतीत होता कि परमाण्वीय ऊर्जा के भविष्य में शान्तिपूर्ण उपयोगों के लिये ऐसे अनेक प्रयोग नितान्त आवश्यक होते हैं।

ऐसे विस्फोटों के फलस्वरूप वायुमण्डल में रेडियसक्रियता जिस परिमाण में परिव्याप्त होकर मनुष्यों, पशुओं एवं वनस्पतियों को प्रभावित करती है उससे अब सभी परिचित हैं। एक स्थान पर हुये विस्फोट का प्रभाव विश्व भर में विशिष्ट यंन्त्रों द्वारा अनुभव किया जाता है। सहारा के विस्फोट का प्रभाव जापान में देखा गया गया। कहा जाता है कि साहारा के विस्फोट के बादल धीरे-धीरे पूर्व की ओर अग्रसर हो रहे हैं अत: यह स्वाभाविक है कि भारत चिन्तित हो। परन्तु प्रधान मन्त्री नेहरू ने संसद में एक प्रश्न के उत्तर में यह विश्वास दिलाया है कि सहारा का विस्फोट किसी भी प्रकार भारतीय भूमि को हानिकारक सिद्ध न होगा। ठीक है, यह कोई नहीं चाहेगा कि वह या उसका देश इन कुप्रभावकारी विकिरणों का शिकार हो परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि हम शान्त हो रहें। ऐसे विस्फोटों के विरुद्ध आवाज उठाना प्राणीमात्र का धर्म है। यही कारण है कि इंगलैंड के महान दार्शनिक तथा अफ्रीका के समस्त नागरिकों ने इस विस्फोट के विरुद्ध प्रदर्शन किये हैं।

मानव कल्याण के लिये आवश्यक है कि ऐसे परीक्षण बन्द हों और भविष्य में वे फिर दुहराये न जायँ। उनके परीक्षण पर गहरा प्रतिबन्ध हो। जो इस सीमा का उल्लंघन करे उसकी अन्तर्राष्ट्रीय भर्त्सना हो।

२. प्रतिभा का दमन

भारतीय कृषि अनुसंधान महाविद्यालय दिल्ली के वैज्ञानिक डा० जोसेफ की दुखद मृत्यु की गहरी छाया ने समस्त भारतीय वैज्ञानिकों को प्रभावित कर दिया है। सबों ने न केवल एक स्वर से उनके प्रति किये गये सरकारी कुव्यवहार की निन्दा की है वरन् वे अपने प्रति भी सतर्क हो उठे हैं। आज जिस प्रकार से वैज्ञानिक प्रतिभा को राजनीतिक अंकुशों से दमित किया जा रहा है उससे त्रस्त हो अनेक प्रतिभासम्पन्न मूर्धन्य वैज्ञानिक भारत में न रह कर विदेशों में जीवन यापन कर रहे हैं। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि अपनी प्रतिभाओं का आदर स्वदेश में नहीं हो रहा। इस मर्म से सभी राजनीतिज्ञ परिचित हैं और यदाकदा वे इस ओर संकेत भी करते रहते हैं परन्तु क्या यह नहीं कहा जा सकता कि वे ही इसके उत्तरदायी हैं ?

हमारा देश वैज्ञानिक प्रगति में कितना पीछे है यह सर्वविदित है। जो अपने रक्त से सींचकर प्रगति के उद्यान को उर्वर बनाना चाहते हैं, यदि उनके मार्ग में अवरोध आयें तो हतोत्साहित होना स्वाभाविक है क्योंकि सब कुछ करने पर भी परिवार के भरण-पोषण की भी चिन्ता साथ-साथ लगी हुई है। यही कारण है कि उच्च शिक्षासम्पन्न एवं प्रतिभावान वैज्ञानिक अधिक अर्थ की कामना करते हैं। विदेशों में ये ही लोग मनोनुकूल अर्थ प्राप्त करते हुये सुखद जीवन बिताते हैं जब कि स्वदेश लौटने पर उन्हें हताश होना पड़ता है। सभी अग्रणी राष्ट्र अपने वैज्ञानिकों का सर्वाधिक आदर करते हैं, उनकी ओर ही सबों की आँखें लगी रहती हैं परन्तु हमारे देश में बिल्कुल उल्टी रीति है।

डा० जोसेफ ने जीवन से ऊब कर ही आत्मघात किया है। उन्होंने जो अन्तिम पत्र लिखा है उसके द्वारा उनके अन्तर्द्वन्द्वों का पता चलता है। श्री एस० के० पाटिल ने स्वयं स्वीकार किया है कि यदि वह पत्र उन्हें जोसेफ की मृत्यु के पूर्व मिला होता तो वे अवश्य ही उन्हें सान्त्वना देते। अब उन्होंने डा० जोसेफ के परिवार के लिये कई सहस्र की राशि संचित की है। जनता में भी इस वैज्ञानिक के लिये अपार स्नेह लक्षित होता है। परन्तु क्या उनके परिवार के पोषण की व्यवस्था कर देने मात्र से हमारे कर्तव्यों की इतिश्री हो जाती है ? कदापि नहीं ! अब यह हमारा परम कर्तव्य है कि हम अपने देश की प्रतिभाओं का समादर करें, उन्हें उचित आर्थिक सहायता प्रदान करें और उनको प्रोत्साहित करते रहने के लिये सभी यत्न करें। सरकार का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों के लिये समस्त सुविधायें प्रदान करे और एक ही अंकुश से चराचरों का दमन न करे।

आशा है हमारे सम्पूर्ण देशवासी इस गम्भीर स्थिति को दूर रखने के लिये व्यवस्थित योजना बनायेंगे। यह दमन केवल एक जोसेफ का नहीं, उन तमाम वैज्ञानिकों की समस्या है जो या तो सरकारी क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं या भविष्य में करेंगे। जिस देश में प्रतिभा का सम्मान नहीं होता उसका कल्याण नहीं हो सकता।

———

साइकों वृत्ताकार ताप पट्टिका

माडल एच० पी० सी०
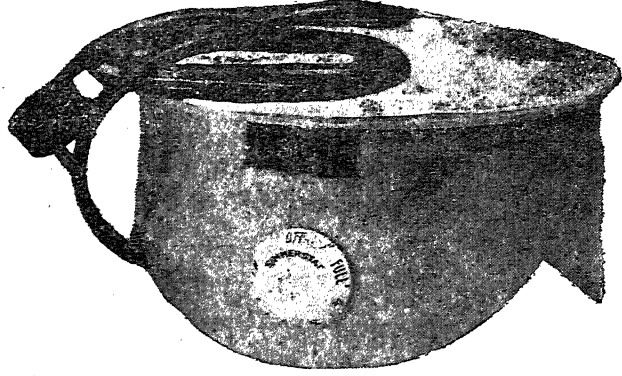
भट्टी पर सुखाये गये रजत-भूरे हेमरटोन वाली यह ताप पट्टिका अत्यन्त कार्य-कुशल और टिकाऊ है। यह २३० वोल्ट के विद्युत भार से ए-सी, डी-सी विद्युत द्वारा संचालित की जाती है। यह मोटी जी० आई० चद्दर पर निर्मित है। इसका ऊपरी भार मोटे इस्पात से बना है जिससे इसकी ताप क्षमता अधिक है। दीर्घकाल तक काम देने वाले तापक एक शक्ति नियामक से संलग्न हैं जिससे विद्युत शक्ति को शून्य से अधिक तथा विद्युत क्षमता तक नियमन किया जा सकता है। उपयुक्त विद्युततार और प्लग यन्त्र के साथ प्रदान किये जाते हैं।

विशेष विवरण

माडल	व्यास	अधिकतम शक्ति क्षमता (वाट में)
एच० पी० सी० १५	१५० मिमी (६ इंच)	२५०
एच० पी० सी० २०	२०० मिमी (८ इंच)	५००
एच० पी० सी० २५	२५० मिमी (१० इंच)	७५०

पंजीकृत संख्या A-372

उत्तर प्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा
विभागों द्वारा स्कूलों, कालिजों और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

'विज्ञान' के सम्बन्ध में वक्तव्य

(समाचार पत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) के १९५६ के अधिनियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन की स्थान :	विज्ञान परिषद् विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद—२ ।
२. प्रकाशन-की अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	गोपाल कृष्ण अग्रवाल
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	हिन्दुस्तान प्रेस, कटरा, इलाहाबाद ।
४. प्रकाशक का नाम	डा० रमेशचन्द्र कपूर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद ।
५. सम्पादक का नाम	डा० शिवगोपाल मिश्र
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद ।
६. पत्रिका का स्वामित्व इत्यादि ।	विज्ञान परिषद्, विज्ञान परिषद् भवन, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, (विज्ञान परिषद् संस्था द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र विज्ञान")

मैं रमेशचन्द्र कपूर घोषित करता हूँ कि उपरोक्त वक्तव्य प्रमाणिक है ।

रमेशचन्द्र कपूर
प्रकाशक के हस्ताक्षर

दिनांक १-३-६०

राष्ट्रीय कलेण्डर १८८२ शाके

	चैत्र	बैसाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र
रविवार	७ १४ २१ २८	४ ११ १८ २५	१ ८ १५ २२ २९	५ १२ १९ २६	३० २ ९ १६ २३	६ १३ २० २७
सोमवार	१ ८ १५ २२ २९	५ १२ १९ २६	२ ९ १६ २३ ३०	६ १३ २० २७	३१ ३ १० १७ २४	७ १४ २१ २८
मंगलवार	२ ९ १६ २३ ३०	६ १३ २० २७	३ १० १७ २४ ३१	७ १४ २१ २८	४ ११ १८ २५	१ ८ १५ २२ २९
बुधवार	३ १० १७ २४ ३१	७ १४ २१ २८	४ ११ १८ २५	१ ८ १५ २२ २९	५ १२ १९ २६	२ ९ १६ २३ ३०
बृहस्पतिवार	४ ११ १८ २५	१ ८ १५ २२ २९	५ १२ १९ २६	२ ९ १६ २३ ३०	६ १३ २० २७	३ १० १७ २४ ३१
शुक्रवार	५ १२ १९ २६	२ ९ १६ २३ ३०	६ १३ २० २७	३ १० १७ २४ ३१	७ १४ २१ २८	४ ११ १८ २५
शनिवार	६ १३ २० २७	३ १० १७ २४ ३१	७ १४ २१ २८	४ ११ १८ २५	१ ८ १५ २२ २९	५ १२ १९ २६

	आश्विन	कार्तिक	अग्रहायण	पौष	माघ	फाल्गुन
रविवार	३ १० १७ २४	१ ८ १५ २२ २९	६ १३ २० २७	४ ११ १८ २५	३० २ ९ १६ २३	७ १४ २१ २८
सोमवार	४ ११ १८ २५	२ ९ १६ २३ ३०	७ १४ २१ २८	५ १२ १९ २६	३ १० १७ २४	१ ८ १५ २२ २९
मंगलवार	५ १२ १९ २६	३ १० १७ २४	१ ८ १५ २२ २९	६ १३ २० २७	४ ११ १८ २५	२ ९ १६ २३ ३०
बुधवार	६ १३ २० २७	४ ११ १८ २५	२ ९ १६ २३ ३०	७ १४ २१ २८	५ १२ १९ २६	३ १० १७ २४
बृहस्पतिवार	७ १४ २१ २८	५ १२ १९ २६	३ १० १७ २४	१ ८ १५ २२ २९	६ १३ २० २७	४ ११ १८ २५
शुक्रवार	१ ८ १५ २२ २९	६ १३ २० २७	४ ११ १८ २५	२ ९ १६ २३ ३०	७ १४ २१ २८	५ १२ १९ २६
शनिवार	२ ९ १६ २३ ३०	७ १७ २१ २८	५ १२ १९ २६	३ १० १७ २४	१ ८ १५ २२ २९	६ १३ २० २७